प्रेम में भगवान

नैतिक मूल्यों की प्रेरक
शिक्षाप्रद कहानियाँ
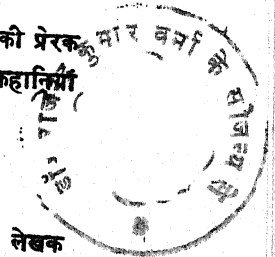
लेखक
लियो टॉल्सटॉय

अनुवादक
जैनेन्द्रकुमार

१९८६
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

निवेदन

टॉलसटॉय की ये कहानियां अपने समय, समाज या भूमि के बारे में जानकारी पहुंचाने के लिए उतनी नहीं, जितनी नैतिक समाधान के विचार से लिखी गई हैं—अधिकांश मुझे ऐसा ही प्रतीत हुआ है। इससे विषय को सुलभ रखने के ख्याल से अनुवाद में वैसे ब्यौरों को कुछ देशी कर दिया गया और थोड़ी स्वतंत्रता बरत ली गई है।

—जैनेन्द्रकुमार

प्रकाशकीय

'मंडल' द्वारा टॉल्सटॉय का बहुत-सा साहित्य प्रकाशित किया गया है, जो पाठकों को बहुत पसन्द आया है। हमें हर्ष है कि यह साहित्य पाठकों को पुनः उपलब्ध हो रहा है।

इस पुस्तक में टॉल्सटॉय की सोलह कहानियों का भावानुवाद दियां गया है। यह अनुवाद हिन्दी के यशस्वी लेखक श्री जैनेन्द्रकुमार ने किया है। अनुवाद इतना सरस है कि इसे पढ़ने में मूल का-सा आनन्द आता है। कहानियां सभी अत्यन्त शिक्षाप्रद हैं।

इसके प्रकाशन के लिए कागज की सुविधा श्रीमती पुष्पावती खेतान ने की है। हम उनके आभारी हैं। उनके इस सहयोग के कारण ही हम पुस्तक का मूल्य इतना कम रख सके हैं।

आशा है, पाठक इस तथा लेखक की अन्य पुस्तकों का भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

अनुक्रम

□

प्रेम में भगवान

: १ :

प्रेम में भगवान

एक नगर में मार्टिन नाम का एक मोची रहा करता था। नीचे के तल्ले में एक तंग कोठरी उसकी थी। वहां से खिड़की की राह सड़क नजर आती, जहां आने-जाने वालों के चेहरे तो नहीं, पर पैर दिखाई दिया करते थे। मार्टिन लोगों के जूतों से ही उनको पहचानने का आदी हो गया था। क्योंकि वहां एक मुद्दत से रहता था और बहुतेरे लोगों को जानता था। पास-पड़ौस में शायद कोई जोड़ा जूता होगा जो उसके हाथों न निकला हो। सो खिड़की की राह वह अपना ही काम देखा करता। कुछ जोड़ियों में उसने तला बैठाया था तो कुछ में और मरम्मत की थी। कुछ ऐसे भी होते कि पूरे-के-पूरे उसी के बनाये हुए। काम की मार्टिन को कमी नहीं थी, क्योंकि काम वह सचाई से करता था। माल अच्छा लगाता और दाम भी वाजिब से ज्यादा नहीं लेता था। बड़ी बात यह थी कि वह वचन का पक्का था। जिस दिन की मांग होती अगर उस दिन पूरा करके दे सकता तो वह काम ले लेता था, नहीं तो साफ कह देता था। वादे करके झुठलाता नहीं था। इसलिए आस-पास सरनाम था और काम की उसके पास कभी कमी नहीं होती थी।

यों आदमी वह नेक था और नीति की राह उसने कभी नहीं छोड़ी। और उमर ज्यादा होने पर तो वह और भी आत्मा की भलाई की और ईश्वर की बातें सोचने लग गया था। अपना निजी काम शुरू करने का वक्त आने से पहले ही, यानी जब वह दूसरे के यहां मजूरी पर काम किया करता था, तभी उसकी स्त्री का देहांत हो गया था। पीछे एक तीन बरस का बच्चा वह छोड़ गई थी। बालक तो और भी हुए थे, पर छुटपन में ही सब जाते रहे थे। पहले तो मार्टिन ने सोचा कि बच्चे को देहात में बहन के यहां भेज दूं। पर, फिर बालक को पास से हटाने को उसका जी नहीं हुआ। 'वहां दूसरे के घर

बालक को जाने क्या भुगतना पड़े, क्या नहीं ! इससे चलो अपने पास ही जो रहने दूं ।'

सो मार्टिन नौकरी छोड़, घर किराये ले, बच्चे के साथ वहीं रहने और अपना काम करने लगा। पर बालक का सुख उसकी किस्मत में न लिखा था। बालक बारह बरस का हो चला था और उम्मीद बंधने लगी थी कि बाप के काम में अब कुछ सहाई होने लगेगा कि तभी आया बुखार, हफ्ते भर रहा होगा, और बालक उसमें चल बसा ! मार्टिन ने बच्चे को दफनाया; लेकिन मन में उसके ऐसा दु:ख समा गया, ऐसा दु:ख कि ईश्वर तक को कोसने को जी होता था। दु:ख में बार-बार वह कहता कि हे भगवान, मुझे भी उठा लो। तुम कैसे हो कि मेरा इकलौता, नन्हीं-सी उमर का, जो मेरे प्यार का बच्चा था, उसे तो तुमने उठा लिया और मुझ बूढ़े को छोड़ दिया ! सो इस करनी पर जैसे उसने हठ ठान कर परमात्मा को अपने से बिसार दिया।

एक दिन उसी के गांव के एक बुजुर्ग, जो घर छोड़ पिछले आठ बरस से तीरथ-तीरथ घूम रहे थे, यात्रा की राह में मार्टिन के पास आये। मार्टिन ने अपने दिल का घाव उनके आगे खोल दिया और सब दु:ख कह सुनाया। बोला—"अब भाई, मुझे जीने की भी चाह नहीं रह गई है। बस भगवान करे मैं जल्दी यहां से उठ जाऊं। तुम्हीं कहो जग में अब कौन आस मुझे बाकी है ?"

उन वृद्ध यात्री ने कहा—"ऐसी बात मुंह से नहीं कहते, मार्टिन। ईश्वर की लीला भला हम क्या जानें ! कोई हमारा चाहा यहां थोड़े ही होता है। ईश्वर की मर्जी ही चलती है। उनकी ऐसी ही मर्जी है कि बच्चा चला जाय और तुम जीओ, तो इसीमें कोई भलाई होगी। और जो निराशा की बात करते हो सो वजह है कि तुम बस अपने ही सुख के लिए रहना चाहते हो।"

मार्टिन ने पूछा—"नहीं तो भला किसके लिए रहना चाहिए ?"

वृद्ध ने कहा—"ईश्वर के लिए, मार्टिन। उसने हमें जीवन दिया। सो उसीके लिए हमें रहना चाहिए। उसके निमित्त रहना सीख जाओ कि फिर कोई क्लेश भी न रहे। फिर सब सहल हो जाय।"

सुनकर मार्टिन कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—"पर ईश्वर के लिए रहना कैसे होगा ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया—"संत लोगों के चरित से पता लग सकता है कि ईश्वर के लिए जीने का भाव क्या है। अच्छा तुम बांच तो सकते हो न ? तो इंजील की एक पोथी ले आना। उसे पढ़ना। उसमें सब लिखा है। उससे पता लग जायगा कि ईश्वर की मर्जी के अनुसार रहना कैसा होता है ?"

ये वचन मार्टिन के मन में बस गये। उसी दिस वह गया और बड़े छापे की इंजील की पोथी ले आया और पढ़ना शुरू कर दिया।

पहले विचार था कि छुट्टी के दिन सातवें रोज पढ़ा करूंगा; लेकिन एक बेर पढ़ना शुरू किया कि उसका मन बड़ा हलका मालूम हुआ। सो वह रोज-रोज पढ़ने लगा। कभी तो पढ़ने में इतना दत्तचित्त हो जाता कि लालटेन की बत्ती धीमी पड़ते-पड़ते बुझतक जाती, तब कहीं पोथी हाथ से छूटती। देर रात तक पढ़ता रहता। और जितना पढ़ता उसे साफ दीखता कि ईश्वर की आदमी से क्या चाहना है और ईश्वर में होकर आदमी को कैसे जीवन बिताना चाहिए। उसका दिल खूब हलका हो गया था। पहले रात को जब सोने लेटता तो मन पर बहुत बोझ मालूम हुआ करता था। बच्चे की याद करके वह बड़ा शोक मानता था। लेकिन अब वह बार-बार हलके चित्त से यही कहता कि हे भगवान, तू ही है। तू ही जगदाधार है। तेरा ही चाहा हो।

उस समय से मार्टिन की सारी जिन्दगी बदल गई। पहले चाय पिया करता था और कभी-कभी दारू भी ले लेता था। पहले कभी ऐसा भी हो गया है कि किसी साथी के साथ जरा ज्यादा चढ़ा आवे और आकर वाही-तबाही बकने लगे और खरी-खोटी कहने लगे। लेकिन अब यह सब बात जाती रही। जीवन में उसके अब शांति आ गई और आनन्द रहने लगा। सबेरे वह अपने काम पर बैठ जाता और दिनभर काम करने के बाद सांझ हुई कि दिया लिया और इंजील की पोथी खोल बांचने बैठ गया। जितना पढ़ता उतनी ही उसकी बुद्धि साफ होती और मन खुल कर प्रसन्न होता हुआ मालूम होता।

एक बार ऐसा हुआ कि इंजील की पुस्तक लेकर मार्टिन रात बहुत देर तक बैठा रह गया। संत ल्यूक की कथनी वह पढ़ रहा था। छठे अध्याय में उसने बांचा—

"जो तुझे एक गाल पर मारे, तू दूसरा भी उसके आगे कर दे। जो कोट उतारना चाहे, कुरता भी उसे सौंप दे। जो मांगे सबको दे। और जो ले जाय उससे तू वापस कुछ न मांग। और जो तू चाहता है कि लोग तुझसे ऐसे बरतें, वैसे ही तू उनसे बरत।"

फिर वह प्रसंग उसने पढ़ा, जहां प्रभु मसीह कहते हैं—

"तुम 'प्रभु', 'प्रभु' तो मुझे कहते हो, पर मेरा कहा करते नहीं हो। जो मेरे पास आता है, मेरा कहा सुनता है और सुना करता है, वह उस आदमी के समान है, जिसने गहरे खोद अपने मकान की नींव चट्टान पर जमाई है। बाढ़ आई और लहरें टकरा-टकरा कर हार गईं, पर मकान नहीं हिला। क्यों नींव चट्टान पर खड़ी थी। पर जो सुनता है और करता नहीं, वह उस आदमी के समान है जिसने धरती पे मकान खड़ा किया, पर बुनियाद न दी। आई पानी की बाढ़ और टकराना था कि मकान ढह पड़ा। उसका सब डूब गया, कुछ बाकी न रहा।"

मार्टिन ने ये वचन पढ़े तो मन भीतर से गद्‌गद हो गया। आंख से ऐनक उतार उसने पोथी पर रख दी और माथे पर अंगुली देकर उस कथन पर वह गहरा सोच करने लगा। उन वचनों से वह अपने जीवन की तोल-परख कर रहा था।

अपने से ही वह पूछने लगा कि अब मेरा मकान चट्टान पर है कि रेत पर खड़ा है। चट्टान पर है तो ठीक है। पर यहां इकले में बैठे तो सब सही-दुरुस्त मालूम होता है। जैसे ईश्वर की मर्जी के मुताबिक ही मैं चल रहा हूं। लेकिन आंख झपकी कि मन में विकार हो आता है। तो भी जतन मुझे छोड़ना नहीं चाहिए, जतन में ही आनन्द है। हे भगवान, तुम्हीं मालिक हो।

यह सब विचार कर वह फिर सोने को हुआ। पर पोथी उससे नहीं छूटता थी। सो फिर वह सातवां अध्याय बांचने लगा। वहां जहां कि सौ बरस का बूढ़ा प्रभू के पास आता है और विधवा के पुत्र का जिक्र है और संत जॉन के शिष्य लोग मिलते हैं। पढ़ते-पढ़ते फिर वह जगह आई जहां एक धनी-मानी ईशु मसीह को अपने घर भोजन देते हैं। फिर वह स्थल कि जहां एक पापिनी आंसुओं से उनके चरण पखारती और केशों से पोंछती है। उस

समय प्रभु उसका पक्ष लेते और उसे आशीष और आशा देते हैं। पुस्तक का चवालीसवां बन्ध आया और मार्टिन ने पढ़ा—

"तब प्रभु उस स्त्री की ओर होकर साइमन से बोले—'इस स्त्री को देखो। मैं तुम्हारे घर अतिथि हूं। पर तुमने मेरे पैरों पर पानी नहीं दिया। और यह है कि अपने आंसुओं से इसने मेरे पैर धोये हैं और केशों से उन्हें पोंछा है। तुम मुझसे बचे हो और जबसे मैं आया हूं, यह मेरे पैरों को ही चूमती रही है। तुमने मेरे सिर पर भी तेल नहीं दिया, और यह है कि मेरे पांव स्नेह से भिगोती रही है—"

ये शब्द पढ़ते-पढ़ते मार्टिन सोचने लगा—"उसने पैरों पर पानी नहीं दिया, उन्हें छूने से बचा। सिर को तेल नहीं दिया···" मार्टिन ने ऐनक उतार वहीं पोथी पर रख दी और सोच में डूब गया।

"वह आदमी मेरी तरह का रहा होगा। अपनी-ही-अपनी सोचता होगा। कैसे खुद अच्छा खा लेना और आराम से रह लेना। बस, अपना ही सोच, मेहमान की चिंता नहीं। कुछ अपना-ही-अपना उसे खयाल था। मेहमान की तनिक परवाह नहीं थी। और कौन मेहमान? स्वयं भगवान। जो कहीं वह मेरे यहां पधार जायं तो क्या मैं भी वैसा ही करूं?"

उस समय दोनों बांह चौकी पर डाल उसीपर मार्टिन ने अपना सिर टेक दिया। ऐसे बैठे-बैठे जाने कब उसे नींद आ गई।

इतने में जैसे बिलकुल कान के पास से बड़े सूक्ष्म सुर में किसी ने कहा—"मार्टिन!"

मार्टिन मानो नींद से चौंककर उठा। बोला—"कौन है? मुड़कर दरवाजे के बाहर झांका, पर कोई न था। उसने फिर पुकारा। पुकार के जवाब में उसे साफ-साफ सुनाई दिया: "मार्टिन, कल गली पर ध्यान रखना। मैं आऊंगा।"

अब मार्टिन उठा। खड़ा हो गया, आंखें मलीं। समझ नहीं सका कि ये शब्द जागते में सुने थे कि सपने में। फिर उसने दिया बुझा दिया और सो गया।

अगले दिन तड़का फूटने से पहले ही उठा और भजन-प्रार्थना कर, आग जला, अंगीठी पर खाना चढ़ा दिया। फिर अपनी खिड़की के तले आ-

कर काम में जुट गया। काम करते-करते रात की बात सोचने लगा। कभी तो उसे मालूम होता कि वह सब सपना था। कभी ज्ञान पड़ता कि सचमुच की ही आवाज उसने सुनी थी। सोचा कि ऐसी बातें पहले भी तो घटती रही हैं।

खिड़की के तले बैठा, रह-रहकर वह सड़क पर देखने लगता था। काम से ज्यादा उसे किसीके आने का ध्यान था। अनपहचाने जूते गली पर चलते देखता तो झांक उठता कि उनका पहननेवाला जाने कौन है। इस तरह एक झल्ली वाला नये चमचमाते जूतों में उधर को निकला। फिर एक कहार गया। इतने में एक बूढ़ा सिपाही, जिसने पुराने राजा का राज देखा था, उस गली में आया। हाथ में उसके फावड़ा था। जूतों से मार्टिन उसे पहचान गया। पुरानी चाल के घिसे से जूते थे। पहनने-वाले का नाम स्टेपान था। एक पड़ोसी लालाजी के घर में वह रहता था और उनका कुछ काम-धाम निबाह दिया करता था—यही झाड़ू-सफाई वगैरह कर देना। दया-भाव से लाला ने उसे रक्खा हुआ था। वही स्टेपान गली में आकर शहर से बरफ हटाने लग गया था। रात बरफ खूब पड़ी थी और जमा हो गई थी। मार्टिन ने उसे एक निगाह देखा। कुछ देर देखते रहकर फिर नीचे सिर डाल अपने काम में लग गया।

मन-ही-मन वह हँस पड़ा। बोला—"मैं भी उमर से बुढ़ा गया हूं, नहीं तो क्या! देखो कि मैं भी कैसा बहकने लगा हूं! आया तो स्टेपान है गली साफ करने, और मुझे सूझा कि मसीह प्रभु ही आ गये हैं! है न बात कि मैं सठिया गया हूं!

लेकिन कुछ टांके भरे होंगे कि खिड़की की राह वह फिर बाहर देख उठा। देखा कि फावड़ा जरा टेककर दीवार का सहारा ले स्टेपान या तो सुस्ता रहा है, या फिर गरम होने के लिए सांस ले रहा है। स्टेपान की उमर काफी थी। कमर झुक चली थी और देह में कस बहुत नहीं रहा था। बरफ हटाने के लायक भी दम नहीं था। वह हांफ-सा रहा था।

मार्टिन ने सोचा—"बुलाकर मैं उसे चाय को पूछूं तो कैसा! चाय बनी हुई है ही।"

सो, आरी को वहीं जूते में उड़सा छोड़, खड़े होकर झटपट चाय की सब

तैयारी कर डालने लगा। फिर खिड़की के पास जाकर थपथपाकर स्टेपान को इशारा किया। स्टेपान सुनकर खिड़की पर आया। मार्टिन ने उसे अन्दर बुलाया और आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया। बोला—"आओ थोड़ा गरमा न लो। तुम्हें ठंड लग रही मालूम होती है।"

स्टेपान बोला—"भगवान तुम्हारा भला करें। हां, मेरी देह में सरदी बैठ गई है और जोड़ दर्द करते हैं।"

यह कहकर स्टेपान अंदर आया और देह की बरफ द्वार के बाहर ही झाड़ दी। फिर यह सोचकर कि कहीं फर्श पर निशान न पड़े, वह बाहर ही पैर पोंछने लगा। इसमें देह उसकी मुश्किल से संभली रह सकी और गिरते-गिरते बचा।

मार्टिन बोला—"रहने दो, रहने भी दो। फर्श झड़ जायगा। सफाई तो रोज होती ही है। कोई बात नहीं भाई, आ जाओ। बैठो, लो चाय पियो।"

दो गिलास भरकर एक मार्टिन ने स्टेपान के आगे सरका दिया और रकाबी में डाल कर दूसरे में से खुद पीने लगा।

स्टेपान ने अपना गिलास खतमकर औंधा रख दिया। वह चाय के लिए बहुत धन्यवाद देने लगा। लेकिन प्रकट था कि और भी एक गिलास मिल जाय तो बुरी बात न होगी।

मार्टिन ने गिलास भरते हुए कहा—"एक गिलास और लो, अरे, लो भी।"

कहकर साथ ही उसने अपना भी गिलास भर दिया। पर पीता जाता था और रह-रहकर मार्टिन सड़क की तरफ देखता जाता था।

स्टेपान ने पूछा—"क्या किसीकी बाट जोहते हो?"

"बाट? भई, क्या बताऊं! कहते लाज आती है। सच पूछो तो इंतजार तो नहीं है, पर रात एक आवाज सुनी थी, जो मन से दूर नहीं होती है। वह सचमुच कोई था, या सपना था, कह नहीं सकता। कल रात की बात है कि मैं धर्म-पुस्तक इंजील बांच रहा था। उसमें प्रभु ईसा का वर्णन है न! कि कैसे उन्होंने दुःख उठाये और किस भांति वह इस धरती पर प्रेम और भक्ति से रहे। सो तुमने भी जरूर सुना होगा।"

स्टेपान ने कहा—"सुना तो मैंने है। पर मैं अपढ़ आदमी हूं और

समझता-बूझता कम हूं।"

"तो सुनो भाई। उनके जीवन के विषय की बात है। मैं पढ़ रहा था। पढ़ते-पढ़ते वह प्रसंग आया, जहां मसीह एक धनवान आदमी के यहां जाते हैं। वह धनी आदमी मन से उनकी आवभगत नहीं करता। अब तुम्हें मैं क्या कहूं ? मैं सोचने लगा कि उस आदमी ने उनका पूरा आदर कैसे नहीं किया ! मैंने सोचा कि कहीं मैं होता तो जाने क्या न करता ? पर देखो कि उस आदमी ने मामूली भी कुछ नहीं किया। इसी तरह की बात सोचते-सोचते मुझे नींद आ गई। फिर एकाएक जो जागकर उठा तो ऐसा लगा कि कोई मुझे नाम लेकर धीमे-से कह रहा है कि देखना, इंतजार में रहना, मैं कल आऊंगा। ऐसा दो बार हुआ। सच कहूं तो भाई, वह बात मेरे मन में बैठ गई। यों तो मुझे खुद शरम आ रही है, पर क्या बताऊं, मन में आस लगी ही है कि वह भगवान कहीं न आते हों! !"

स्टेपान सुनकर चुप रहा, और सिर हिला दिया। फिर गिलास की चाय खत्म कर गिलास को अलग रख दिया। लेकिन मार्टिन ने सीधा कर फिर उसे चाय से भर दिया।

"लो, लो भाई। पीओ भी। हां, मैं सोच रहा था कि इस पृथ्वी पर मसीह प्रभु कैसे रहते थे। नफरत किसीसे नहीं करते थे और मामूली-से-मामूली लोगों के बीच मिल-जुलकर रहते थे। साथी उनके साधारण जन थे और हम-जैसे अधम और पापी लोगों को उन्होंने शरण देकर उठाया था। उन्होंने कहा कि जो तनेगा उसका सिर नीचा होगा। जो झुकेगा वही उठेगा। उन्होंने कहा, तुम मुझे बड़ा कहते हो। और मैं हूं कि तुम्हारे पैर धोऊंगा। कहा, कि सबसे आगे वही गिना जायगा जो सबसे पीछे रहकर सेवा करेगा। क्योंकि जो दीन हैं और दयावान हैं, और प्रीत रखते हैं, वही धनी हैं।"

स्टेपान सुनते-सुनते अपनी चाय भूल गया। बुड्ढा आदमी था और जल्दी उसे आंसू आ जाते थे। सो वहां बैठे-बैठे भगवद्-वाणी सुनकर उसके दोनों गालों पर आंसू ढुलकने लगे।

मार्टिन ने कहा—"लो, लो। बस एक और।"

लेकिन स्टेपान ने माफी मांगी, धन्यवाद दिया, और गिलास को अलग कर उठ खड़ा हुआ !

"तुम्हारा मुझपर बड़ा अहसान हुआ, मार्टिन। तुमने मेरे तन और मन दोनों को खुराक दी और सुख पहुंचाया है।"

मार्टिन बोला—"कब तो अतिथि मिलते हैं। भाई, फिर भी इधर आया करना। मुझे बड़ी खुशी होगी।"

स्टेपान चला गया। उसके बाद बाकी बची चाय मार्टिन ने निबटाई, फैला सामान संगवाया और काम पर आ बैठा।

बैठकर वह आरी से जूते के तले की सीवन ठीक करने लगा। तला सीता जाता था और खिड़की से बाहर देखता जाता था। ईशु की तस्वीर उसके मन में थी और उन्हींकी करनी और कथनी की याद से उसका अन्तःकरण भरा था।

इतने में दो सिपाही उधर से निकले। एक सरकारी जोड़ी पहने था। दूसरे के पैरों में देसी जूते थे। फिर पड़ोस के एक मकान-मालिक निकले, जिनका बढ़िया कामदार जोड़ा था। फिर एक झाबा लिए नानबाई उधर से गुजरा। ऐसे बहुत-से लोग चलते हुए गये। बाद एक स्त्री आई जिसके पैरों में देहाती जूतियां थीं। वह खिड़की के सामने से गुजरी; लेकिन आगे दीवार के पास जाते-जाते रुक गई ! मार्टिन ने खिड़की में से उसे देखा। वह इधर के लिए अनजान मालूम होती थी। कपड़े मामूली थे और गोद में बच्चा था। दीवार के पास वह हवा को पीठ देकर खड़ी हो गई थी। बच्चे को हवा की शीत से बचाने को वह उसे बार-बार ढकने का जतन करने लगी। लेकिन उढ़ाने को कपड़ा उसके पास नहीं के बराबर था। इन जाड़े के दिनों में गरमी के-से कपड़े वह पहने थी। यह भी झीने और फटे थे। खिड़की में से मार्टिन ने बच्चे का रोना सुना। स्त्री उसे मना-मनाकर चुप कराना चाहती थी और वह चुप नहीं होता था। मार्टिन उठा और द्वार से बाहर जाकर बोला—"सुनना माई। इधर सुनो।"

स्त्री सुनकर मुड़ी।

"वहां सर्दी में खुले में बच्चे को लेकर क्यों खड़ी हो? अंदर आ जाओ,

यहां बच्चे को ठीक तरह उढ़ा भी लेना। इधर आओ, इधर।"

एक बुड्ढा आदमी, नाक पर ऐनक चढ़ाए इस तरह उसे बुला रहा है, यह देखकर स्त्री को अचरज हुआ। लेकिन वह चलती आई।

साथ-साथ दोनों अंदर आये और कमरे में पहुंचे। वहां मार्टिन ने हाथ से बताकर कहा—"वह खाट है, वहां बैठ जाओ। आग है ही, जरा गरमा लो और बच्चे को भी दूध पिला लो।"

"दूध मेरे कहां है सबेरे से मैंने कुछ खाया ही नहीं है।" यह कहने पर भी बच्चे को उसने छाती से लगा ही लिया।

मार्टिन ने सिर खुजलाया। फिर रोटी निकाली और एक तश्तरी। फिर अंगीठी से उतारकर कुछ शोरबा रकाबी में दे दिया। दलिये की पतीली भी उतारी; लेकिन वह अभी हुआ नहीं था। सो, बस रोटी-रसा ही सामने कर दिया।

"लो, बैठ जाओ और शुरू करो। बच्चा लाओ मुझे दो। देखती क्या हो, बच्चे क्या मुझे हुए नहीं हैं? देख लेना, मैं बच्चों को खूब मना लेता हूं।"

स्त्री बैठकर खाने लगी। मार्टिन ने बच्चे को बिछौने पर लिटा दिया और खुद बैठ गया। वह तरह-तरह से बच्चे को बहलाने लगा। कभी कैसी आवाज निकालता और कभी कुछ बोली बोलता। लेकिन दांत थे नहीं और आवाज उससे ठीक नहीं निकलती थी। सो बच्चे का रोना जारी रहा। तब उंगली दे-देकर वह बच्चे को गुदगुदाने लगा। फिर एक खेल किया। उंगली सीधी बच्चे के मुंह तक ले जाता, फिर चट से खींच लेता। यह उसने बार-बार किया पर उंगली बालक को मुंह में नहीं लैने दी। क्योंकि उसकी उंगली काम से तमाम काली हो रही थी। मोम-वोम जाने क्या उसमें लगा था! बच्चा पहले तो इस उंगली के खेल को ध्यान से देखने लगा और चुप हो गया। फिर तो वह एकदम हँस पड़ा। मार्टिन यह देख बड़ा ही खुश हुआ।

स्त्री बैठी खाती जाती थी और बतलाती जाती थी कि कौन हूं और क्यों ऐसी हालत में हूं।

बोली—"मेरे आदमी की सिपाही की नौकरी थी। फिर कोई आठ महीने हुए जाने उन्हें कहां भेजा गया। तबसे कुछ खबर उनकी नहीं मिली।

उसके बाद मैंने रोटी पकाने की नौकरी कर ली। रोटी बनाती थी; लेकिन यह बालक होने को हुआ तो मुझे उन्होंने काम से हटा दिया। तीन महीने से मैं भटक रही हूं कि नौकरी मिल जाय। जो पास था, पेट के खातिर सब बेच चुकी। अब कौड़ी नहीं रह गई है। सोचा, मैं धाय बन जाऊं। लेकिन कोई मुझे रखने को राजी नहीं हुआ। कहते थे कि मैं बहुत दुबली और दुखिया दीखती हूं, सो दूध क्या उतरेगा। मैं यहां एक ललाइन की बात पर आई थी। वहां हमारे गांव की एक नौकरानी है। उन्होंने मुझे रखने को कहा था। मैं समझती थी कि सब ठीक-ठाक है। पर वहां गई तो कहा कि अगले हफ्ते तक हमें फुर्सत नहीं है. फिर आना। वह दूर जगह थी और आते-जाते मेरा दम हार गया है। बच्चा बिचारा भूखा है, देखो कैसी आंखें हो गई हैं। भाग्य की बात है कि वह तो मकान की मालकिन दयालु हैं, भाड़ा नहीं लेतीं। नहीं तो, मेरा ठौर-ठिकाना न था।"

मार्टिन ने सुनकर सांस भरी। पूछा—"कोई गर्म कपड़े पास नहीं हैं?"

बोली—"गर्म कपड़ा कहां से हो? अभी कल ही छः आने में अपना चदरा गिरवी रख चुकी हूं।"

इतना कहकर स्त्री बढ़ी और बच्चे को गोद में ले लिया। मार्टिन खड़ा हो गया और अपने कपड़ों में खोज-छान करने लगा। आखिर एक बड़ा गर्म चोगा उसने निकाला और कहा—"यह लो। चीज तो फटी-पुरानी है; पर चलो बच्चे के कुछ काम तो आ ही जायगी।"

स्त्री ने उस चोगे को देखा। फिर उस दयावान बूढ़े की तरफ आंख उठाई, फिर चोगे को हाथ में लेते-लेते वह रो पड़ी।

मार्टिन ने मुड़कर खाट के नीचे झुककर वहां से एक छोटा-सा बक्स निकाला! उसमें इधर-उधर कुछ खोजा और फिर नीचे सरकाकर बैठ गया।

स्त्री बोली—"भगवान तुम्हारा भला करे, बाबा। सचमुच ईश्वर ने ही मुझे इधर भेज दिया। नहीं तो बच्चा ठिठुरकर मर चुका होता। मैं चली, तब सर्दी इतनी नहीं थी। अब तो कैसी गजब की ठंडी बयार चल रही है। जरूर यह ईश्वर की करनी है कि तुमने खिड़की से बाहर झांका और मुझ गरीबनी पर दया की।"

मार्टिन मुस्कराया। बोला—"यह सच बात है। उसी ने मुझे आज इधर देखने को कहा था। कोई यह संयोग ही नहीं है कि मैंने तुम्हें देखा।"

यह कहकर मार्टिन ने उसे अपनी सपने की बात सुनाई। बताया कि कैसे ईश्वर की वाणी हुई थी कि इंतजार करना, मैं आऊंगा।

स्त्री बोली—"कौन जाने ? ईश्वर क्या नहीं कर सकता।" वह उठी और अपने बच्चे को चारों ओर से ढकते हुए चोगा कंधों पर डाल लिया। तब झुककर मार्टिन को फिर एक बार धन्यवाद दिया।

"प्रभु के नाम पर—यह लो।"

मार्टिन ने कहा और चदरा गिरवी से छुड़ाने के लिए छः आने स्त्री के हाथ में थमा दिये। स्त्री ने ईशु प्रभु को स्मरण किया। मार्टिन ने प्रभु का नाम लिया और फिर उसे बाहर पहुंचा आया।

स्त्री के चले जाने पर मार्टिन ने देगची उतार कुछ खाया-पिया, बासन-वस्त्र संभालकर रख दिये और फिर काम करने बैठ गया। वह बैठा रहा, बैठा रहा और काम करता रहा। लेकिन खिड़की को नहीं भूला। छाया कोई खिड़की पर पड़ती कि वह तुरन्त निगाह करता कि देखूं, कौन जा रहा है। उनमें कुछ जान के लोग निकले तो कुछ अनपहचाने भी। पर कोई खास नजर नहीं आया।

थोड़ी देर बाद एक सेब वाली स्त्री को मार्टिन ने ठीक अपनी खिड़की के सामने रुकते देखा। वह एक बड़ी टोकरी लिये थी; लेकिन सेब उसमें बहुत नहीं रह गये दीखते थे। साफ था कि वह बहुत-कुछ उसमें से बेच चुकी है। उसकी कमर पर एक बोरा था जिसमें छिपटियां भरी थीं। उसे वह घर ले जा रही थी। कहीं इमारत की मदद लगी होगी, सो वहीं से बटोरकर लाई होगी। बोरा उसे चुभ आया था और एक कंधे से दूसरे पर उसे बदलना चाहती थी। सो बोरे को उसने रास्ते के एक ओर रख दिया और टोकरी को किसी खंभे से टिका दिया। फिर बोरे की छिपटियों को हलहलाने लगी। लेकिन तभी फटी-सी टोपी ओढ़े एक लड़का उधर दौड़ा और टोकरी से एक सेब ले भागने को हुआ। पर बुढ़िया ने देख लिया और मुड़कर चट से उसकी बांह पकड़ ली। लड़के ने बहुतेरी खींचातानी की कि

छूट जाय, लेकिन बुढ़िया ने अपने हाथ जमाये रक्खे। टोपी बालक की उतार-कर फेंक दी और उसे बालों से पकड़कर झंझोटने लगी। लड़का चिल्लाया जिस पर बुढ़िया और धिक्कार उठी। यह देख मार्टिन ने हाथ की आरी उड़सी भी नहीं कि हाथ से उसे वहीं डाल झट से दरवाजे के बाहर आ गया। जल्दी में ऐनक भी छूटी। लड़खड़ाते पैरों वह सीढ़ी उतर और दौड़ सड़क पर आ खड़ा हुआ। बुढ़िया लड़के के बाल झंझोट रही थी और गालियां दे रही थी। कहती थी—"तुझे पुलिस में दूंगी।" लड़का छूटने को मचल रहा था। चिल्ला रहा था कि "मैंने कुछ नहीं लिया, मुझे क्यों मार रही हो? मुझे छोड़ दो।"

मार्टिन ने आकर उन्हें अलग कर दिया। लड़के को हाथ से लेकर कहा—"जाने दो, माई। भगवान के लिए उसे अब माफ कर दो।"

"अजी, मैं उसे दिखा दूंगी। जिससे साल-एक याद तो रक्खे। बद-माश को थाने ले जाऊंगी!"

मार्टिन बुढ़िया को निहोरने लगा।

"जाने दो, माई। फिर ऐसा नहीं करेगा। भगवान के लिए उसे जाने दो।"

बुढ़िया ने लड़के को छोड़ दिया। लड़का भाग जाने को हुआ। लेकिन मार्टिन ने उसे रोक लिया।

लड़का रो उठा और माफी मांगने लगा।

"ठीक। और यह लो अब अपने लिए एक सेब!" कहते हुए मार्टिन ने टोकरी से एक सेब लिया और लड़के को दे दिया। फिर बोला—"इसके पैसे मैं दूंगा तुम्हें माई।"

"इस तरह इन छोकरों को तुम बिगाड़ दोगे।" बुढ़िया बोली, "इसे कोड़े लगने चाहिए थे कि हफ्ते भर तो याद रहती।"

"ओह, माई," मार्टिन कह उठा, "छोड़ो-छोड़ो। यह तरीका हम लोगों का हो. ईश्वर का यह तरीका नहीं है। अगर एक सेब की चोरी के लिए उसे कोड़े लगने चाहिए तो हमें अपने पापों के लिए क्या मिलना चाहिए, सोचो तो?"

बुढ़िया चुप रह गई।

तब मार्टिन ने उसे उस कथा की याद दिलाई जहां प्रभु तो अपने सेवक

पर सारा ऋण छोड़ देते हैं, पर वह दास जरा से के लिए अपने कर्जदार का गला जा दबोचता है। बुढ़िया ने यह सब सुना और लड़का भी पास खड़ा सुनता रहा।

"सो प्रभु की बानी है कि हम माफ करें। मार्टिन ने कहा, "नहीं तो हम भी माफी नहीं पायेंगे। हर किसी को माफ करो। अनजान बालक को तो और भी पहले माफी मिलनी चाहिए।"

बुढ़िया ने सिर डुलाया और सांस भरी।

बोली—"यह तो सच है। लेकिन वे इतने बिगड़े जो जा रहे हैं।"

मार्टिन बोला—"यह तो हम बड़ों पर है न कि अपने उदाहरण से उन्हें हम अच्छी राह दिखाएं।"

"यही तो मैं कहती हूं," बुढ़िया बोली, "मेरे खुद सात हो चुके हैं। उनमें सिर्फ अब एक लड़की है। बुढ़िया बताने लगी कि कैसे और कहां वह अपनी बेटी के साथ रहा करती थी और कितने धेवती-धेवते उसके थे। बोली—"यह देखो, अब मुझमें अगर्चे कुछ कस नहीं रह गया है, फिर भी उनके लिए मैं काम में जुटी ही रहती हूं। और बच्चे भी वे भले हैं। उन्हें छोड़ और कोई भी तो मेरे पास नहीं लगता। नन्हीं ऐनी तो अब मुझे छोड़ किसी के पास जायगी ही नहीं। कहेगी, 'हमारी नानी, हमारी प्यारी अच्छी नानी।" ...और ऐनी की यह याद आते ही बुढ़िया की आंखें एकदम भीग गईं।

लड़के के लिए बोली—"सच तो है। बिचारे का बचपन था, और क्या। ईश्वर उसका सहाई हो।"

यह कहकर जैसे ही वह बोरा उठाकर अपनी कमर पर रखने को हुई कि लड़का कूदकर उसके सामने आ खड़ा हुआ और बोला—'लाओ, यह मैं ले चलूं, मां। मैं उसी तरफ जा रहा हूं।"

बुढ़िया ने 'हां' में सिर हिलाया और बोरा लड़के की कमर पर रख दिया। फिर दोनों साथ-साथ गली से चलते चले। मार्टिन से सेब के पैसे मांगना बुढ़िया बिलकुल ही भूल गई। दोनों आपसमें बोलते-चालते वहां से गये, और मार्टिन खड़ा-खड़ा उन्हें देखता रहा।

आंख से वे ओझल हो गये तो मार्टिन घर वापस आया। जीने पर उसे अपनी ऐनक पड़ी मिली जोकि टूटी नहीं थी। उसे उठा और आरी हाथ में ले वह फिर काम पर बैठ गया। थोड़ा-सा काम किया था कि चमड़े के सूराखों से सूआ निकालना उसकी आंखों को मुश्किल होने लगा। तभी बाहर क्या देखता है कि लैंप वाला गली के लैंप जलाने गली से निकला जा रहा है।

सोचा—रोशनी का समय हो गया दीखता है। सो उसने भी लैंप ठीक किया, उसे टांगा और फिर अपने काम पर बैठ गया। एक जूता उसने पूरा कर लिया। फिर अदल-बदलकर उसे जांचने लगा। सब दुरुस्त था। सो उसने अपने औजारों को समेटा, कटनी-छटनी को बुहार दिया और मोम-धागा और सब चीज-वस्त को ठीक-ठाक रख दिया। फिर लैंप उतार मेज पर रख और आले से अपनी इंजील की पोथी ली। चाहता था कि वहीं से खोलूं जहां पहले दिन निशान लगा छोड़ा था। लेकिन किताब दूसरी जगह खुल गई। उसे खोलना था कि कल का सपना फिर मार्टिन के सामने आ रहा। साथ ही उसे पैरों की आहट-सी सुन मिली, मानों कोई उसके पीछे चल-फिर रहा हो। मार्टिन मुड़ा। उसे लगा जैसे अंधेरे कोने में कई आदमी खड़े हों। लेकिन वह चीन्ह न सका कि कौन हैं। उसी समय एक आवाज फुसफुसाकर मानो कान में बोली—"मार्टिन, मार्टिन, क्या तुम मुझे नहीं पहचानते ?"

मार्टिन संदेह के सुर में बोला—"कौन ?"

आवाज बोली—"यह मैं।"

कहने के साथ अंधियारे कोने से निकल स्टेपान आ आगे हुआ। वह मुस्कराया ! और बादल की भांति फिर अंतर्धान हो गया।

फिर आवाज हुई—"और यह मैं।"

और इसपर अंधेरे में से वह स्त्री गोद में बच्चा लिये आ निकली। वह मुस्कराई, बच्चा हँसा और ये दोनों अंतर्धान हो गये।

फिर तीसरी आवाज आई—"और यह मैं।"

और कहने के साथ ही वह बुढ़िया और सेब लिये वह लड़का आ सामने हुए, दोनों मुस्कराये और अंतर्धान हो गये।

इस पर मार्टिन का हृदय आनन्द से भर आया। उसने प्रभु को स्मरण किया, ऐनक आंखों पर रक्खी और ठीक जहां इंजील खुली थी, पढ़ने लगा। सफे के ऊपर ही पढ़ा—

"मैं भूखा था और तूने मुझे खाना दिया। मैं प्यासा था, तूने मुझे पानी दिया। मैं अजनबी था और तूने मुझे ग्रहण किया।"

और सफे के अंत में पढ़ा—

"इन भाइयों में से एक के लिए, अदना-से-अदना के लिए, जो तूने किया वह मुझको किया समझ। जो दिया मुझे पहुंचा समझ।"

उस समय मार्टिन को प्रत्यक्ष हुआ कि उसका सपना सच्चा हुआ है। उसको प्रतीत हुई कि रक्षक प्रभु सचमुच ही उसके घर पधारे थे और उन्हींने उसका आतिथ्य पाया था।

: २ :

खोखला ढोल

इमेल्यान नाम का एक मजदूर एक दिन अपने मालिक के काम पर जा रहा था। जाते-जाते एक खेती की मेंढ़ पर कहीं से मेंढ़क फुदक कर उसके सामने आ गया। मेंढ़क इमेल्यान के पैर से कुचल ही गया था कि वह तो इमेल्यान की तरकीब से बच गया। इतने में ही सुना कि पीछे से कोई नाम लेकर पुकार रहा है।

मुड़कर देखता है कि एक बड़ी सुन्दर लड़की है। उस लड़की ने कहा—"इमेल्यान, तुम शादी क्यों नहीं कर लेते हो?"

इमेल्यान ने कहा कि भला मैं शादी कैसे कर सकता हूं। जो पहने खड़ा हूं वही कपड़े मेरे पास हैं, और कुछ भी नहीं। सो कौन मुझसे शादी करने को राजी होगा?

लड़की ने कहा—"तुम कहो तो मैं राजी हूं। मैं बुरी नहीं हूं।"

लड़की इमेल्यान के मन को बहुत अच्छी लग रही थी। वह बोला—"तुम तो परी दीखती हो। पर मेरा ठौर-ठिकाना भी नहीं है। हम लोग रहेंगे कहां और कैसे?"

लड़की बोली—"इसकी क्या सोच-फिकर है! आलस कम किया और

मेहनत ज्यादा की तो अपने लायक खाने-पहनने को तो सब कहीं हो जायगा।"

इमेल्यान ने कहा—"यह बात है, तो चल, शादी कर लें। लेकिन बताओ कि चलें कहां ?"

"आओ शहर चलो।"

सो इमेल्यान और लड़की दोनों शहर चले। वहां शहर के परले सिरे पर दूर एक झोंपड़ी में इमेल्यान को लड़की ले गई। दोनों की शादी हो गई और वे घर बसाकर रहने लगे।

एक दिन शहर का राजा वहां से गुजरा। इमेल्यान की बीबी भी राजा की सवारी देखने झोंपड़ी से बाहर निकली। राजा ने जो उसे देखा तो दंग रह गया।

राजा ने मन में कहा—"ऐसी परी-सी सुन्दरी यहां कहां से आ गई!" उसने अपनी सवारी रोककर उसे पास बुलाया। पूछा—"तुम कौन हो?"

सुन्दरी ने कहा—"मैं इमेल्यान किसान की बीबी हूं।"

राजा ने कहा—"ऐसी सुन्दर होकर तुमने किसान से ब्याह क्यों किया? तुम तो रानी होने लायक हो।

सुन्दरी ने कहा—"आप मुझसे ऐसी बात मत कहें। मेरे लिए तो किसान ही अच्छे हैं।"

इस कुछ देर की बात के बाद राजा की सवारी आगे बढ़ गई। लौटकर राजा महलों में आ तो गया; पर इमेल्यान की स्त्री की मूरत उसके मन से दूर नहीं हुई। वह रात भर नहीं सोया। सोचता रहा, कैसे उसे पाऊं। पर उसकी समझ में कोई ठोस जुगत नहीं आई। तब उसने अपने नौकरों को बुलाया और कहा—"कोई तदबीर उस परी को पाने की निकालो।"

राजा के नौकरों ने बताया—"इमेल्यान को काम करने के लिए महल में बुलाइए। यहां हम उससे इतना काम लेंगे, इतना काम लेंगे कि आखिर वह मर ही जाय। तब उसकी बीबी अकेली रह जायगी और आप उसे ले लीजियेगा।"

राजा ने वैसा ही किया। फर्मान हो गया कि इमेल्यान महल में काम करने के लिए आवे और स्त्री के साथ वहीं रहे।

हुक्म इमेल्यान को मिला, तब उसकी स्त्री ने कहा—"इमेल्यान, जाओ दिन भर काम करना, पर रात को सोने घर आ जाना।"

सुनकर इमेल्यान चला गया। महल पहुंचने पर राजा के दीवान ने पूछा—"इमेल्यान, बीबी को छोड़कर तुम अकेले क्यों आये?"

इमेल्यान ने कहा—"उसकी जगह तो वहीं है। घर उससे बनता है। यहां उसे क्या?"

राजा के महलों में उस अकेले को दो आदमियों का काम दिया गया। आशा तो नहीं थी कि वह काम पूरा होगा, पर इमेल्यान उसमें जुट गया और शाम होते-होते अचरज की बात देखो कि काम सब पूरा हो गया। दीवान ने देखा कि काम सब निबट गया है। तब अगले दिन के लिए उससे चौगुना काम बता दिया।

इमेल्यान घर लौटा। वहां सब चीज साफ-सुथरी थी, खाना तैयार था, पानी गरम रक्खा था और बीबी बैठी कपड़े सी रही थी और पति की बाट देख रही थी। उसने पति की आवभगत की, हाथ-पैर धुलाये, खाने-पीने को दिया और काम की बात पूछी।

इमेल्यान ने कहा कि काम की बात क्या पूछती हो! काम तो इतना देते हैं कि बिसात से ज्यादा। काम के बोझ से मुझे मारना चाहते हैं।

स्त्री ने कहा—"काम के बारे में झींकना अच्छा नहीं होता। काम के वक्त आगे-पीछे भी नहीं देखना चाहिए कि कितना हमने कर लिया, कितना बाकी रह गया। बस काम करते चलना चाहिए। बाकी सब अपने-आप ठीक हो जायगा।"

सुन कर इमेल्यान बेफिकरी से रात को सोया। सबेरे उठकर वह काम पर गया और बिना दाएं-बाएं देखे उसमें लग रहा। होनहार की बात कि सांझ से पहले सभी काम पूरा हो गया और अंधेरा होते-होते रात बिताने वह अपने घर पहुंच गया।

राजा के लोग दिन-ब-दिन उसका काम बढ़ाते गये। पर हर रोज शाम होने से पहले सब काम खत्म हो जाता और इमेल्यान सोने अपने घर पहुंच जाता। ऐसे एक हफ्ता बीत गया। राजा के नौकरों ने देखा कि भारी

काम दे-देकर तो वे इमेल्यान का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। उन्होंने तब से मुश्किल और बारीक काम कर दिया। पर उससे भी कुछ न हुआ। क्या बढ़ई का, क्या राजगिरी का और क्या और तरह का, सब काम इमेल्यान ठीक तरह और ठीक वक़्त से पहले कर देता और मजे में रात को घर रवाना हो जाता। ऐसे दूसरा हफ्ता भी निकल गया।

इसपर राजा ने अपने आदमियों को बुलाकर कहा—"क्या मैं तुम्हें मुफ्त का माल खिलाता हूं? दो हफ्ते बीत गये हैं, तुमने क्या करके दिखाया? कहते थे, तुम काम से इमेल्यान को थका दोगे। पर शाम होती नहीं कि खुशी से उसे रोज गाते हुए घर लौटते मैं अपनी आंखों से देखता हूं। क्या तुम लोग मुझे बेवकूफ बनाना चाहते हो?"

बादशाह के सामने वे लोग इधर-उधर करने लगे। बोले—"हमने अपने बस तो भारी-से-भारी काम उसे दिया। पर उसने तो सब ऐसे साफ कर दिया जैसे झाड़ू से बुहार दिया हो। वह तो थकता ही नहीं। फिर हमने बारीक काम सौंपे। उन्हें भी उसने पार लगा दिया। कुछ भी काम दो वह सब काम कर देता है। जाने कैसे? वह, या तो उसकी बीबी, कोई-न-कोई जादू जरूर जानते मालूम होते हैं। हम तो खुद उससे तंग हैं। हां, एक बात सोची है। इमेल्यान को बुलाया जाय, कहा जाय कि महल के सामने दिनभर के अंदर एक मंदिर की इमारत तुमको खड़ी करनी है। अगर वह न कर सके तो उसका सिर कलम कर दिया जाय।"

राजा ने इमेल्यान को बुला भेजा। कहा—"सुनो इमेल्यान, महल के सामने एक नया मन्दिर बनवाना है। कल शाम तक वह तैयार हो जाना चाहिए। अगर कर दोगे तो इनाम दूंगा। नहीं करोगे तो सिर उतरवा लूंगा।

बादशाह की आज्ञा चुपचाप सुनी और इमेल्यान लौटकर चला आया। उसने सोच लिया कि अब जान गई। घर पहुंचकर पत्नी से कहा—"सुनती हो? अब तैयारी करो और यहां से भाग चलो; नहीं तो बेमौत मरना होगा।"

उसकी स्त्री ने कहा—"ऐसे डर क्यों रहे हो? और हम क्यों भाग चलें?"

इमेल्यान ने कहा—"डरने की बात ही है। राजा ने कल-कल में एक पूरा नया मंदिर खड़ा करने का हुक्म दिया है। नहीं कर सकूंगा तो सिर देना होगा। बस, बचने की एक ही राह है। वह यह कि वक्त रहते हम लोग यहां से भाग चलें।"

लेकिन उसकी बीबी ने इस बात को अपने कान पर भी नहीं लिया। बोली—"राजा के पास बहुत-से सिपाही हैं। कहीं से भी वे हमें पकड़ लायेंगे। हम बच नहीं सकते। और जब तक बस हो, हमें राजा का हुक्म मानना चाहिए।"

"हुक्म मैं कैसे मानूं जबकि काम मुझसे होना मुमकिन नहीं है।"

स्त्री ने कहा—"तो भी जी क्यों हलका करते हो? जो होगा देखा जायगा। अभी तो खा-पीकर आराम से सोओ। सवेरे तड़के उठ जाना और सब काम ठीक हो जायगा।

इसपर इमेल्यान आराम से सोया। अगले दिन पौ फटते ही बीबी ने उसे जगाया। कहा—"झटपट तैयार होकर जाओ और मंदिर का काम पूरा कर डालो। यह हथौड़ी है, ये कीलें हैं। अभी वहां एक दिन के लायक बाकी काम मिलेगा।"

इमेल्यान शहर में गया। चौक में पहुंचा तो देखता क्या है कि मंदिर बना-बनाया खड़ा है। वह ऊपरी कुछ काम करने में लग गया जो शाम तक सब पूरा हो गया।

राजा ने जगने पर देखा कि सामने मंदिर तैयार खड़ा है और इमेल्यान यहां-वहां कुछ कीलें गाड़ रहा है। मंदिर बना देखकर राजा को खुशी नहीं हुई। इमेल्यान को सजा अब वह कैसे दे? और उसकी बीबी कैसे हाथ लगे? फिर उसने नौकरों को इकट्ठा किया। कहा—"इमेल्यान ने यह काम भी पूरा कर दिया। बताओ उसे किस बात पर खत्म किया जाय? इस बार कोई पक्की तरकीब निकालो। नहीं तो उसके साथ तुम सबके भी सिर उतारे जायंगे।"

इसपर उन दोनों ने तय किया कि इमेल्यान से महल के चारों तरफ एक दरिया बहाने को कहा जाय, जिसमें किश्तियां तैर रही हों और किनारे-किनारे पक्के घाट हों। राजा ने इमेल्यान को बुला भेजा और

यही हुक्म सुना दिया। कहा—"अगर एक दिन में पूरा मंदिर बना सकते हो तो यह काम भी एक रात में कर सकते हो। कल सब हो जाय। नहीं तो तुम्हारा सिर धड़ पर न रहेगा।"

इमेल्यान अब सब आस छोड़ बैठा और भारी जी से घर आया। घर में पत्नी ने पूछा—"ऐसे उदास क्यों हो? क्या राजा ने और नया काम बताया है?"

जो हुआ था, इमेल्यान ने कह सुनाया। बोला—"चलो, अब भी भाग चलें।"

लेकिन बीबी ने कहा—"राजा के सिपाही हैं। उनसे कहां बचेंगे? जहां पहुंचोगे, वहीं से पकड़ लेंगे। इससे भागना नहीं, हुक्म मानना ही भला है।"

"लेकिन मुझसे उतना सब काम कैसे होगा?"

स्त्री ने कहा—"जी मत छोटा करो। खा-पीकर आराम से सोओ। सबेरे उठ पड़ना और भगवान ने चाहा तो सब ठीक हो जायगा।"

चिंता छोड़कर इमेल्यान सो गया। सबेरे ही उसको पत्नी ने उठकर कहा—"उठो, अब महल जाओ। वहां सब तैयार है। महल के सामने दरिया के किनारे जरा जमीन उठी हुई है। लो यह फावड़ा, उसे हमवार कर देना।"

सबेरे उठते ही राजा ने अचंभे से देखा, जहां कुछ नहीं था, वहां दरिया मौजें ले रहा है, पाल खोले किश्तियां तैर रही हैं। राजा को अचरज तो हुआ; पर न तो पानी से भरी नदी और न उसपर खेलती हुई हंसिनी-सी नौकाओं को देखकर उसके मन में जरा खुशी हुई। इमेल्यान को पकड़ न पाने पर वह इस कदर बेचैन था। उसने सोचा कि अब मैं करूं तो क्या करूं? यह सोचकर उसने फिर अपने नौकरों को बुलवाया।

"देखो तुम लोग," राजा ने कहा, "कोई-न-कोई काम निकालो जो उससे न हो। समझे? जो कहते हैं वह सब कर देता है। और अबतक उसकी औरत हमको नहीं मिल सकी है।"

सोचते-सोचते नौकरों ने एक युक्ति लगाई। राजा के पास जाकर कहा—"इमेल्यान को बुलाकर कहिए कि देखो इमेल्यान, वहां जाओ कि जाने कहां

और वह चीज लाओ कि जाने क्या। तब वह बचकर नहीं निकल सकेगा। वह फिर जहां-कहीं भी जायगा, आप कह दीजिये कि वहां के लिए नहीं कहा था। और जो लायगा, कह दीजिये कि वह हमने मंगाया ही नहीं था। यह कहकर मौत की सजा दे दीजिए और उसकी बीबी ले लीजिए।"

राजा सुनकर खुश हुआ। कहा—"यह तुमने ठीक सोचा है।"

इमेल्यान को बुलाया गया और राजा ने कहा—"इमेल्यान, वहां जाओ कि जाने-कहां और वहां से वह लाओ कि जाने-क्या। अगर नहीं ला सके तो तुम्हारा सिर सलामत नहीं है।"

इमेल्यान ने घर जाकर बीबी से राजा की बात कह सुनाई। सुनकर बीबी सोच में पड़ गई।

बोली—"लोगों ने राजा को इस बार तुम्हें पकड़ने की ठीक तरकीब बता दी है। अब हमें होशियारी से चलना चाहिए।"

यह कहकर वह बैठी सोचती रही। आखिर बोली—"देखो, दूर एक दादी बुढ़िया है। सिपाहियों की वह धरती-मां जैसी है। उससे मदद मांगना। अगर वह तुम्हें कुछ दे, या बताये, तो उसे लेकर महल में आना। मैं वहीं रहूंगी। मैं अब राजा के लोगों से बच नहीं सकती; वे मुझे जबर्दस्ती ले जायंगे। पर थोड़े दिन की बात है। अगर तुम दादी की बात पर चलोगे तो मुझे जल्दी बचा लोगे।"

उसने यात्रा के लिए पति को तैयार कर दिया। साथ में कुछ कलेवे को बांध दिया और चरखे का एक तकुआ दे दिया। कहा—"देखो, यह तकुआ दादी को देना। इससे वह पहचान जायगी कि तुम कौन हो।" यह कहकर ठीक रास्ता बताकर उसे भेज दिया।

इमेल्यान चलते-चलते एक जगह पहुंचा, जहां सिपाही कवायद कर रहे थे। इमेल्यान खड़ा होकर उन्हें देखने लगा। कवायद के बाद बैठकर सिपाही आराम करने लगे। उसने पास जाकर पूछा—"भाइयो, आप लोग जानते हैं कि कौन रास्ता वहां जाने-कहां जाता है और मैं कैसे वह जाने क्या चीज पा सकता हूं।"

सिपाहियों ने अचरज से उसकी बातें सुनीं। फिर पूछा—"तुमको किसने

यह काम देकर भेजा है।"

"मुझको राजा ने यह हुक्म दिया है।"

सिपाहियों ने कहा—"हम भी जिस दिन से सिपाही की नौकरी में आये हैं उसी दिन से वहां-जाने-कहां जा रहे हैं और अभी कहीं नहीं पहुंचे हैं। और वह जानें क्या ढूंढ़ रहे हैं और अभी तक कुछ नहीं पा सके हैं। हमसे भाई, तुम्हें कुछ मदद नहीं मिल सकती।"

इमेल्यान कुछ देर सिपाहियों के साथ ठहर आगे बढ़ा। कोस-पर-कोस चलता गया। आखिर एक जंगल आया। जंगल में एक झोंपड़ी थी और थी सिपाहियों की धरती-मां, वही बुढ़िया दादी, चर्खे पर सूत कात रही थी और रो रही थी। कातते-कातते वह उंगलियों को ले जाकर मुंह के नहीं आंख के पानी से गीला करती थी। इमेल्यान को देखकर बुढ़िया ने चिल्लाकर कहा—"कौन है? तू यहां क्यों आया है?"

तब इमेल्यान ने वह तकुआ बुढ़िया को दिया और कहा—"मेरी स्त्री ने यह देकर मुझे तुम्हारे पास भेजा है।"

बुढ़िया इसपर एकदम मुलायम पड़ गई और हाल-चाल पूछने लगी। इमेल्यान ने सब बता दिया। कैसे लड़की मिली; कैसे वे ब्याह करके गांव में बसे; कैसे मन्दिर बनाया और किश्ती-घाट वाला दरिया बनाया; और अब उसे राजा ने वहां-जाने-कहां जाने और वह-जाने-क्या लाने का हुक्म देकर भेजा है—यह सब उसने बता दिया।

सुनकर दादी का रोना रुक गया। मन में बोली—"अब मेरे संकट कटने का वक्त आया है।" प्रकट में इमेल्यान से कहा—"अच्छा बेटा, बैठो कुछ खा-पी लो।"

खिला-पिलाकर दादी ने बताया कि देखो, यह सूत का पिंड है, इसे लो और सामने लुढ़का दो। इसके सूत के पीछे-पीछे तुम चलते जाना। चलते-चलते समंदर तक पहुंच जाओगे। वहां एक बड़ा शहर दीखेगा। उसमें चले जाना। शहर के पास आखिरी मकान पर एक रात ठहरने को जगह मांगना। वहां आंख खोलकर रहना। तब तुम्हारी चीज मिल जायगी।

इमेल्यान ने कहा—"दादी, मैं पहचानंगा कैसे कि यही वह चीज है?"

बुढ़िया ने कहा—"जब तुम ऐसी चीज देखो जिसकी लोग मां-बाप से भी ज्यादा सुनें, समझ लेना वही है। उसीको राजा के पास ले जाना। तब राजा कहेगा, यह वह चीज नहीं है। तुम कहना, यह वह नहीं है तो लाओ मैं उसे तोड़े देता हूं, और तब तुम उसे धमाधम पीटने लगना। पीटते-पीटते नदी तक ले जाना और टुकड़े-टुकड़े करके उसे नदी में फेंक देना। तब तुम्हारी स्त्री तुम्हें वापस मिल जायगी और मेरे आंसू पुंछ जायंगे।"

इमेल्यान ने दादी को प्रणाम करके विदा ली और सूत के गोले के पीछे-पीछे चला। गोला लुढ़कता और खुलता हुआ आखिर समन्दर के किनारे तक पहुंच गया। वहां एक बड़ा शहर था और उसके दूसरे सिरे पर एक बड़ा मकान। इमेल्यान ने रात को ठहरने के लिए वहां जगह मांगी और मिल गई।

सबेरे उसने सुना कि घर में बाप लड़के को जगा रहा है कि भैया, उठ कर जाओ, जंगल से कुछ लकड़ी काट लाओ।

लेकिन लड़के ने सुना-अनसुना करके कहा—"अभी बहुतेरा वक्त है। ऐसी जल्दी अभी क्या है?"

मां ने कहा—"उठो, बेटा जाओ। तुम्हारे पिताजी के बदन की हड्डी दुखती है। तुम नहीं जाओगे तो उन्हें जाना पड़ेगा। बेटा, दिन बहुत निकल आया है।"

पर लड़के ने कुछ बहाना बना दिया और करवट लेकर फिर सो गया। इमेल्यान ने यह सब सुना।

तभी एकाएक बाहर सड़क पर किसी चीज की जोर की आवाज होनी शुरू हुई। और देखता क्या है कि वह आवाज सुनते ही लड़का फौरन उछलकर उठा और चट कपड़े पहन घर से निकल भागा। इमेल्यान भी कूदकर देखने पीछे लपका कि क्या चीज है जिसका हुक्म लड़का मां-बाप से ज्यादा मानता है। देखता क्या है कि सड़क पर एक आदमी पेट के आगे बांधे एक चीज लिये जा रहा है, जिसे वह दोनों तरफ दो कमचियों से पीट रहा है। वही चीज थी जो इस जोर से गूंज रही थी और जिसकी आवाज पर लड़का घर से भाग आया था। वह चीज गोल थी। दोनों सिरों पर खाल

मढ़ी थी। पूछा, कि इसका क्या नाम है ?

लोगों ने बताया—"ढोल।"

"क्या यह अन्दर खोखला है ?"

"हां, अन्दर यह खोखला है।"

इमेल्यान ताज्जुब में रह गया। उसने कहा—"यह हमें दे दो।" पर देने वाले ने नहीं दिया। इसपर इमेल्यान ढोल वाले के पीछे-पीछे हो लिया। सारे दिन साथ लगा रहा। आखिर जब ढोल वाला सोया, तब ढोल उठा कर इमेल्यान भाग आया।

भागा-भाग, भागा-भाग, आया अपनी बस्ती में। पहले तो बीबी को देखने पहुंचा घर। पर वह वहां नहीं थी, इमेल्यान के जाने के अगले दिन उसे राजा के लोग ले गये थे। इसपर इमेल्यान महल की ड्योढ़ी पर पहुंचा और खबर भिजवाई कि इमेल्यान लौट आया है जो वहां गया था कि जाने-कहां और वह ले आया है कि जाने-क्या।

सुनकर राजा ने हुक्म दिया कि कह दो अगले दिन आवे।

इसपर इमेल्यान ने कहलवाया—"मैं वह चीज लेकर आया हूं जो राजा ने चाही थी। राजा मेरे पास उसे लेने नहीं आ सकते तो मैं ही उनके पास आता हूं।"

इसपर राजा बाहर आये। उन्होंने पूछा—"अच्छा, तुम कहां गये थे ?"

इमेल्यान ने ठीक-ठीक बता दिया।

राजा ने कहा—"वह असली जगह नहीं है। अच्छा, लाये क्या ?"

इमेल्यान ने ढोल दिखा दिया। लेकिन राजा ने उसे देखा भी नहीं। कहा—"यह वह चीज नहीं है।"

इमेल्यान ने कहा—"अगर यह वह चीज नहीं है तो मैं इसे पीटकर तोड़े देता हूं। फिर देखा जायगा।"

यह कहकर इमेल्यान ढोल पीटता हुआ महल से बाहर निकल आया। ढोल का पिटना था कि पीछे-पीछे राजा की फौज निकल आई और इमेल्यान को सलाम करके उसके हुक्म के इन्तजार में खड़ी हो गई।

राजा ने अपनी खिड़की में से यह देखा तो अपनी फौज को चिल्ला-

चिल्लाकर कहा कि इमेल्यान के पीछे मत जाओ। पर किसीने कुछ नहीं सुना और सब ढोल के पीछे चल पड़े।

राजा ने जब यह देखा तब हुक्म दिया कि इमेल्यान की बीबी उसको दे दो और वापस वह ढोल मांगा।

पर इमेल्यान ने कहा—"यह नहीं हो सकता। इसको तोड़कर मुझे नदी में फेंक देना है।"

यह कहकर इमेल्यान ढोल पीटता हुआ नदी की तरफ बढ़ गया। सिपाही सब उसके पीछे थे। नदी पहुंचकर ढोल के टुकड़े-टुकड़े करके इमेल्यान ने नदी की धार में फेंक दिया। और सिपाही सब अपने-अपने घर भाग गये।

तब इमेल्यान अपनी बीबी को साथ लेकर अपने घर पहुंच गया। उसके बाद राजा ने उन्हें नहीं सताया और वे सुख से रहने लगे।

: ३ :

सूरत की बात

हिन्दुस्तान के सूरत शहर में एक अतिथिशाला थी। उसीकी बात है। सूरत शहर उन दिनों बढ़ा-चढ़ा बन्दरगाह था और दुनियाभर से देश-विदेश के यात्री वहां आया करते और उस अतिथिशाला में मिला करते थे।

एक दिन एक फारसी आलिम वहां आये। उन्होंने ईश-तत्त्व पर मनन-चिंतन करने में जीवन बिताया था और उस विषय पर बहुत-कुछ लिखा-पढ़ा था। ईश्वर के बारे में उन्होंने इतना सोचा, इतना पढ़ा और इतना लिखा था कि आखिर उनकी बुद्धि भ्रम में पड़ गई थी और ईश्वर की सत्ता से भी उनका विश्वास जाता रहा था। यह पता पाकर वहां के शाह ने अपने देश फारस से उन्हें देश-निकाला दे दिया था।

जीवनभर सृष्टि के आदि-कारण पर विवाद करते-करते यह विचारे तत्त्व-भेदी आखिर विभ्रम में पड़ गये थे और बजाय समझने के कि उनकी बुद्धि में विकार है, वह मानने लग गये थे कि सृष्टि की व्यवस्था में ही कोई मूल-चेतना काम नहीं कर रही है।

इन आलिम-फाजिल के साथ अफ्रीका का एक हब्शी गुलाम भी था।

वह संग-संग रहता था। आलिम अतिथिशाला में आये तो गुलाम दरवाजे के बाहर ही ठहर गया। यहां वह धूप में एक पत्थर पर बैठ गया और मक्खियां बहुत थीं, सो बैठा-बैठा मक्खियां उड़ाने लगा।

वह फारसी आलिम अन्दर पहुँचकर आराम से मसनद पर जम गये और एक अफीम के शरबत के प्याले का हुक्म दिया। उसकी घूंट लेने पर उनके दिमाग की नसों में तेजी आ गई। उस वक्त शाला के खुले दरवाजे में से उधर बैठे गुलाम से वह बोले—"क्यों रे, क्या ख्याल है तेरा ? खुदा है या नहीं ?"

"वह तो है—"

गुलाम ने कहा और कमर में बँधी अपनी पेटी में से लकड़ी की एक मूरत उसने निकाली। बोला—

"—जी, देखिए, यह है। इसी खुदा ने मेरे पैदा होने के रोज से मुझे बचाया और पाला है। हमारे देश में हरएक आदमी जिस बरगद की पूजा करता है, वह खुदा मेरा उसीकी लकड़ी का बना है।"

वहां अतिथिशाला में जमा हुए और लोग आलिम मालिक और बेवकूफ गुलाम की यह बातचीत अचरज से सुनने लगे। पहले तो उन्हें मालिक के सवाल पर आश्चर्य था। लेकिन गुलाम के जवाब पर और भी आश्चर्य हुआ।

उन्हीं लोगों में एक ब्राह्मण पंडित थे। गुलाम की बात सुनकर उन्होंने उस तरफ मुंह किया और बोले—

"अरे मूर्ख, क्या तुम संभव समझते हो कि ईश्वर को तुम अपनी पेटी में लिए फिर सकते हो ? ईश्वर एक है, अखिल है। वह ब्रह्म है। समस्त सृष्टि से वह बड़ा है, क्योंकि स्रष्टा है। ब्रह्म ही सत् है, वही सत्ताधीश है। उसकी महिमा-पूजा में गंगा-तट पर अनेकानेक हमारे मंदिर बने हुए हैं, जहां सन्निष्ठ ब्राह्मण उसकी पूजा-अर्चा में निरत रहते हैं। सत्य परमेश्वर का ज्ञान उन्हींको है और किसीको नहीं है। सहस्र-सहस्र वर्ष हो गये परन्तु कई काल-चक्रों के अनन्तर भी ब्राह्मण ही उस ब्रह्म-ज्ञान के अधिकारी हैं, क्योंकि स्वयं ब्रह्म उनके रक्षक हैं।"

ब्राह्मण पंडित ने इस भाव से यह कहा कि उपस्थित मंडली सब उनके

प्रभाव से विश्वस्त हो रहेगी। लेकिन वही एक यहूदी दलाल बैठे थे। जवाब में वह बोले—

"नहीं, सच्चा ईश्वर हिन्दुस्तान के मंदिर में नहीं है। न ब्राह्मण लोग ईश्वर को विशेष प्रिय हैं। सच्चा ईश्वर ब्राह्मणों वाला ईश्वर नहीं है। बल्कि इब्राहीम, इसाक, याकूब का खुदा सच्चा खुदा है। और उसका साया सबको छोड़ पहले इजराईलवालों को मिला है। दुनिया शुरू हुई तब हमारी जाति को ही उसकी शरण का वरदान मिला है। हम लोग जितने उसके निकट हैं और कोई नहीं है। अगर हम आज दुनिया पर छितरे हुए फैले हैं, तो इसका और मतलब नहीं है, यह तो हमारी परीक्षा है, क्योंकि उसका वचन है कि एक दिन होगा कि उसकी प्रिय (हमारी) जाति के सब जन येरुशलम में जमा होंगे। तब येरुशलम का हमारा प्राचीन मंदिर अपनी पहली महिमा पर आ जायगा और हजरत इजराईल वहां बैठकर तमाम जातियों और मुल्कों पर हकूमत करेंगे।"

इतना कहते भावावेश से उस यहूदी के आंसू आ गये। वह और भी कहना चाहते थे; लेकिन एक रोमन पादरी भी वहां थे। वह बीच में पड़कर यहूदी की तरफ मुखातिब होकर बोले—

"तुमने जो कहा सत्य नहीं है। तुम ईश्वर के माथे अन्याय मढ़ते हो। वह तुम्हारी जाति को औरों से ज्यादा प्यार नहीं कर सकते। नहीं, अगर यह सच भी हो कि इजराईल के लोग ईश्वर को विशेष प्यारे थे, तो इधर १९०० साल से उन लोगों ने अपनी करतूतों से उसे नाराज कर दिया है। जभी तो ईश्वर ने अपने क्रोध में तुम्हारी तमाम जाति को तितर-बितर कर डाला है। अब अपने मजहब में औरों को तुम बढ़ा भी नहीं सकते हो और उसके माननेवाले जहां-तहां थोड़े-ही-बहुत रहते जा रहे हैं। परमात्मा किसी खास जाति के साथ पक्षपात नहीं करता। हां, रोमन-चर्च को उसने विशेष प्रकाश दिया है और जिसका कल्याण होनेवाला है उसको वह उस चर्च की शरण भेज देता है। इससे रोमन-चर्च के सिवाय मुक्तिका उपाय दूसरा नहीं।"

वहां एक प्रोटेस्टेंट भी थे। रोमन पादरी के ये वचन सुनकर उनका चेहरा पीला हो आया और रोमन पादरी की तरफ मुड़कर वह बोले—

"कैसे कहते हो कि मुक्ति तुम्हारे धर्म में है। असल में रक्षा और मुक्ति उन्हींको मिलेगी जो ईशु के उपदेशों को मन से और सचाई से मानेंगे और उसके अनुसार चलेंगे।"

उस समय एक तुर्क, जो सूरत में ही चुंगी दफ्तर में अफसर थे, चुरट पीने बैठे थे, उन दोनों पादरियों की तरफ उन्होंने ऐसे देखा मानो दोनों भूल में हैं। और बोले—

"रोमन या दूसरे ईसाई धर्म में आपका ईमान रखना अब फिजूल है। बारह सौ बरस हुए कि उसकी जगह एक सच्चे मजहब ने ले ली है। उसके नबी हजरत मोहम्मद पर ईमान लाइये। वह मजहब है इस्लाम। आप देखते ही हैं कि इस्लाम किस तरह दोनों मुल्क यूरोप और एशिया में बढ़ता जा रहा है। यहांतक कि इल्मो हुनर के मरकज चीनमें भी वह फैल रहा है। आपने अभी खुद कहा था कि खुदा ने यहूदियों का साथ छोड़ दिया है। यह इससे भी साबित है कि यहूदियों की छीछालेदर हो रही है और उनका मजहब फल नहीं रहा है। तो फिर इस्लाम की सचाई का आपको इकबाल करना होगा, क्योंकि उनको दूर-दराज तक फतह हासिल हो रही है। आखिर बहिश्त में उन्हींको जगह होगी जो मोमिन होंगे। और मुहम्मद को खुदाका आखिरी पैगम्बर मानकर उसपर ईमान लावेंगे। उनमें भी वह जो उमर के पैरोकार होंगे, अली के नहीं। अली को माननेवाले काफिर हैं।"

इसके जवाब में उस फारसी आलिम ने कुछ कहना चाहा, क्योंकि वह अली के तबके के थे। लेकिन तबतक तो वहां उपस्थित नाना मत-संप्रदायों के लोगोंके बीच खासा विवाद छिड़ आया था। अबीसीनिया के ईसाई वहां थे और तिब्बत के लामा, ईस्माईली और अग्निपूजक, सब-के-सब परमात्मा के बारे में और उसकी सच्ची राह-पूजा के बारे में झगड़ रहे थे। सबका आग्रह था कि उन्हींकी जाति और देश को सच्चे ईश्वर का ज्ञान मिला है और उन्हींकी विधि सच्ची है।

बहस हो रही थी और चिल्लाहट मची थी। पर उनके बीच एक महाशय चुप थे। यह चीन देश के थे और कनफ्यूशस में श्रद्धा रखते थे। एक कोने में अपने शांत बैठे थे और विवाद में भाग नहीं ले रहे

थे। चुपचाप वह चाय पी रहे थे और दूसरे लोग जो बोल रहे थे सबकी सुनते थे; पर अपनी कुछ नहीं कहते थे।

उस तुर्क ने उन सज्जन को इस तरह बैठे देखा और बोला—"ऐ चीनी दोस्त, जो मैंने कहा उम्मीद है उसकी ताईद मुझे तुमसे मिलेगी। तुम चुप बांधे बैठे हो, लेकिन अगर बोले तो मैं जानता हूं कि मेरी राय की ताईद ही करोगे। तुम्हारे मुल्क के व्यापारी जो चुंगी के मामले में मेरी मदद लेने आते हैं, उनका कहना है कि चीन में अगरचे बहुतेरे मत चले, लेकिन चीन के लोगों को इस्लाम ही सबसे बढ़कर मालूम हुआ। वे खुशी से उसे कबूल करते जा रहे हैं। मेरी बातकी तुम ताईद करोगे मैं जानता हूँ। इससे बोलो कि खुदा और उनके सच्चे रसूल की बाबत तुम्हारा क्या खयाल है!"

दूसरे लोगों ने भी उन चीनी आदमी की तरफ मुड़कर कहा—"हां, हां, बताओ कि इस विषय में तुम क्या सोचते हो?"

कनफ्यूशस के अनुयायी उन चीनी सज्जन ने आंखें बंद कीं, जैसे अपनी ही थाह ली। फिर आंखें खोलीं और अपनी चौड़ी आस्तीनों में से बाहर निकाल दोनों हाथों को अपनी छाती पर ले लिया और शांत और सौम्य वाणी में उन्होंने कहना आरम्भ किया—

"भाइयो, मुझे मालूम होता है कि बड़ा कारण अहंकार है। वही धर्म-विश्वास के मामलों में हमको आपस में सहमत होने से रोकता है। आप लोग मेहरबानी करें और आपकी इच्छा हो तो एक कहानी कहकर मैं इस बात को साफ करना चाहूँगा।

"हम लोग यहां चीन से एक अंग्रेजी जहाज पर सवार होकर आये हैं। वह जहाज दुनिया भर का चक्कर लगा चुका है। राह में पानी के लिए हमें ठहरना था। सो सुमात्रा द्वीप के पूर्वी किनारे पर हम उतरे। वक्त था और ऊपर धूप थी। इससे उतरकर हम कुछ जने समुद्र के किनारे नारियलों की छांह में बैठ गये। पास ही वहां के लोगों का गांव था। हम उस समय जगह-जगह और मुल्क-मुल्क के आदमी वहां जमा थे।

"बैठे हुए थे कि एक अंधा आदमा उसी तरफ आया। पीछे मालूम हुआ कि लगातार बहुत काल सूरज की तरफ देखते रहने से वह आदमी अंधा

हुआ है ।

"असल में आंख गाड़कर वह सूरज का भद और उनकी ज्योति को अपनी समझ में पकड़ रखना चाहता था। उस कोशिश में वह एक अर्से तक रहा । सदा उधर ही ताका करता । नतीजा यह हुआ कि सूरज की रोशनी से उसकी आंखों का नुकसान हुआ और वह अंधा हो गया ।

"अंधा होने पर तो और भी वह अपने मन में तर्क चलाने लगा । सोचता कि सूरज की रोशनी कोई तरल पदार्थ तो है नहीं, क्योंकि तरल होती तो इस बरतन से उस बरतन में ढाली जा सकती और पानी की भांति हवा से वह यहां-वहां भी हिलती-डुलती दीखती । और न वह आग है । आग होती तो पानी उसे बुझा सकता। न वह चेतन आत्मा है, क्योंकि आत्मा तो अदृश्य है और रोशनी आंखों से दीखती है । फिर न वह कोई जड़ वस्तु है, क्योंकि उसे उठा-पकड़ नहीं सकते । और यदि सूरज की रोशनी तरल नहीं है, अग्नि अथवा चेतन या जड़ भी नहीं है तो सिद्ध हुआ कि वह है ही नहीं । अतः वह असिद्ध है ।

"इस तरह उसका तर्क चलने लगा। और सदा सूरज की तरफ देखने और बुद्धि लगाये रखने से उसने अपनी आंख भी और बुद्धि भी दोनों को खो दिया । सो जब वह अंधा हो गया तो उसे और पक्का हो गया कि सूरज की रोशनी कोई सत्-वस्तु ही नहीं है ।

"इस अंधे आदमी के साथ एक दास भी था । उसने मालिक को नारियल के पेड़ों की छांह में बिठा दिया था और जमीन पर से एक नारियल उठाकर रात के लिए रोशनी का इंतजाम करने लगा। बटकर नारियल की जटा की उसने बत्ती बनाई; गिरी को कुचल कर उसीके खोल में तेल निकाल लिया और बत्ती को उस तेल में भिगोकर रख दिया ।

"वह दास वहां बैठा जब यह कर रहा था तभी उसका अंधा मालिक उससे बोला कि क्यों रे, मैंने तुझे ठीक कहा था न कि सूरज नहीं है । देखो यह कैसा गुप अंधेरा चारों तरफ है । फिर भी लोग कहते हैं कि सूरज है......अगर है तो भला क्या है ?

"दास बोला—'यह तो मैं नहीं जानता कि सूरज क्या है। सो जानने

से मुझे है भी क्या! पर रोशनी क्या है यह तो मैं जानता ही हूं। यह मैंने अपना दीया तैयार कर लिया है। उसके सहारे उंगली पकड़कर मैं आपको राह दिखाने के काम भी आ जाऊंगा और रात को झोंपड़ी में उससे जो चीज आप चाहें पाकर दे भी सकूंगा।'

"इतना कहकर उसने अपने नारियल के दीपक को ऊपर उठा लिया। बोला—

"सो मेरा तो यही सूरज है।"

"पास ही वहां एक लंगड़ा आदमी भी बैसाखी रक्खे बैठा था। यह सुनकर वह हँस दिया और अंधे आदमी से बोला—'मालूम होता है तुम जन्म के अन्धे हो। तभी तो नहीं जानते सूरज क्या है। मैं बताता हूं, क्या है। वह एक आग का गोला है। हर सबेरे समन्दर में से उगता और शाम हमारे टापू की पहाड़ियों में जाकर छिप जाता है। हम यह रोज देखते हैं। आंखें होतीं तो तुम भी देख लेते।"

"यह बातचीत एक मछुआ मल्लाह भी सुन रहा था। वह लंगड़े आदमी से बोला कि दीखता है तुम अपने इस छोटे-से टापू से बाहर कभी कहीं गये नहीं हो। जो तुम लंगड़े न होते और मेरी तरह डोंगी लेकर बाहर निकल सकते तो देखते कि सूरज तुम्हारी पहाड़ियों में जाकर नहीं छिपता है। लेकिन जैसे ही हर सबेरे वह निकलता समन्दर से है, वैसे हर रात डूबता भी समन्दर में ही है। जो कह रहा हूं उसको तुम बिलकुल सच्ची बात मानना। क्योंकि हर रोज में यह अपनी आंखों देखता हूं।

"उस समय हमारे दल में एक हिन्दुस्तानी भी थे। बात के बीच में पड़कर वह बोले—'कोई समझदार आदमी तो नासमझी की ऐसी बात कर नहीं सकता। तुमने जो कहा उसपर मुझे अचरज होता है। आग का गोला पानी में उतरे तो भला बिना बुझे कैसे रहेगा? असल में वह गोला नहीं है, न आग है। वह तो एक देवता हैं जो सात घोड़ों के रथ में बैठकर स्वर्ण-पर्वत मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। तभी राहु और केतु नामक असुर उन देवता पर चढ़ाई करते हैं और ग्रस लेते हैं। तब दुनिया पर अंधकार छा जाता है। लेकिन हमारे पंडित-पुरोहित होम-स्तवन आदि करते हैं। उससे देवता मुक्त

हो जाते हैं और फिर प्रकाश देने लगते हैं। तुम-जैसे अनजान लोग जो बस अपने द्वीप के इर्द-गिर्द रहते हैं और आगे का कुछ नहीं जानते, वहीं ऐसी बचपन की बात कह सकते हैं कि सूरज उन्हींके देश के लिए होता है।'

"एक मिस्री सज्जन भी वहां मौजूद थे। उनका पहले एक अपना जहाज था। अपनी बारी लेकर वह बोले—'तुम्हारी बात भी सही नहीं है। सूरज कोई देवता नहीं है। और न तुम्हारे हिन्दुस्तान के या तुम्हारे स्वर्ण-पर्वत के चारों तरफ ही घूमता है। मैं दूर-दूर घूमा हूं। काले सागर गया हूं, अरब का किनारा मेरा देखा है, मेडागास्कर और फिलिपाइन टापू भी मैंने घूमे हैं। सूरज हिन्दुस्तान को ही नहीं, सारी धरती को रोशनी देता है। कोई एक पहाड़ का चक्कर वह नहीं करता, पर पूरब में दूर कहीं जापान के टापू के पार वह उगता है और पच्छिम में उधर इंग्लिस्तान के द्वीपों के परली तरफ कहीं छिपता है। जभी तो जापान के लोग अपने देश को 'निपन' कहते हैं, जिसका मतलब होता है सूर्योदय। मैं इस बात को पूरे भरोसे से कह सकता हूं, क्योंकि अव्वल तो मैंने खुद कम नहीं देखा-जाना है, और फिर अपने दादा से सुनकर भी मैं बहुत जानता हूं। ओर से छोर तक समन्दर तमाम हमारे बाबा का छाना हुआ था।'

"अभी वह मिस्री सज्जन और आगे भी कहते। लेकिन हमारे जहाज के एक अंग्रेज नाविक जो वहीं थे, बीच में काटकर बोलने लगे—

"असल में तो हमारे इंग्लैंड देश के रहनेवाले लोगों से सूरज की गति के बारे में ज्यादा और कोई नहीं जान सकता। हमारे मुल्क का बच्चा-बच्चा जानता है कि सूरज न कहीं से निकलता है, न कहीं छिपता है। वह तो सदा पृथ्वी के चारों तरफ घूमता रहता है। इसका पक्का सबूत यह है कि हमने धरती का पूरा चक्कर लगाया है, पर सूरज से तो जाकर हम कहीं नहीं टकराये। जहां गये, सूरज सबेरे दीखने लगता और रात को छिप जाता। ठीक जैसे कि यहां होता है।'

"यह कहकर वह अंग्रेज छड़ी से रेत में नकशा बनाकर अपनी बात समझाने लगे कि किस तरह सूरज धरती के चारों तरफ आसमान में चक्कर लगाता है। लेकिन वह साफ-साफ नहीं समझा सके। इससे जहाज के बड़े

अफसर को बताकर बोले कि वह मुझसे ज्यादा इन बातों को जानते हैं। वह ठीक-ठीक आपको समझा सकेंगे।

"वह सज्जन, समझदार और बुर्दबार थे। अबतक चुपचाप सब सुने जा रहे थे। खुद कहे जाने से पहले वह नहीं बोले थे। अब सबका उनसे अनुरोध होने लगा। इसलिए बोले—

"आप सब लोग एक-दूसरे को असल में वरगला रहे हैं और खुद ... धोखा खा रहे हैं। सूरज धरती के चारों तरफ नहीं घूमता, बल्कि धरती उसके चारों तरफ घूमती है। इस सफर में वह खुद भी अपनी धुरी पर घूमती जाती है। उसका एक चक्कर चौबीस घंटे में पूरा होता है। इतने समय में न सिर्फ़ जावा, फिलिपाइन या जहां हम बैठे हैं, वह सुमात्रा का टापू ही सूरज के सामने आ जाते हैं, बल्कि अफ्रीका, यूरोप, अमरीका या और जो मुल्क हों उस सूरज के सामने हो रहते हैं। सूरज किसी एक पहाड़ या टापू या एक समन्दर या एक धरती के लिए नहीं चमकता। बल्कि हमारी पृथ्वी की तरह और ग्रह हैं, उनको भी वह चमकाता है। अगर आप अपने पैर के नीचे की धरती के बजाय ऊपर आसमान पर भी निगाह रक्खा करें तो आप सभी लोग यह आसानी से समझ सकते हैं। तब यह मानने की जरूरत आपको न रहेगी कि सूरज आप के लिए या आप ही के लिए उगता और प्रकाश करता है।'

"जगत के देश-देश देखे हुए और ऊपर आसमान पर भी निगाह रखनेवाले उन अनुभवी-ज्ञानी ने उनको यह सद्बोध दिया।"

कन्फ्यूशस के चेले वह चीनी महोदय ऊपर की कहानी सुनाकर अन्त में बोले—"इस तरह मत-मतांतर के बारे में यह अहंकार ही है जो हममें फूट डालता है और भूल करवाता है। सूरज की उपमा से ईश्वर को भी जान लीजिए। सब लोग अपना-अपना परमात्मा बनाना चाहते हैं। या कम-से कम अपने देश-जाति के लिए एक विशेष ईश्वर को मानना चाहते हैं। हरेक मुल्क और जाति के लोग उस ईश्वर को अपने मंदिर-गिरजों में घेरकर बांध लेना चाहते हैं, जो सारे ब्रह्माण्ड से भी बड़ा है और कुछ जिससे खाली नहीं है।

"क्या आदमी का बनाया कोई मंदिर-गिरजा इस कुदरत के मंदिर की

बराबरी कर सकता है ? खुद भगवान ने यह जगत सिरजा है कि सब लोग यहां एक रहें और सिरजनहार मानें। अरे, आदमी के तमाम देवालय उसी की नकल तो हैं। और भगवान का आलय स्वयं यह जगत है। मंदिर क्या होता है ? उसमें आंगन होता है, छत होती है, दीपक होते हैं, मूर्तिचित्र होते हैं। वहां उपदेश लिखे मिलते हैं, शास्त्र-पुराण रक्खे होते हैं। वेदी होती है, पुजारी होते हैं और पुजापे की भेंट-पूजा चढ़ती है। लेकिन किस देवालय का समन्दर जैसा खुला आंगन है ? आकाश के चंदोए जैसा किस मंदिर का कलश है ? सूरज, चांद और तारे किसके प्रकाशदीप हैं ? सजीव भक्ति से भीगे उदार संतों के समान स्फूर्तिदायक चित्र-मूर्तियां और कहां हैं ? आदेश और आलेख्य ईश्वर की महिमा के ऐसे सुलभ और कहां हैं जैसे इस जगती पर ? यहां हर कहीं तो उन दयाधाम की दया के अनुकंपा के स्मृति-चिह्न हैं। और कहां वह नीति-शास्त्र है जिसका वचन आदमी के भीतर की वाणी जितना स्पष्ट और अविरोधी है ? कौन पूजक और कौन पुजारी उस आत्माहुति से बढ़कर है जो इस पृथ्वी पर स्त्री-पुरुष नित्य एक-दूसरे के प्रति दे रहे और देकर जी रहे हैं ? और कौन वेदी है जो सत्पुरुष के हृदय की वेदी की उपमा में ठहर सके, कि ज़हां का चढ़ा उपहार स्वयं भगवान ग्रहण करते हैं ?

"ईश-कल्पना जितनी ही ऊंची उठती जायगी उतना सद्ज्ञान बढ़ेगा। उस ज्ञान के साथ-साथ मनुष्य स्वयं उत्तरोत्तर वैसा ही होता जायगा। उसी महामहिम की भांति कल्याणमय, दयामय और प्रेममय। फिर वह जीवमात्र को उसीकी भांति स्नेह करेगा।

"इसलिए सब जगह जो उसीका प्रकाश और उसीकी महिमा देखता है, वह किसीकी त्रुटि नहीं निकालेगा, न किसीको हीन मानेगा। जो उस ज्योति की एक रेख लेकर, मूर्ति बना उसीमें भगवान को देख लेता है, उसकी श्रद्धा भी स्खलित नहीं करेगा। न तो वह उस नास्तिक को हीन भाव से देखेगा जो दुर्दैव से ही अंधा होकर सूरज की रोशनी से अकस्मात् वंचित बन गया है।"

इन शब्दों में कन्फ्यूशस के शिष्य चीन के उस सत्पुरुष ने अपनी मान्यता

प्रकट की। सुनकर वहां मौजूद सब आदमी शांत और गंभीर हो आये और मत-मतांतरों के बारे में अपना सब विवाद भूल गये।

: ४ :

देर हो, अंधेर नहीं

पाटनपुर नगर में हरजीतराय नाम का एक व्यापारी था। उसके दो दुकानें थीं और रहने का अपना निज का घर। हरजीत जवान था। स्वस्थ शरीर, बाल घुंघराले, हँसता चेहरा। विनोदी स्वभाव का था और गाने का उसे शौक था। उमर पर उसे शराब का चस्का भी लगा था और पैसा होने पर उसे रंगरेली सूझती थी। लेकिन शादी हो गई तो उसकी आदतें धीमे-धीमे बदल गईं। खास मौकों की बात दूसरी, नहीं तो शराब उसने अब छोड़ दी थी।

एक बार वह कातकी के मेले को जा रहा था। जाने लगा और पत्नी से विदा ले रहा था तो वह बोली, "देखो, आज न जाओ, मुझे बुरा सपना दीखा है।"

हरजीत हँस दिया। बोला, "मैं जानता हूँ कि तुमको यह डर है कि मैं मेले में गया तो बहक जाऊंगा और पैसा बरबाद करके आऊंगा। यही न?"

बीबी ने कहा कि ठीक मालूम नहीं कि यही डर है कि दूसरा है। लेकिन मुझे बुरा सपना हुआ है। सपने में दीखा कि तुम जब लौटे और टोपी उतारी तो सारे बाल तुम्हारे सफेद-फक पड़े हुए हैं।

हरजीत और भी हँसा। बोला, "यह तो और अच्छे भाग्य का सपना है। देख लेना कि इसका फल होगा कि मैं जितना माल ले जाता हूं, वह सब बिक जायगा और तुम्हारे लिए तरह-तरह की सौगात लेकर लौटूंगा।"

इस भांति उसने परिवार से राजी-खुशी विदा ली और चल दिया।

आधे पड़ाव चलने पर उसे अपनी जान-पहचान का एक और व्यापारी मिला। वे दोनों एक साथ सराय में ठहरे। साथ ही खाया-पीया और फिर पास-पास के कमरों में सोने चले गये।

सबेरे देर तक सोने की हरजीत की आदत नहीं थी। और ठंड-ठंड में रास्ता चलना भी आसान होता है, इसलिए तड़का फूटने से पहले उसने

गाड़ीवान को जगाया। कहा कि गाड़ी जोतो और चलो।

यह कहकर वह सराय के मालिक के पास गया जो वहीं पिछवाड़े रहता था। सरायवाले का लेना चुकाया, उसे धन्यवाद दिया और हरजीत अपने सफर पर आगे बढ़ा।

कोई दसेक कोस चलने पर उसने बैल खोले कि कुछ उन्हें खिला-पिला दे। खुद भी जरा आराम किया। सुस्ताने के बाद फिर सरायवाले को चाय के लिए कहकर अपनी बंसरी निकाल बजाने लगा।

तभी एक इक्का आकर वहां रुका। इक्का सजा-बजा था और घोड़े के गले में घंटी बज रही थी। उसमें से एक अफसर उतरे, पीछे दो सिपाही। आकर अफसर ने हरजीत से सवाल पूछने शुरू किये कि तुम कौन हो, कहां से आये हो?

हरजीत ने सवालों का माकूल जवाब दिया और कहा—"आइये, चाय में मेरा साथ दीजिएगा?"

लेकिन अफसर निमंत्रण को अनसुना करके अपनी जिरह पर कायम रहे। "पिछली रात तुम कहां थे? अकेले थे? या और कोई व्यापारी साथ था? आज सबेरे वह दूसरा आदमी तुम्हें मिला? अंधेरे-तड़के तुम सराय से क्यों चल दिये?" इत्यादि—

हरजीत अचरज में था कि ये सब प्रश्न उससे क्यों किये जा रहे हैं? तो भी जैसा था, वह सब बताता चला गया। फिर उसने कहा, "आप तो मुझसे इस तरह सवाल-पर-सवाल पूछ रहे हैं जैसे मैं कोई चोर-डाकू हूं। अपने काम से मैं जा रहा हूं, मुझसे सवाल पूछने की जरूरत नहीं है।"

अफसर ने इसपर साथ के सिपाहियों को पास बुला लिया। कहा, "मैं इस जिले का पुलिस अफसर हूं। सवाल मैं इसलिए पूछता हूं कि जिसके साथ तुम कल रात ठहरे थे, उसका आज गला कटा हुआ पाया गया है। अब हम तुम्हारी तलाशी लेंगे।"

इस पर वे तीनों कमरे में आ गये और अफसर-सिपाही सबने मिलकर हरजीत का सामान खोलना शुरू किया और देखते क्या हैं कि सामान में से एक छुरा बरामद हुआ!

अफसर ने कहा—"यह किसका है ?"

हरजीत देखता रह गया। खून से दागी उस छुरे को अपने सामान में से निकलते देखकर वह अचकचा गया था। वह डर गया।

"इस चाकू पर खून के निशान कैसे हैं ?"

हरजीत ने जवाब देने की कोशिश की। लेकिन शब्द उसके मुंह से ठीक नहीं निकले। लड़खड़ाती आवाज में कहा, "मैं—मेरा नहीं—मैं नहीं जानता।"

पुलिस-अफसर ने कहा, "इसी सबेरे अपने बिस्तरे पर वह व्यापारी मरा पाया गया है। किसीने गला काट दिया है। एक तुम्हीं हो सकते हो जिसने यह काम किया। मकान अंदर से बंद था और तुम्हारे सिवाय वहां और कोई न था। फिर तुम्हारे सामान में से यह छुरा भी निकला है। इसपर खून के निशान तक मौजूद हैं। तिसपर तुम्हारा चेहरा और तरीका भी भेद खोले दे रहा है। इसलिए सच कहो कि तुमने उसे कैसे मारा और कितना रुपया तुम्हारे हाथ लगा ?"

हरजीत ने शपथ-पूर्वक कहा, "यह मेरा काम नहीं है। शाम को साथ व्यालू करने के बाद मैंने उस व्यापारी को फिर देखा तक नहीं। मेरे पास अपने पांच हजार रुपयों के अलावा और कुछ नहीं है। यह चाकू मेरा नहीं है।"

लेकिन यह कहते हुए उसकी जबान लड़खड़ाती थी, चेहरा पीला था और डर से वह ऐसा कांप रहा था कि मुजरिम ही हो।

पुलिस-अफसर ने सिपाहियों को हुक्म दिया कि इसको बांधकर गाड़ी में ले लो।

सिपाहियों ने हाथ-पैर बांधकर उसे गाड़ी में पटक दिया। हरजीत के आंसू आ गये और उसने प्रार्थना की शरण ली। उसके पास न माल रहा न रकम। सब छीनकर उसे नजदीक कस्बे की हवालात में बंद होने भेज दिया गया। पाटनपुर में उसकी बाबत पूछताछ हुई कि वह कैसे चाल-चलन का आदमी है। वहां के व्यापारियों ने और दूसरे लोगों ने बताया कि पहले तो वह पीया करता था और वक्त मौज में गंवाता था।

लेकिन वह आदमी भला है और इधर आकर राह-रास्त पर चलता है। खैर, मुकदमा चला और अजबपुर के एक व्यापारी की हत्या करने और उसके आठ हजार रुपये चुराने का आरोप उसके सिर लगा।

हरजीत की स्त्री सुनकर शोक में बेसुध-सी हो गई। उसे समझ न पड़ा कि कैसे वह अपने कानों पर विश्वास करे। बच्चे उसके सब छोटे थे। एक तो दूधपीती बच्ची थी। सबको साथ ले वह शहर में गई जहां उसका पति जेल में था। पहले तो उसे मुलाकात की इजाजत न मिली। बहुत उनहार करने और कोशिश करने से आखिर उसे इजाजत मिली और वह पति के पास ले जाई गई। जेल के कपड़ों और बेड़ियों में चोर डाकुओं के साथ बंद जब उसने अपने पति को देखा तो वह सह न सकी और धड़ाम से गिरी। काफी देर बाद उसे होश हुआ। तब उसने बच्चे को गोद में खींच पति के पास बैठकर घर-बार की बातचीत शुरू की। उसने पूछा कि यह क्या हुआ ?

हरजीत ने जो हुआ था सब बतला दिया।

पूछने लगी—"अब क्या करना चाहिए ?"

'राजा के पास अर्जी भेजनी चाहिए कि एक निरपराध आदमी की मौत से रक्षा की जाय।"

स्त्री ने कहा, "अर्जी तो मैंने भेजी थी। लेकिन वह मंजूर नहीं हुई।"

हरजीत इसका जवाब नहीं दे सका। आंखें नीची डालकर देखता रहा।

स्त्री ने कहा, "सुनते हो, सपना वह मेरा बेमतलब नहीं था कि मैंने एकदम तुम्हारे बाल सफेद देखे थे। याद है? उस रोज तुम्हें चलना नहीं चाहिए था। लेकिन—"

आगे वह खुद कुछ नहीं कह सकी। फिर पति के बालों में उंगली फिराते हुए बोली, "मेरे स्वामी, अपनी स्त्री से देखो झूठ न कहना। सच कहना—तुमने हत्या नहीं की ?"

"ओ, सो तुम भी मुझे संदेह करती हो!" कहकर हाथों में मुंह को छिपा हरजीत फूटकर रोने लगा।

उस वक्त सिपाही ने आकर कहा कि मुलाकात का वक्त पूरा हो गया। अब चलो।

स्त्री-बच्चे चल दिये और हरजीत ने आखिरी बार अपने परिवार को हसरत से देखकर विदा किया।

उनके चले जाने पर हरजीत को ध्यान हुआ कि सब तरफ क्या-क्या कहा जा रहा है। और तो और, स्त्री तक ने उसपर शुबह किया। यह याद कर उसने मन में धार लिया कि ईश्वर ही बस सचाई जानता है। उसीसे अब तो प्रार्थना करनी चाहिए। उसीसे दया की आशा रखनी चाहिए। और कुछ नहीं। यह सोच हरजीत ने फिर कोई दरख्वास्त नहीं की। आशा-अभिलाषा उसने छोड़ दी और ईश्वर की प्रार्थना में लीन रहने लगा।

उसे कोड़ों की और डामुल की सजा मिली। सो पहले उसे भीगे बेंत से कोड़े लगे। जब उसके जख्म भर आये तो और कैदियों के साथ उसे डामुल भेज दिया गया।

छब्बीस बरस वह वहां काले पानी में कैदी रहा। इस बीच बाल उसके रुई से सफेद हो गये। मैले सनके-से रंग की दाढ़ी बढ़ आई। हँसी-खुशी उसकी उड़ गई। कमर झुक आई। अब धीमे चलता था, थोड़ा बोलता था और हँसता कभी न था। अक्सर प्रार्थना में रहता था। और कहीं उसे आस न थी।

जेल में उसने जूते गांठना सीख लिया था। उससे कुछ पैसों की बचत भी हो गई थी। उन पैसों से उसने 'संतों की जीवनी' नाम की किताब मंगा ली थी। जेल में पढ़ने लायक चांदना रहता कि वह उस किताब को पढ़ने लगता और पढ़ता रहता। इतवार के दिन वह भजनपद गाकर सुनाता। उसकी आवाज अब भी खासी थी और बड़ी भाव-भक्ति के साथ वह पद कहता था।

जेल-अफसर हरजीत को चाहते थे। वह सीधा, नेक और विनयी था। और कैदी भी उसकी इज्जत करते थे। वे उसे 'दादा' या 'भगतजी' कहा करते थे। जब उन्हें जेलवालों से किसी बात के लिए दरख्वास्त करनी होती, या कुछ कहना-सुनना होता तो हरजीत को ही अपना मुखिया बनाते थे। और जब आपस में झगड़ा होता, तब उसीके पास आकर निबटारा और फैसला मांगते थे।

घर से हरजीत को कोई खबर नहीं मिली। उसे पता नहीं था कि उसकी बीबी-बच्चे जीते भी हैं कि नहीं।

एक दिन उनकी जेल में कैदियों की एक नई टुकड़ी आई सो शाम को पुराने कैदी नए वालों के आस-पास जमा हो बैठे। पूछने लगे कि कहाँ-कहाँ से आए हो! और कितनी-कितनी सजा लाए हो? और किस-किस जुर्म की सजाएं हैं?·· इत्यादि। इन्हीं सबके बीच हरजीत भी था। वह आने-वालों के पास बैठा था और निगाह नीची डाले, जो कहा जाता, सुन रहा था।

नये कैदियों में से एक आदमी अपना किस्सा बयान कर रहा था। वह लम्बा, तगड़ा कोई साठ बरस का आदमी था। दाढ़ी उसकी बारीक छटी थी। मजे में आप-बीती कह रहा था—

"दोस्तो, मैं बताता हूं। बात यह कि मैंने गाड़ी में से खोलकर एक घोड़ा ले लिया। सो उसके लिए मैं पकड़ा गया और चोरी का इल्जाम लगा। मैंने कहा कि वाह, मैंने घर आने के लिए घोड़ा खोला था ताकि जल्दी पहुंच जाऊं। घर आकर मैंने उसे पास नहीं रक्खा, खुला छोड़ दिया। तिसपर वह गाड़ीवाला आदमी मेरा दोस्त था। इसलिए मैंने अदालत से कहा, 'इसमें कोई बुरा नहीं है।'

"उन्होंने कहा, 'चुप रहो। तुमने चोरी की है।'

"लेकिन कहां और कैसे चोरी की है, यह वह साबित न कर सके। एक बार हां, मैंने सचमुच जुर्म किया था। उस जुर्म का किसी को पता ही न चला और मैं नहीं पकड़ा गया। और अब यहां आया तो एक न कुछ बात के लिए··· लेकिन दोस्तो, मैं झूठ बकता हूं।, मैं यहां पहले भी आ चुका हूं। लेकिन ज्यादा दिन नहीं ठहरा।"

एक ने पूछा—"हो कहां के?"

"पाटनपुर मेरा गांव है। वतन मेरा वही है। नाम बलवंत। वैसे मुझे 'बल्ली-बल्ली' कहते हैं।"

हरजीत ने पाटनपुर का नाम सुनकर सिर उठाया। पूछा, "तुम पाटनपुर के राय घराने के लोगों को जानते हो? उनका क्या हाल है? क्या उनमें कोई अभी जीता है?"

"क्या पूछा, जानता हूं ? खूब, जानूंगा क्यों नहीं । वे मालदार लोग हैं । हां, उनका बाप यहीं-कही डामुल में हम चोर-डाकुओं की तरह कैद है । लेकिन दादा, तुम यहां कैसे आये ?"

हरजीत को अपने दुर्भाग्य की कथा कहना नहीं रुचा । उसने लंबी सांस ली । बोला, "छब्बीस साल से यहीं अपने पाप की सजा काट रहा हूं"

बलवंत ने कहा, "पाप क्या ?"

हरजीत ने कहा, "अंह, छोड़ो भी । कुछ तो किया ही होगा ।"

हरजीत और कुछ न कहता । लेकिन साथियों ने बल्ली को बताया कि हरजीतराय क्योंकर यहां जेल में पहुंचे । किसी हत्यारे ने एक सौदागर की हत्या की और चाकू इनके सामान में छिपा दिया । इस तरह बेकसूर इन्हें सजा मिली ।

यह सुनकर बलवंत हरजीतराय की तरफ देख उठा । फिर घुटनों पर हाथ मारकर बोला कि यह खूब रही ! वाह यह एक ही रही ! लेकिन दादा, तुम बुढ़ा कितने गए हो ?"

और लोग पूछने लगे कि तुमको इनके बारे में अचंभा क्यों हो रहा है, जी ? क्या तुमने पहले इनको कहीं देखा था ? कहां देखा ?

लेकिन बल्ली ने जवाब दिया । उसने सिर्फ यही कहा कि दोस्ती है, संजोग की बात कि हम लोग यहां आकर मिले ।

इन शब्दों से हरजीत को भी आश्चर्य हुआ । मन में उसके गुमान हुआ कि यह आदमी जानता है कि किसने उस व्यापारी को मारा था । पूछा, "बलवंत, शायद तुमने उस मामले की बाबत सुना होगा । हां, हो सकता है कि तुमने मुझे पहले देखा भी हो ।"

"सुनता कैसे नहीं ? दुनिया बातों से भरी है । कान किसी के बंद थोड़े रह सकते हैं । लेकिन एक मुद्दत हुई । अब क्या याद कि मैंने क्या सुना था ।"

हरजीत ने पूछा कि शायद तुमने सुना हो कि किसने व्यापारी का खून किया ?

बलवंत इस पर हँसने लगा । बोला, "क्यों, जिसके सामान में छुरा निकला, वही तो हत्यारा । अगर किसी और ने वहां रख दिया तो वह जब

तक पकड़ा न जाय, मुजरिम कैसा ? तिसपर दूसरा कोई तुम्हारे थैले में चाकू रख कैसे सकता था जबकि थैला तुम्हारे सिर के नीचे था ! ऐसे तुम जग न जाते ?"

हरजीत को यह सुनकर पक्का हो गया कि इसी आदमी ने वह हत्या की होगी। इसपर उसका जी खराब हो आया और उठकर वहां से चला।

सारी रात वह जागता रहा। उसको बहुत कष्ट था। कल पल को न थी। तरह-तरह की तस्वीरें उसके मन में आती थीं, स्त्री का चेहरा आया, जब वह मेले में जाने के लिए उससे विदा ले रहा था। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह सामने जीती-जागती मौजूद हो। ऐसी प्रत्यक्ष कि उसे छू सकता हो। मानो उसकी हँसी की आवाज और बातचीत का एक-एक शब्द सुन पाता हो। फिर उसके मन में बच्चों की तस्वीरें आईं। फूल से बच्चे ! एक बड़े से चोगे में दुबका था, दूसरा मां का दूध पी रहा था। अनंतर वह खुद अपने को देखने लगा, जैसा कि वह हुआ करता था। जवान, खुश और तंदुरुस्त और खूबसूरत। उसको याद आया कि सराय में कैसा मगन मैं बंसी बजा रहा था। चिंता की रेख छू नहीं गई थी कि तभी पकड़ लिया गया ! फिर वह जगह और दृश्य याद आया। जहां कोड़े लगे थे। अफसर लोग और कुछ कैदी इर्द-गिर्द खड़े थे। इसके बाद इन जेल के छब्बीस बरसों का समूचा जीवन उसकी आंखों के आगे फिर गया। वहां की मुसीबतें, कुसंग, बेड़ियां और समय से पहले उस पर आ उतरा बुढ़ापा। इन सबको याद कर उसका जी भारी हो आया। उसे बड़ी व्यथा हुई, ऐसी कि मौत मांगने की इच्छा हुई।

"और यह सब उस दुष्ट के कर्म हैं।" हरजीत सोचने लगा। उस बलवंत के खिलाफ उसे बड़ा गुस्सा आया। मन में होने लगा कि चाहे मरना पड़े, पर उस बदमाश को फल देना चाहिए। वह रात भर प्रार्थना करता रहा, पर उसे शांति नहीं मिली। दिन में वह बलवंत के पास से बचता रहा, न ऊपर नजर उठाई।

इस तरह दो हफ्ते निकल गये। रात को हरजीत सो न सकता था, उसे इतना त्रास था। समझ में नहीं आता कि क्या करूं, क्या न करूं ?

एक रात जेल में घूम रहा था कि उसे पास कहीं से मिट्टी गिरती हुई

मालूम हुई। वह रुका कि क्या है। इतने में देखता है कि एक त फ दीवार के नीचे बलवंत का मुंह उंभक आया है। हरजीत को देखकर बलवंत का चेहरा डर से राख हो गया। हरजीत ने चाहा कि इस बात को दरगुजर कर दे। पर बलवंत ने बाहर निकल कर उसको हाथ से पकड़ लिया। कहा कि मैंने कोठरी में से रास्ता खोद डाला है। रोज मिट्टी को जूतों में रखकर काम पर बाहर जाने के वक्त इधर-उधर फेंक आया करता था। लेकिन अब तुम चुप रहो। हल्ला मत करना। चलो, तुम भी मेरे साथ निकल चलो। और अगर तुमने कुछ आवाज की तो मुझे पकड़कर, चाहे मार-मार कर, वे फिर मेरी जान ही निकाल लें, लेकिन तुम्हें तो पहले ही खत्म कर दूंगा।"

हरजीत अपने शत्रु को देखकर गुस्से से कांपने लगा। उसने अपना हाथ झटककर अलग कर दिया। कहा—"मैं भागना नहीं चाहता और तुम अब क्या और मुझे खत्म करोगे ? पहले ही सब कर चुके हो। और तुम्हारी खबर देने की जो बात हो – तो मैं नहीं जानता। जो परमात्मा करेगा होगा।"

अगले दिन जब कैदी बाहर काम पर गये तो वार्डरों ने देखा कि एक जगह मिट्टी का ढेर-सा हो रहा है किसी कैदी ने ही ला-लाकर यहां डाली होगी, और कौन डालता ? जेल तलाश किया गया तो उस चोर रास्ते का भी पता लग गया। जेल-सुपरिंटेंडेंट आये और सबसे पूछा कि किसकी यह करतूत है। सबने इन्कार कर दिया कि हमें पता नहीं। जो जानते थे उन्होंने भी भेद नहीं दिया, क्योंकि बता देते तो बलवंत की जान की खैर न थी। आखिर सुपरिंटेंडेंट ने हरजीत से पूछा। सुपरिंटेंडेंट भी उसका मान करते थे और मानते थे कि हरजीत सत्यवादी है।

"हरजीत, तुम सच्चे और नेक आदमी हो। ईश्वर से डरते हो। सच बताओ कि यह काम किसका है ?"

बलवंत ऐसा बना रहा जैसे मतलब न हो। सुपरिंटेंडेंट पर उसने आंखें लगा रक्खी और भूले भी हरजीत की तरफ नहीं देखा। साहब के सवाल पर हरजीत के हाथ कांपने लगे और ओंठ भी कांपे। बहुत देर तक एक भी शब्द उसके मुंह से न निकला। एक बेर सोचा कि जिसने मेरी जिंदगी बरबाद कर दी, उसे ही मैं किसलिए बचाऊं ? मैंने कितना दुःख उठाया है ! अब

मिलने दूं उसे बदला। लेकिन फिर खयाल हुआ कि मैं कह दूंगा कि तो जेलवाले इसकी जान के गाहक हो जावेंगे। तिसपर क्या पता कि मेरा शक ही हो और बात सच न हो। जो हुआ सो हुआ, अब उसकी तकलीफ से क्या हाथ आनेवाला है ?

सुपरिटेंडेंट ने दुहराकर पूछा, "सुनते हो न, हरजीत ? तुम पाप से डरते हो। सच बताओ दीवार में छेद किसने किया है ?"

हरजीत ने बलवंत की तरफ देखा। फिर कहा, "मैं नहीं बता सकता हुजूर ! ईश्वर की आज्ञा नहीं है कि मैं बताऊं। इसके लिए मेरा जो चाहे कीजिए, मैं आपके हाथ में हूं।"

साहब ने और जेल दरोगा ने बहुतेरी कोशिश की। लेकिन हरजीत ने आगे कुछ नहीं कहा। अब क्या होता ? सो मामले को वहीं छोड़ना पड़ा।

उस रात जब हरजीत अपने बिस्तर पर पड़ा था और आंखों में नींद उतर चली थी कि कोई दबे पांव आया और चुपचाप पास बैठ गया। अंधेरे में भेद कर हरजीत ने पहचाना तो वह था बलवंत।

हरजीत बोला, "अरे, और तुम मेरा क्या चाहते हो ? तुम यहां क्यों आये हो ? क्या जी नहीं भरा ?"

बलवंत चुप सुनता रहा। हरजीत उठकर बैठ गया और बोला, "क्या है तुम्हारी मंशा ? बुलाऊं पहरेदार ?"

बलवंत हरजीत के चरणों में झुका जाने लगा। धीमे-से बोला, "हरजीत भाई, मुझे माफ कर दो।"

"माफ किसलिए ?"

"मैं गुनहगार हूं। मैंने ही उस व्यापारी को मारा था और छुरा तुम्हारे सामान में रख दिया था। मैं तुम्हें भी मारना चाहता था ; लेकिन बाहर शोर सुन, छुरा तुम्हारे सामान में दुबका, खिड़की की राह मैं भाग गया था।"

हरजीत चुप था। उसे कुछ भी बोल न सूझा। बलवंत धरती पर घुटनों के बल आ बैठा। बोला, "हरजीत भाई, मुझे माफ कर दो। मैं

सब इकबाल कर लूंगा। कहूंगा, मैं हत्यारा हूं। तब तुम छूट जाओगे और घर जा सकोगे।

हरजीत ने कहा, "बलवंत, अब मैं क्या कहूं। कहना तो आसान है। पर यह छब्बीस बरस जाने मैं क्या-क्या नहीं उठाता रहा हूं। क्यों ? सब तुम्हारी वजह से। लेकिन अब मैं कहां जाऊं। मेरी स्त्री स्वर्ग गई, बच्चे मुझे भूल चुके। कौन मुझे पहचानेगा ? बलवंत, अब मेरे पास जाने को कोई जगह नहीं है।"

बलवंत धरती पर से उठा नहीं, वहीं फर्श पर अपना सिर पटक कर पीटने लगा।

"हरजीत, मुझे माफ करो। मुझे बेंत से पीटा तब इतनी तकलीफ नहीं हुई जितनी अब तुम्हें देखकर होती है। मुझसे सहा नहीं जाता, मैं तुम्हें सताता गया, तुम मुझे बचाते गये...हरजीत, हा-हा खाता हूं, परमात्मा के लिए मुझे क्षमा करो। मैं बड़ा अधम हूं, पापी हूं, दुराचारी हूं।"

बलवंत को सुबकी भर-भरकर रोते हुए सुना तो हरजीत भी रो आया। बोला—"ईश्वर तुम्हें क्षमा करेगा, बलवंत। कौन जानता है कि मैं तुमसे सौ गुना अधम नहीं हूं।"

यह कहते-कहते उसके अंतर में जैसे एक प्रकाश का उदय हो आया। सब चाह जैसे उसकी मिट गई। घर जाने की अभिलाषा और कलख भी उसे अब नहीं रह गई। जेल से रिहाई की जरूरत ही उसमें न रही। बस ईश्वर की आखिरी घड़ी अब आये, यही आस उसे शेष रह गई।

हरजीत ने कितना ही कहा, लेकिन बलवंत अपने जुर्म का इकबाल करके ही माना। पर हरजीत के जेल से छुटकारे का हुक्म आया कि वह तो देह से छुटकारा पा चुका था !

: ५ :

धर्मपुत्र

(१)

एक दीन किसान के घर एक बालक जनमा। उसने अपने भाग्य सराहे और बड़ा कृतार्थ हुआ। खुश-खुश एक पड़ोसी के घर गया कि आप इस

बालक के धर्म-पिता बन जावें । पर गरीब के बेटे को कोन अपनावे ! सो पड़ोसी ने इनकार कर दिया। तब दूसरे पड़ोसी से कहा, उसने भी इन्कार कर दिया । इस पर बेचारा किसान घर-घर घूमा ; लेकिन कोई उसके बालक का धर्म-पिता बनाने को राजी न हुआ। यह देख वह दूसरे गांव चला । चलते-चलते राह में एक आदमी मिला । पूछने लगा—"जयरामजी की, भाई चौधरी, कहां जा रहे हो ?"

किसान बोला—"भगवान की दया हुई कि जीवन को सारथ करने और बुढ़ापे में सहारा होने घर में हमारे उजियाला जनमा है । मरने पर वही हमारी मिट्टी लगायेगा और हमारी आत्मा को दया-धर्म से सींचेगा। लेकिन मैं गरीब हूं और गांव में कोई उसका धर्म-पिता बनने को राजी नहीं है । सो मैं उसके धर्म-पिता की खोज में जा रहा हूं ।"

मुसाफिर ने कहा—"चाहो तो मैं धर्म-पिता बन सकता हूं ।"

किसान सुनकर प्रसन्न हुआ और धन्यवाद देने लगा । फिर सोचकर बोला—"यह तो आपने मुझे धन्य किया; लेकिन अब सोचता हूं कि धर्म-माता के लिए मैं किसे कहूं ।"

मुसाफिर ने कहा—"धर्म-मां के लिए सुनो, सीधे उस नगर में जाओ । वहां चौक में एक पत्थर की हवेली होगी । सामने नीली खिड़कियां दीखेंगी । वहां पहुंचोगे तो द्वार पर ही तुम्हें मकान के मालिक मिलेंगे। उनसे कहना कि अपनी बेटी को बालक की धर्म-माता बन जाने दें।"

किसान सुनकर अचकचा आया । बोला—"एक धनी आदमी से ऐसी बात कैसे कहूंगा ? वह मुझे तिरस्कार से देखेंगे और अपनी लड़की को पास न आने देंगे ।"

"सो चिंता न करो । तुम जाओ, कहो तो । और कल सबेरे तैयारी रखना । मैं ठीक संस्कार के वक्त पहुंच जाऊंगा ।"

किसान घर लौट आया । फिर उन धनी व्यापारी की तलाश में शहर की तरफ गया । चौक में पहुंचकर उसने बहली खोली, और मकान की ड्योढ़ी पर पहुंचा था क सेठ वहीं मिले । पूछने लगे—"कहा चौधरी, क्या चाहते हो ?"

किसान ने कहा कि भगवान ने दया की है और घर में दीपक जनमा है। वही हमारी आंखों का तारा है, बुढ़ापे का सहारा है और मौत के बाद हमारे प्रेत को पानी देगा। बड़ी मेहरबानी होगी जो आप अपनी बेटी को उसकी धर्म-माता बनने दें।

व्यापारी ने पूछा—"संस्कार कब है ?"

"कल सबेरे।"

"अच्छी बात है। तसल्ली रखो। कल सवेरे संस्कार के समय वह आ जायगी।"

अगले दिन माता आ गई, धर्म-पिता भी आ गये और शिशु का संस्कार होते ही धर्म-पिता चले गए। किसी को पता भी नहीं चला कि वह कौन हैं, कहां रहते हैं। न वह फिर दीखे।

(२)

बालक चांद की तरह बढ़ने लगा। मां-बाप के उछाह का पूछना क्या ! बढ़कर माता-पिता के लिए छोटी उमर से ही वह सहाई होने लगा। तंदुरुस्त था और काम को उद्यत, चतुर और आज्ञाकारी। दस बरस का हुआ कि लिखना-पढ़ना सीखने के लिए उसे मदरसे में भेजा गया। जो और पांच बरस में सीखते वह एक ही बरस में सीख गया और कुछ ही अरसे में वहां की सब विद्या उसने समाप्त कर दी।

पूजा-दशहरे के दिन आए और छुट्टियों में वह अपनी धर्म-माता को प्रणाम करने गया। जाकर चरण छुए और सामने भेंट रक्खी।

फिर लौटकर घर आया तो मां-बाप से उसने पूछा—"जी, धर्म-पिता कहां रहते हैं ? इस विजयदशमी के दिन मैं उनको प्रणाम करना चाहता हूं और दक्षिणा भेंट दूँगा।"

पिता ने कहा—"बेटे, तुम्हारे धर्म-पिता का हमें कुछ पता नहीं है। हमें अक्सर उनका खयाल आता है। तुम्हारा नाम-संस्कार हुआ उसी रोज से उनकी कोई खबर नहीं मिली। यह तक मालूम नहीं कि कहां रहते हैं और अब हैं भी कि नहीं।"

पुत्र बोला कि माताजी और पिताजी, आप दोनों मुझे इजाजत दीजिए।

मैं अपने धर्म-पिता की खोज में जाऊंगा। उन्हें खोजकर रहूंगा और उनके चरणों की रज लूंगा।

माता-पिता ने बालक को अनुमति दे दी और वह अपने धर्म-पिता की खोज में चल पड़ा।

(३)

घर से निकल वह सीधी सड़क चल दिया। घंटों चलता रहा। चलते-चलते एक मुसाफिर मिला। उसने पूछा कि लड़के, तुम कहां जा रहे हो?

लड़के ने जवाब दिया—"मैं धर्म-माता के दर्शन करने और उन्हें प्रणाम करने गया था। फिर घर जाकर मैंने धर्म-पिताके बारेमें पूछा, जिससे उनके भी दर्शन पाऊं और चरण छू सकूं। लेकिन मेरे माता-पिता भी उनका पता नहीं जानते हैं। कहने लगे कि मेरा संस्कार हुआ था, उसके बाद से ही उनकी कोई खबर नहीं मिली, जाने जीते भी हैं कि नहीं। लेकिन मैं जरूर अपने धर्म-पिता के दर्शन चाहता हूं।-सो मैं उसी खोज में निकला हूं।"

मुसाफिर ने कहा—"तुम्हारा धर्म-पिता तो मैं ही हूं।"

बालक सुनकर कृतार्थ हुआ। उसने उनके चरणों में मस्तक नवाया। फिर पूछने लगा कि धर्म-पिता, आप अब किधर जा रहे हैं? हमारी तरफ जा रहे हों तो मैं भी आपके साथ चल रहा हूं।

पथिक ने कहा कि अभी तो मेरे पास तुम्हारे घर चलने को समय नहीं है। जगह-जगह बहुत काम है। लेकिन कल सबेरे मैं अपनी जगह पहुंच जाऊंगा। तब वहां आकर तुम मुझे मिलना।

"लेकिन धर्म-पिता, मुझे जगह का पता कैसे चलेगा?"

"सुनो, अपने घरसे सबेरे सामने सूरज की सीध में चलते चले जाना। चलते-चलते जंगल आ जायगा। जंगल को पार करना। फिर एक घाटी में पहुंचोगे। घाटी में पहुंचकर वहां बैठना और थोड़ा विश्राम करना। पर चौकस होकर देखते रहना कि आसपास क्या होता है। फिर घाटी के परले किनारे तुम्हें एक बगीचा दीखेगा। वहां मकान होगा, जिसकी छत सुनहरी झलकती होगी। वही मेरा घर है। तुम सीधे दरवाजे पर आना—वहां तुम्हें मैं खुद खड़ा मिलूंगा।"

(४)

बालक ने धर्म-पिताके कहे अनुसार किया। वह उठकर सूर्य-भगवानकी तरफ चलता चला गया। चलते-चलते बन आया। उसे पार करने पर घाटी आई। घाटी में क्या देखता है कि ऊंचा एक बरगद का पेड़ खड़ा है। उसकी एक शाख पर रस्सी बंधी है। रस्सी से एक भारी लकड़ी का लठ्ठ लटका हुआ है। लट्ठ के नीचे लकड़ी की बड़ी-सी कठौती रक्खी है जो शहद से भरी हुई है। बालक यह देखकर अचरज में हुआ कि क्यों इस तरह शहद भरा हुआ रक्खा है और उसके ठीक ऊपर यह लकड़ी का लट्ठ क्यों लटक रहा है। लेकिन अचरज का समय भी नहीं मिला कि उसे किसी के उधर जाने की आहट सुनाई दी। देखता क्या है कि रीछ चले आ रहे हैं एक रीछनी है, पीछे-पीछे तीन बच्चे हैं। दो तो नन्हे-नन्हे हैं, एक तगड़ा है। रीछनी सूंघती-सूंघती शहद की कठौती तक सीधी पहुंच गई। बच्चे भी पीछे लगे रहे। वहां पहुंचकर उसने शहद में मुंह डाल दिया और चाटने लगी और बच्चों ने भी चारों ओर से उसे घेर लिया। वे भी नांद पर चढ़कर लदर-पदर शहद चाटने लगे। थोड़ा ही चाटने पाये होंगे कि ऊपर का लट्ठ आया और उन बच्चों के बदन में आकर लगा। रीछनी ने मुंह से उस लट्ठ को परे हटा दिया। हटकर वह गया कि लौटकर अब फिर आ गया था। रीछनी ने यह देखकर दूसरी बार अपने पंजों से उस लट्ठे को धकिया दिया। वह दूर चला गया। लेकिन फिर उतने ही जोर से लौटा। लौटकर इस बार जोर से वह एक बच्चे की पीठ और दूसरे के सिरसे टकराया। बच्चे दर्द के मारे चीखते-चिल्लाते भागे। उनकी मां ने यह देखकर गुस्से के साथ उस लट्ठ की लकड़ी को अपने अगले हाथों में भींचकर पकड़ा और उठाकर जोर से फेंक दिया। लट्ठ दूर चला गया और मौका देखकर वह रीछ का जवान पट्ठा आया और नांद में मुंह डाल चटचट शहद खाने लगा। देखा-देखी छोटे बच्चे भी चले आये। लेकिन वे पास पहुंचे न होंगे कि लट्ठ लौटकर आया और इस जोर से उस जवान बेटे के सिर में लगा कि वह वहीं ढेर हो गया। रीछनी को इसपर और गुस्सा चढ़ा। झुंझलाकर उसने लट्ठको जोरसे पकड़ा और पूरी शक्तिसे उसे परे फेंक दिया। जिस डालसे बंधा था उससे भी ऊंचा वह जा पहुंचा—

इतना ऊंचा कि रस्सी ढिला गई। इस बीच रीछनी फिर नांद पर आ गई और बच्चे भी उसी किनारे आ लगे। लट्ठा ऊंचा चलता गया, ऊंचा चलता गया, आखिर वह रुका और फिर गिरना शुरू हुआ। जैसे-जैसे नीचे गिरता, जोर उसका बढ़ता जाता था। आखिर पूरे बल से रीछनी के सिर में जाकर लगा। लगना था कि रीछनी लोट-पोट हो गई। उसके पाव आसमान में हिलते रहे और वहीं जान दे दी। बच्चे बन में भाग गये।

(५)

बालक अचरज में भरा यह देखता रहा। फिर उसने आगे की राह पकड़ी। जंगल पार कर घाटी के परले किनारे उसे एक आलीशान बगीचा मिला। वहां था एक महल-का-महल। छत उसकी सुनहरी झकझकाती थी। महल के दरवाजे पर बालक को धर्म-पिता मिले। मुस्कराकर उन्होंने बालक का स्वागत किया और दरवाजे में से उसे अंदर ले गये। लड़के ने जो सपने में भी नहीं देखा वह सचमुच में यहां था। क्या बहार, आनंद! फिर धर्म-पिता उसे महल के अंदर ले गये। वहां की विभूति का तो कहना ही क्या! वह अपूर्व थी। धर्म-पिता ने चलकर बालक को महल का एक-एक कमरा दिखाया। उसकी तो आंखें न ठहरती थीं। एक-से-एक बढ़-चढ़कर ऐसी शोभा और ज्योति और उल्लास था कि—

आखिर एक कमरे पर पहुंचे जहां का दरवाजा मुहरबंद था। धर्म-पिता ने कहा कि यह दरवाजा देखते हो न। इसमें ताला नहीं है, बस मुहरबंद है। वह खुल सकता है, लेकिन खबरदार, उसे खोलना नहीं। तुम यहां रहो, जी चाहे जहां फिरो। यहां का सब तुम्हारा है। सब भोग और सब आराम। लेकिन मेरी एक ताकीद है। यह दरवाजा मत खोलना। जो कहीं तुमने उसे खोला, तो याद कर लो जंगल में तुमने क्या देखा था।

यह कहकर धर्म-पिता अंतर्धान हो गये। लड़का उस महल में रहता रहा। वहां वह सुख और आनंद थे कि तीस साल ऐसे बीत गये जैसे तीन घंटे। जब एक-एक कर तीस साल गुजर गये तो एक दिन धर्म-पुत्र मुहर-बंद दरवाजे के पास गुजर रहा था। वह ठिठका और अचरज में आकर सोचने लगा कि धर्म-पिता ने इस कमरे में जाने की मनाही क्यों की थी।

सोचने लगा कि जरा देखने में क्या हर्ज है। यह सोचकर उसका दर-

वाजे को हाथ से तनिक-सा धकियाना था कि मुहर गिर गई और दरवाजा खुल गया। अन्दर देखता क्या है कि और सभी से बढ़कर और बड़ा यह हाल है। बीच में उसके सिंहासन रक्खा है। कुछ देर वह उस खाली हाल के वैभव को देखता हुआ इधर-उधर घूमता रहा। अनंतर सीढ़ी चढ़ वह सिंहासन पर जा पहुंचा और वहां बैठ गया। बैठकर देखता है कि सिंहासन से टिककर शासन-दंड रक्खा हुआ है। उसने उसे हाथ में ले लिया। उसका हाथ में लेना था कि हाल की सब दीवारें हवा हो गईं। धर्मपुत्र ने देखा तो सारी दुनिया उसके सामने बिछी थी और लोग जो कुछ वहां कर-धर रहे थे, सब उसे दीखता था। वह सामने देखने लगा कि समंदर फैला है और जहाज उस पर आ-जा रहे हैं। दायें हाथ अजब-अजब तरह की जंगली जातियां बसी हुई हैं। बायें, हिंदुस्तान के अलावा और लोग बसे दीखते हैं। चौथी तरफ मुंह जो उसने मोड़ा तो देखा कि उसकी आंख के आगे समूचा हिंदुस्तान फैला है और उसीके जैसे लोग घूम-फिर रहे हैं।

उसने सोचा कि देखें कि हमारे घर क्या हो रहा है और खेती-बाड़ी का क्या हाल है। उसने अपने बाप के खेतों को देखा कि बालें खड़ी हैं और पकने के नजदीक हैं। वह अंदाज लगाने लगा कि फसल कितने की बैठेगी। इतने में उसे गाड़ी में कोई आता दिखाई दिया। रातका वक्त था। धर्मपुत्र ने सोचा कि पिता ही होंगे, रात को गल्ला ढो ले जाना चाहते हैं। लेकिन देखता क्या है कि वह आदमी तो है नत्थूसिंह जोकि एक नंबरी चोर है। रात को आया है कि चुराकर खेत का सारा नाज भर ले जाय। यह देख धर्मपुत्र को गुस्सा आ गया। उसने पुकारकर कहा—"बापा, ओ बापा, उठो हमारे खेत से नाज चुराया जा रहा है।"

बाप रात को अपनी मढ़ैया में चौकन्ना होकर सोया करता था। वह एकदम जाग बैठा। सोचा कि मैंने सपने में सही, लेकिन अपने खेत का नाज चोरी होते देखा है। चलूं, देखूं क्या बात है। भागकर वह खेत में आया तो वहां देखता है कि नत्थूसिंह मौजूद है। हल्ला मचाकर पास-पड़ोस वालों को भी उसने इकट्ठा कर लिया और नत्थूसिंह की खूब मरम्मत बनाई। उसे पीटा-कूटा और बांधकर थाने ले गये।

उसके बाद धर्मपुत्र ने शहर की ओर निगाह उठाई, जहां धर्ममाता रहती थीं। अब उनका विवाह हो गया था। इस घड़ी वह चैन की नींद सो रही थीं। इतने में उनका पति उठा और दबे पांव घर से निकल चला। धर्मपुत्र ने वहीं से पुकारकर कहा—"मां, उठो, उठो, देखो तुम्हारा पति अपने किस कुकर्म के लिए घर से निकल चला है।"

इसपर धर्म-मां झट से उठीं और कपड़े पहनकर उस कुलटा के यहां पहुंची जहां पति गया था। जाकर उस नारी को खूब बुरा-भला सुनाया, मारा-पीटा और बाहर खदेड़ दिया।

इसके बाद धर्मपुत्र ने अपने पेट की मां का खयाल किया। वह अपने घर में छप्पर के तले सो रही थीं। देखता क्या है कि एक चोर घर में घुस गया है और बक्स का ताला तोड़ रहा है जिसमें मां की जमा-जोखों रक्खी है। इतने में मां जग उठीं। यह देख डाकू ने गंडासा ऊपर उठा मां पर वार करना चाहा।

यह देख धर्मपुत्र से रहा न गया और उसने उस दुष्ट पर हाथ का शासन-दंड खींचकर मारा। वह जाकर कनपटी पर लगा और चोर वहीं का वहीं ढेर हो रहा।

(६)

धर्मपुत्र का चोर को मारना था कि दीवारें फिर चारों ओर घिर आईं और हॉल जैसे-का-तैसा हो गया।

उसी समय दरवाजा खुला और धर्मपिता अंदर आते दिखाई दिये। वहां पहुंच, हाथ पकड़कर उन्होंने धर्मपुत्र को सिंहासन से नीचे उतारा और अपने साथ ले चले।

बोले—"तुमने मेरा कहना नहीं माना और मना करने पर दरवाजा खोला, यह पहली गलती। सिंहासन पर जा बैठे और शासन-दंड हाथ में ले लिया यह दूसरी गलती। उसके बाद यह तुमने तीसरी गलती की जिससे दुनिया में अंधेरा फैला जा रहा है। ऐसे तो तुम घड़ीभर सिंहासन पर और रहते तो आधी दुनिया बरबाद हो चुकी थी।"

यह कहकर धर्म-पिता अपने साथ धर्मपुत्र को फिर सिंहासन पर ले

गये और शासन-दंड अपने हाथ में रक्खा। दीवारें फिर उसी तरह सामने से गायब हो गईं और दुनिया का सब कुछ दिखाई देने लगा।

धर्म-पिता ने कहा—"अब देखो, देखते हो न कि तुमने अपने पिता के हक में क्या किया। नत्थूसिंह को एक साल की सजा हुई। अब जो वापस आया है तो जेल से बची-खुची और बुराइयां सीख आया है। रहा-सहा भी अब वह पक्का हो गया है। देखते नहीं कि उसने अब तुम्हारे बाप के दो बैल चुरा लिए हैं और खलिहान में आग लगाये दे रहा है। सो अपने लिये ये बीज तुमने बोये!"

और सचमुच धर्मपुत्र ने देखा कि आंख-आगे उसके बाप का खलिहान आग की लपटों में धू-धू करके जल रहा है।

उसके बाद धर्म-पिता ने वह दृश्य दूर कर दिया और दूसरी तरफ देखने को कहा—"देखो, यह तुम्हारी धर्म-माता के पति हैं। एक साल हुआ कि उन्होंने बीबी को छोड़ दिया है। अब औरों के पीछे लगे हैं। उनकी पहली प्रेयसी की हालत देखते हो? वह कितनी पतिता हो गई है। दुःख से पत्नी का हाल भी बेहाल है। गम के मारे उन्हें दौरे पड़ने लगे हैं। सो यह सेवा तुमने अपनी धर्म-माता की की है।"

धर्म-पिता ने यह दृश्य भी फिर हटा दिया। अब उसके आगे अपने गांव का मकान था। वहां देखता है कि उसकी मां रो रही है और अपने अपराधों की क्षमा मांग रही है। पछतावा करती सिर धुनती कह रही है—"हाय, भला होता मुझे चोर उसी रात मार डालता। फिर मुझे ऐसे भोग तो न भोगने होते!"

धर्म-पिता ने कहा—"देखते हो? यह है जो तुमने अपनी मां के लिए करके रक्खा है!"

वह पर्दा भी दूर हुआ। फिर धर्म-पिता ने सामने देखने को कहा। अब जो उसने देखा तो दो वार्डर जेलखाने के आगे एक डाकू को पकड़े खड़े हैं।

धर्म-पिता ने कहा—"पहचानते हो? इस आदमी के सिर पर दस खून हैं। वह खुद कर्म-फल का भोग लेकर अपने आप उतरता। लेकिन उसको मारकर उसके पाप तुमने बढ़ाकर अब अपने सिर ले लिये हैं। अब उन

सब पापों के लिए तुम्हें जवाब देना होगा। यह हैं जो तुमने अपने हक में किया है ! याद करो, रीछनी ने लट्ठ को एक बार हटा कर अपने बच्चों को चोट पहुँचाई। फिर हटाया तो अपने जवान बेटे को खोया। तीसरी बार जोर से हटाया तो अपनी जान से हाथ धो बैठी। वही तुमने किया है। अब मैं तुमको तीस साल और देता हूं कि दुनिया में जाओ और डाकू के और अपने पापों के लिए प्रायश्चित करो। प्रायश्चित पूरा नहीं करोगे तो तुमको उसकी जगह लेनी होगी।"

धर्मपुत्र ने पूछा—"उसके पाप का उतारा मुझे कैसे करना होगा, पिता।"

"दुनिया में जो बदी लाने के तुम भागी हो उसे मिटाना तुम्हारा काम है। उतना कर लोगे, तो उस डाकू के और तुम्हारे दोनों के पापों का उतारा हो जायगा।"

धर्मपुत्र ने पूछा—"मैं दुनिया की बदी को कैसे मिटाऊंगा, पिता ?"

धर्म-पिता ने कहा—"जाओ, सूरज की दिशा में सीधे चलते चले जाना। चलते-चलते एक खेत मिलेगा, जहां कुछ आदमी होंगे। देखना कि क्या कर रहे हैं और जो तुम जानते हो उन्हें बतलाना। फिर आगे बढ़ना। ऐसे ही बढ़ते जाना। राह में जो देखो याद रखना। चौथे दिन तुम एक बन में पहुंचोगे। उस बन के बीचों-बीच एक कुटी मिलेगी। वहां एक साधु रहता है। जाकर जो हुआ हो सब सुनाना। वह बतायगा कि तुम्हें क्या करना होगा। उसका कहा कर चुकोगे तब डाकू के और तुम्हारे अपने पापों का उतारा पूरा हो जायगा।"

यह कहकर धर्म-पिता ने उसको महल के दरवाजे से बाहर कर दिया।

(७)

धर्मपुत्र अपनी राह बढ़ चला। सोचता जाता था कि मैं जगत में से बदी का नाश कैसे करूंगा। बदकारों का नाश हो, ऐसे ही तो बदी का नाश होता है। उन्हें जेल में डाल दिया जाय या उनका अंत कर दिया जाय। तब फिर बिना औरों का पाप अपने ऊपर लिए बदी से लड़ना कैसे होगा ?

धर्मपुत्र ने बहुतेरा विचारा, पर निश्चय पर नहीं आ सका। वह चला-चलता गया। चलते-चलते एक खेत आया। वहां खूब घनी और ऊंची गेहूं

की बालें खड़ी थीं। बस बालें पक ही गई थीं और काटने को तैयार थीं। इतने में क्या देखता है कि एक बछड़ा खेत में घुस गया है। उसे खेत में मुंह मारते देख कुछ लोग लाठी ले उसके पीछे पड़ गए हैं। खेत में से वे उसे कभी उधर खदेड़ते हैं, कभी इधर। बछड़ा बाहर भागने के लिए खेत के जिस किनारे आकर लगता कि उधर ही कुछ लोग सामने मिलते हैं। डर के मारे वह फिर भीतर लौट जाता है। सब जने खेत में से होकर इधर-उधर उसका पीछा कर रहे हैं और खेत खूब रौंदा जा रहा है। इधर यह है, उधर बाहर सड़क पर खड़ी एक औरत रो रही है कि हाय रे, मेरे बछड़े को ये लोग भगा-भगा कर मारे डाल रहे हैं!

धर्मपुत्र ने उन किसानों को कहा—"तुम लोग यह क्या कर रहे हो? सब जने खेत से बाहर आ जाओ। यह औरत अपने बछड़े को आप बुला लेगी।"

आदमियों ने ऐसा किया। वह स्त्री भी खेत के किनारे आकर पुकारने लगी, "आओ भैया, आओ मुनवा, यहां आओ।" बछड़े ने कान खड़े किए। एक पल सुनता रहा। फिर अपने आप भाग आया और मचल कर अपना मुंह स्त्री की गोद में ऐसे मारने लगा और ऐसी किलोल करने लगा कि वह बेचारी गिरते-गिरते बची। सब आदमी इससे खुश हुए, स्त्री खुश थी और बछड़ा भी मगन दिखाई देता था।

धर्मपुत्र फिर वहां से आगे बढ़ा। सोचने लगा कि ऐसे ही बदी-से-बदी फैलती है। जितना आदमी बुराई के पीछे पड़ते हैं, वह उतनी ही बढ़ती है। मालूम होता है बुराई बुराई से दूर नहीं होगी। फिर कैसे दूर होगी, यह भी ठीक पता नहीं था। बछड़े ने तो अपनी मालकिन का कहना मान लिया और चलो सब ठीक हुआ। पर कहना न मानता तो उसे खेत से बाहर करने का क्या उपाय था?

धर्मपुत्र फिर सोच में पड़ गया और किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सका। खैर, वह बढ़ता ही गया।

(८)

चलते-चलते एक गांव मिला। गांव के पार परले किनारे उसने रात भर

टिकने को जगह मांगी। घर की मालकिन अकेली थी और घर की सफाई कर रही थी। उसने उसे ठहरा लिया। । घर के अंदर धर्मपुत्र पीढ़े पर बैठा स्त्री का काम करते देखने लगा। वह बुहारी से फर्श झाड़ चुकी थी, अब चीजबस्त झाड़न से झाड़ने लगी। सबके बाद उस धूल-भरे मैले झाड़न से उसने जोर-जोर से मेज पोंछनी शुरू की। कई बार पोंछी, पर मेज साफ नहीं होती थी। कपड़े के मैल की लकीरें रह ही जाती थीं। यह देख वह दूसरे सिरे से हाथ फेर कर पोंछना शुरू करती। पर पहली लकीरें मिटतीं तो उनकी जगह दूसरी बन जातीं। फिर उसने सबकी सब मेज फिर दुबारा साफ की। लेकिन फिर वही बात। मैल की लकीरें अब भी मौजूद। धर्मपुत्र कुछ देर चुपचाप देखता रहा। फिर बोला—माई, तुम यह क्या कर रही हो ?"

"भैया, देखते हो कि मैं सफाई कर रही हूं त्यौहार सिर पर है' 'पर यह मेज साफ ही नहीं होती। मैं तो थक आई।"

धर्मपुत्र बोला—'मेज झाड़ने से पहले झाड़न को तो साफ कर लो, माई।"

स्त्री ने वैसा ही किया। तब मेज भी साफ चमक आई;

स्त्री ने कहा—"तुमने भली बात बतलाई, भैया तुम्हारा अहसान मानती हूं।"

अगले सबेरे यहां से विदा ले धर्मपुत्र अपनी राह आगे बढ़ लिया। काफी दूर चलने पर एक बन का किनारा आया। वहां देखा कि देहात के कुछ लोग लोहे की मोटी हाल लेकर उसे मोड़ना चाह रहे है। और पास आया तो देखता है—कई लोग मिलकर लोहे का सिरा पकड़ कर जोर लगा रहे हैं। वे घूम तो रहे हैं, पर हाल मुड़ती नहीं।

खड़ा होकर वह उन्हें देखने लगा। लोग चक्कर लगाते हैं, पर लोहा नहीं मुड़ता। बात यह थी कि जिस चीज में लोहा अटका रक्खा था, वह चीज खुद लोगों के घूमने के साथ घूम जाती थी। यह देख धर्मपुत्र ने कहा—"भाइयो, यह आप क्या कर रहे हैं ?"

"देखते तो हो कि हम पहिए की हाल मोड़ रहे हैं। सब कर लिया, थककर चूर हुए जा रहे हैं। पर यह हाल मुड़ती ही नहीं।"

धर्मपुत्र ने कहा—"पहले उसे तो थिर कर लो जहां हाल अटका रक्खी है। नहीं तो आपके घूमने के साथ वह भी घूम जायगी। यों हाल कैसे मुड़ेगी ?"

किसानों ने बात मान ली। वैसा किया तो काम ठीक चलने लगा।

वह रात उन लोगों के साथ बिता अगले दिन धर्मपुत्र आगे बढ़ा। सारा दिन और सारी रात वह चलता रहा। आखिर तड़का होते उसे कुछ बनजारे मिले। वह भी फिर वहीं रह गया। बनजारे बैलों का सौदा वौदा कर चुके थे। अब आगे की तैयारी में आग जलाना चाह रहे थे। सूखी छिपटी और पात फूस वगैरह इकट्ठा करके उन्होंने दियासलाई दिखाई। वह जल नहीं पाई कि ऊपर से हरी घास का ढेर रख दिया। कुछ धुआं उठा, घास में सिसकारी-सी हुई और आग बुझ गई। बनजारे फिर सूखी छिपटियां बीन कर लाए, फिर जलाया और फिर वैसी ही गीली घास ऊपर ला रक्खी। आग फिर नहीं जली और बुझ गई। इस तरह बहुत देर तक बार-बार चेष्टा करते रहे। पर आग जलती ही न थी।

उस समय धर्मपुत्र ने कहा—"दोस्तो, घास ऊपर रखने में जल्दी न करो। पहले सूखी लकड़ी ठीक तरह बल चले, तब ऊपर कुछ रखना। आग एक बार लहक आने दो, फिर चाहे जितनी घास ऊपर रख देना।"

बनजारों ने बात मान ली। पहले आग खूब बल जाने दी। इस तरह जरा देर में आग लपटें दे उठी।

धर्मपुत्र कुछ देर उनके साथ रहा, फिर अपनी राह आगे हो लिया। चलता रहा, चलता रहा। सोचता जाता था कि तीन बातें जो उसने देखी हैं, उनका क्या मतलब हो सकता है। लेकिन उसे थाह छू नहीं मिलती थी।

(६)

धर्मपुत्र दिनभर चलता रहा। संध्या समय दूसरे बड़े जंगल का किनारा आया। वहां साधु की कुटिया मिली। उस पर जाकर धर्मपुत्र ने खटखटाया। अंदर से आवाज ने कहा—"कौन है ?"

धर्मपुत्र—"मैं एक बड़ा पापी हूं जिसे अपने और एक दूसरे के भी पापों का प्रायश्चित करना है।"

यह सुनकर साधु बाहर आये।

"वह पाप कौन हैं जिन्हें दूसरे के लिए तुम्हें उठाना पड़ रहा है ?"

धर्मपुत्र ने साधु को सब बातें सुना दीं। धर्म-पिता की बात कह, रीछनी और उसके बच्चों की घटना सुनाई, मुहरबंद कमरे और सिंहासन का हाल बताया। फिर धर्म-पिता ने जो आदेश देकर उसे भेजा था, वह कह सुनाया। रास्ते में जो किसान बछड़े का पीछा करने में खूब खेत रौंद रहे थे और कैसे फिर बछड़ा मालिक की पुकार पर अपने आप खेत से बाहर आ गया, वह सुनाया। अंत में बोला कि यह तो मैं देख चुका हूं कि बुराई का मेट बुराई से नहीं किया जा सकता। पर यह समझ में नहीं आता कि उसे फिर मिटाया कैसे जा सकता है। मुझे बतलाएं कि यह कैसे किया जाय।"

साधु ने कहा—"और कुछ तुमने रास्ते में देखा हो तो बताओ ?"

धर्मपुत्र ने बतला दिया कि कैसे मेज साफ करती औरत देखी थी और कुछ देहाती हाल मोड़ते हुए मिले थे और बनजारे आग जलाना चाह रहे थे।

साधु सब सुनते रहे। फिर कुटिया में गये और अंदर से एक पुराना कुल्हाड़ा लेकर आये। कहा—"मेरे साथ आओ।"

कुछ दूर जाने पर साधु ने एक पेड़ बताया। कहा—"इसे काट डालो।"

धर्मपुत्र ने यह पेड़ काट गिराया।

साधु ने कहा—"अब इसके तीन टुकड़े करो।"

धर्मपुत्र ने पेड़ के तीन टुकड़े कर दिये।

इसपर साधु फिर कुटिया में गये और वहां से कुछ जलती लकड़ियां लाये, बोले—"इनसे तीनों टुकड़ों को आग दे दो।"

धर्मपुत्र ने आग जलाई और पेड़ के उन बड़े-बड़े तीनों टुकड़ों को उनमें डाल दिया। जलते-जलते उनकी जगह तीन काले कुंदे ठूंठ रह गये।

साधु ने कहा—"अब इनको धरती में गाड़ दो, ऐसे कि आधे धरती में रहें, आधे ऊपर।"

धर्मपुत्र ने वैसा ही किया।

"अब देखो, वहां सामने पहाड़ी की तलहटी में एक नदी है। वहां से

मुंह में पानी भरकर लाओ। लाकर इन ठूँठों की जड़ में सींच दो। पहले ठूँठ को सींचो, जैसे कि तुमने पहले स्त्री को सीख दी थी। दूसरे को सींचो, क्योंकि हाल मोड़नेवाले किसानों को उपदेश दिया था। और इस तीसरे को बनजारों के नाम पर सींचे जाओ। जब इनमें जड़ें जम आयंगी और कल्ले फूटने लगेंगे और उन काले ठूँठों की जगह सेब के दरख्त हो आयंगे तब तुम भी समझ जाओगे कि आदमी में बुराई को कैसे मेटा जाना चाहिए। तब तुम्हारे सब पाप धुल जायंगे।"

इतना कहकर साधु अपनी कुटिया में चले गये। धर्मपुत्र बहुत देर तक सोचता-विचारता रहा। लेकिन साधु की बात का भेद न पा सका। तो भी साधु ने जैसा बताया था वैसा ही करना उसने शुरू कर दिया।

(१०)

धर्मपुत्र नदी पर गया, मुंह में पानी लिया और लौटकर पहले ठूँठ में सींच दिया। बार-बार इसी तरह मुंह में पानी ला-लाकर वह तीनों ठूँठों को सींचता रहा। जब उसे बहुत भूख लगी और थकान से चूर हो आया, तो कुटिया की तरफ चला कि साधु से कुछ खाने को मांग ले। इधर-उधर देखने पर उसे कुटिया में कुछ सूखी हुई रोटी मिल गई। थोड़ा खाकर उसने भूख शांत की और भीतर कुटी का दरवाजा खोला तो देखता है कि साधु की देह वहां मृतक पड़ी हुई है। तब वह मृतक देह के कर्म के लिए लकड़ी जमा करने में लगा। दिन में यह किया,, रात को मुंह में पानी ला-लाकर ठूँठ सींचने में लगा रहा। रात भर, जबतक बना, वह ऐसा ही करता रहा।

अगले दिन पास के गांव के कुछ लोग साधु के लिए खाना लेकर वहां पहुंचे। आकर देखते हैं कि साधु का तो शरीरांत हो गया है। अपनी जगह वह धर्मपुत्र को छोड़ गये हैं और उसको आशीर्वाद भी दिया है। सो साधु की देह का क्रिया-कर्म किया और जो खाना लाये थे धर्मपुत्र की भेंट कर दिया।

धर्मपुत्र साधु की जगह रहता रहा। लोग जो खाने को दे जाते थे उससे गुजर करता और साधु के आदेशानुसार उसी नदी से मुंह में भरकर पानी लाता और उन जले ठूँठों पर सींच देता।

इस तरह एक साल बीत गया। इस बीच बहुत लोग उसके दर्शन को

आये। उसकी ख्याति दूर-दूर फैल गई। लोगों में शोहरत हो गई कि एक पहुंचा हुआ संत है जो आत्मा के उद्धार के लिए पहाड़ी की तलहटी की नदी से मुंह में पानी ले कर आता है और जले ठूंठ सींचता है। सो ठठ-के-ठठ लोग दर्शन करने वहां पहुंचने लगे। मालदार, धनी, व्यापारी लोग वहां आते और भेंट-उपहार लाते। पर वह उसमें अपने तन जितनी चीज रखता। बाकी सब गरीबों को बांट देता।

इस तरह धर्मपुत्र रहने लगा। आधे दिन ठूंठ में पानी सींचता, बाकी आधा दिन आने-जाने वालों से मिलने-बताने में जाता। वह सोचने लगा कि बुराई को मिटाने और पाप धोने के लिए यही तरीका शायद होगा।

एक दिन कुटिया में बैठा था कि कोई आदमी घोड़े पर सवार उधर से निकला। अपनी मौज में वह तराने गाता हुआ चला जा रहा था। धर्मपुत्र कुटी में बाहर आया कि कौन आदमी है। देखा कि एक अच्छा मजबूत जवान है, चुस्त कपड़े हैं और खूब जीन-बीन से लैस एक बढ़िया घोड़े पर सवार है।

धर्मपुत्र ने रोककर पूछा—"तुम कौन हो जी, और कहां जा रहे हो?"

लगाम खींचकर उस आदमी ने कहा—"मैं डाकू हूं। ऐसे ही घूमा करता हूं और जो हाथ लगता है उसे पार करता हूं। शिकार जितने ज्यादह मिलते हैं उतनी ही खुशी के मैं गीत गाता हूं।"

धर्मपुत्र के जी में दहल समा गई। सोचने लगा कि ऐसे आदमी में से बदी को कैसे मिटाया जा सकता है। जो अपने आप भक्ति-श्रद्धा में मेरे पास आते हैं उनको कहना तो आसान है और वे अपने गुनाह सहज मान लेते हैं। लेकिन यह तो अपने पाप ही की डींग मारता है।

मन में यह सोच उसने उधर से मुंह मोड़ लिया। खयाल आया कि अब मैं कैसे करूंगा। यह डाकू यहीं आस-पास घूमता रहेगा और मेरे दर्शन को आनेवाले लोग डर के मारे रुक जायंगे, वे आना-जाना छोड़ देंगे। इससे उनकी भलाई भी रुक जायगी। और मैं भी भला फिर कैसे रहूंगा?

इसलिए फिर लौटकर उसने डाकू को पुकार कर कहा—"यहां बहुत लोग मेरे पास आया करते हैं। वे पाप की डींग भरते नहीं आते, बल्कि

पछतावे से भरे हुए आते हैं। वे भगवान से क्षमा की प्रार्थना करते हैं। ईश्वर का डर हो तो तुम भी अपने पापों की क्षमा मांगो। और जो तुम्हारे दिल में पछतावे की कमी न हो तो यहां से चले जाओ और फिर कभी इधर न आना। मुझे मत सताना और मेरे पास आनेवाले आदमियों को भी मत सताना। अगर नहीं मानोगे तो ईश्वर से सजा पाओगे।"

डाकू ठठ मारकर हंसने लगा। बोला—"मुझे ईश्वर का डर नहीं है और तुम्हारी बात की परवा नहीं है। तुम कोई मेरे मालिक नहीं हो। तुम अपनी धर्माई पर रहते हो, तो मैं अपनी डकैती पर रहता हूं। रहना सभी का है। बुढ़िया औरतें जो पास आयें उन्हीं को पट्टी पढ़ाया करो। मुझे तुमसे सीखने को कुछ नहीं है। और जो ईश्वर की बात तुमने कही, सो इसी नाम पर कल मैं रोज से दो ज्यादा आदमियों को जमघाट लगाऊंगा। तुम्हें भी मैं मार सकता हूं, लेकिन अभी मैं अपने हाथ खराब करना नहीं चाहता। पर देखना, आयंदा मेरी राह न काटना।"

इस तरह धमकी देकर डाकू एड़ लगा अपना घोड़ा दौड़ा ले गया। वह फिर लौटकर नहीं आया और धर्मपुत्र पहले की तरह पूरे आठ साल वहां शांति से रहता रहा।

(११)

एक रात धर्मपुत्र अपनी कुटी में बैठा था। ठूंठों में पानी दे चुका था। अब जरा विश्राम का समय था। उसकी निगाह रास्ते पर लगी थी कि कोई आयगा। वह जैसे प्रतीक्षा में था। लेकिन उस दिन भर कोई नहीं आया। वह शाम तक अकेला बैठा रहा। उसका जी इकलेपन से ऊब गया। उसे सूना-सूना लगने लगा। उसे पिछली बातें याद आने लगीं। याद आया कि डाकू ने ताने से कहा था कि तुम अपनी धर्माई पर जीते हो, मैं अपनी डकैती पर रहता हूं। इसपर उसे विचार हुआ कि साधु ने बताया था वैसे मैं नहीं रह रहा हूं। उन्होंने मुझ पर एक प्रायश्चित्त डाला था। लेकिन उसमें से मैं तो खाने-कमाने लगा हूं और गुजर भी पाने लगा हूं। होते-होते भक्तों का चढ़ाव का ऐसा आदी हो गया हूं कि अब वे नहीं आते तो जी ऊबता है और सूना लगता है। जब लोग आते हैं तो मुझे इसीलिए खुशी होती है

न कि वे मेरी धर्माई की तारीफ करते हैं। यह तो रहने की ठीक विधि नहीं है। मैं प्रशंसा के मोह में बहक रहा हूं। अपने पुराने पाप तो क्या उतारता, और नये जोड़े जा रहा हूं। यहां से कहीं दूर दूसरी तरफ जंगल में मुझे चले जाना चाहिए, जहां लोग मुझे पा न सकें। वहां फिर मैं ऐसे रहूंगा कि पुराने पाप धुलते जायं और नया कोई जमा न हो।

यह मन में धारकर थैली में कुछ रूखी रोटी बटोर, एक फावड़ा ले, धर्मपुत्र कुटी छोड़ चल दिया। बराबर घाटी में उसे एक एकांत जगह की याद थी। सोचा कि बस वहां पहुंचकर एक गुफा सी अपने लिए खोदकर तैयार कर लूंगा और लोगों से छुटकारा पाऊँगा।

अपना थैला लटकाए और फावड़ा लिये वह जा रहा था कि उसी की तरफ आते हुए डाकू के कदम उसे सुनाई दिये। धर्मपुत्र को डर लग आया और वह तेज कदम बढ़ चला। लेकिन डाकू ने उसे पकड़ लिया। पूछा, "कहां जा रहे हो ?"

धर्मपुत्र ने कहा—"मैं लोगों से दूर चला जाना चाहता हूं। कहीं ऐसी जगह रहना चाहता हूं जहां कोई पास न आये।"

यह सुनकर डाकू को अचरज हुआ। बोला—"लोग पास नहीं आयंगे तो तुम्हारा गुजारा कैसे होगा ?"

धर्मपुत्र को यह सूझा भी नहीं था। डाकू की बात से याद आया कि हाँ, आहार तो आदमी के लिए जरूरी है। बोला—"जो परमात्मा की दया हो जायगी उसीपर बसर कर लूँगा।"

डाकू ने कुछ नहीं कहा और आगे बढ़ लिया।

धर्मपुत्र सोचने लगा कि मैंने डाकू से अपने रंग-ढंग बदलने के बारे में इस बार क्यों नहीं कहा। शायद अब उसे पछतावा हो। आज तो उसका रुख कुछ मुलायम मालूम होता था। अबकी उसने मुझे मारने की भी धमकी नहीं दी।

यह सोचकर उसने डाकू को पुकार कर कहा कि सुनते हो, अभी तुम्हें अपने गुनाहों की माफी मांगनी चाहिए। ईश्वर से तो सदा बच नहीं सकते।

यह सुनकर डाकू ने घोड़ा मोड़ पेटी में से खंजर निकाला और धर्मपुत्र

को मारने को हुआ । धर्मपुत्र यह देखकर चौंका और सहमा हुआ सीधा अंदर जंगल में बढ़ गया ।

डाकू ने उसका पीछा नहीं किया । बस जोर से सुनाकर कहा—"दो बार मैं तुम्हें छोड़ चुका हूं । अगली बार जो कहीं तुमने मुझे टोका, तो तुम्हारी खैर नहीं है, यह समझ लेना ।"

यह कहकर डाकू अपने रास्ते हो लिया ।

उस शाम धर्मपुत्र ठूंठ में पानी देने जो पहुंचता है कि क्या देखता है कि उनमें से एक ठूंठ कल्ले दे रहा है और उसमें से नन्हें सेब की कोंपलें चली हैं !

(१२)

सबसे अपने को छिपाकर धर्मपुत्र बिलकुल अकेला रहने लगा । रोटी खत्म हो गई तो उसने सोचा कि चलूं, खाने के लिए कहीं कुछ कंद-मूल देखूं । यह सोचकर वह कुछ दूर चला था कि देखता क्या है कि एक पेड़ की टहनी पर अंगोछे में बंधी रोटियां लटकी हुई हैं। उसने वे रोटियां ले लीं और जब तक बना, उनपर गुजारा करता रहा ।

वे खत्म हो गईं तो उसी पेड़पर दुबारा वैसे ही अंगोछा लटका मिला । इस तरह उसका गुजारा होता रहा । बस अब कुछ बात थी तो डाकू का डर बाकी था । आस-पास कहीं आते-जाते उसकी आहट सुनता तो सहम कर दुबक रहता था । सोचता कि कहीं ऐसा न हो कि मैं अपने पाप धो न पाऊं, उससे पहले ही डाकू मुझे मार दे ।

इस तरह दस साल और हो गये । एक तो उनमें सेब का पेड़ होकर हरिया आया था, लेकिन और दो ठूँठ के ठूँठ रहे। एक सबेरे धर्मपुत्र जल्दी उठा और काम पर पहुंचा। ठूँठ की जमीन को मुंह के पानी से काफी गीली करते उसे खूब मेहनत पड़ी । आखिर थककर वह आराम करने लगा । बैठे-बैठे सोचने लगा । सोचा कि मैंने पाप किया है, इसीसे मैं मौत से डरता हूं। ईश्वर की मरजी कौन जानता है । हो सकता है कि मौत से ही मेरे पाप धुलने वाले हों । तब उसका भी स्वागत किये बिना मैं कैसे रह सकता हूं।

यह खयाल करके मन में आया ही था कि उधर से घोड़े पर सवार जाने

किसे गाली देता हुआ डाकू उस तरफ ही आता मालूम हुआ। धर्मपुत्र ने सोचा कि सिवा ईश्वर के किसी और से मेरा कुछ बन-बिगड़ क्या सकता है। यह सोचकर वह आगे बढ़कर डाकू को मिला। देखता क्या है कि डाकू अकेला नहीं है। पीछे घोड़े से एक और आदमी बंधा है। मुंह उसका बंद है और हाथ-पैर कसे हुए हैं। वह आदमी कुछ नहीं कर रहा है, पर डाकू उसे मन आई गाली दियें जा रहा है।

धर्मपुत्र बढ़ता हुआ जाकर घोड़े के सामने खड़ा हो गया। पूछा—"इस आदमी को कहां ले जा रहे हो?"

डाकू ने जवाब दिया—"जंगल के अंदर लिये जा रहा हूं। यह एक मालदार बनिये का बेटा है, पर बताता नहीं है कि बाप का माल कहां छिपा है। सो कोड़ों से इसकी खबर लूँगा तब बतायेगा।"

यह कहकर वह घोड़े को एड़ लगाने को हुआ कि धर्मपुत्र ने घोड़े की रास पकड़ ली और जाने नहीं दिया। कहा—"इस आदमी को छोड़ दो।"

डाकू को गुस्सा चढ़ आया और उसने मारने को हाथ उठाया—

"क्या, तुम भी कुछ मजा चखना चाहते हो? जो इस आदमी को मार मिलेगी वह तुम भी चाहो तो वैसी कहो। मैं कह चुका हूं कि ज्यादा करोगे तो मेरे हाथ से जान खोओगे। सुना? अब रास छोड़ो।"

लेकिन धर्मपुत्र डरा नहीं। बोला—"तुम जा नहीं पाओगे। मुझे तुम्हारा डर नहीं है। बस एक ईश्वर का मुझे डर है उसका हुक्म है कि मैं तुम्हें न जाने दूँ। इस आदमी को तुम छोड़ दो।"

डाकू को गुस्सा तो आया; लेकिन उसने चाकू निकालकर उस आदमी के बंध काट दिये और उसे आजाद कर दिया। फिर बोला—"अब जाओ, तुम दोनों चले जाओ। और खबरदार, जो फिर मेरी राह आड़े आये।"

वह वैश्यपुत्र तो घोड़े की पीठ से खिसक चट भाग गया। डाकू भी घोड़े पर सवार हो चलने को था कि धर्मपुत्र ने फिर उसे रोका और कहा कि देखो, अपनी इस बदी से बाज आओ। लेकिन डाकू सब चुपचाप सुनता रहा। आखिर बिना कुछ बोले वह चला गया।

अगले दिन धर्मपुत्र फिर ठुंठ में पानी देने गया। और अचरज की बात

देखो कि दूसरा ठूंठ भी हरा हो रहा था। उसमें भी सेब के पेड़ की कोपलें फूटने लगी थीं !

(१३)

दस साल और बीते। धर्मपुत्र एक दिन शांति से बैठा था। न कोई कामना थी, न आशंका। प्रसन्नता से मन भरा आता था।

सोचा—"ईश्वर ने आदमी को कैसी-कैसी न्यामतें बख्शी हैं। फिर भी नाहक वह कैसा हैरान और परेशान रहता है। क्यों वह खुश नहीं रहता। क्या उसे अड़चन है ?"......

फिर आदमी खुद जो अपने लिए मुसीबत पैदा करता है और बुराई के बीज बोता है, उसके फल याद कर धर्मपुत्र का जी भर आया। उसने सोचा कि जैसे मैं रहा हूं, वैसे ही रहते जाना गलत है। मुझे चाहिए कि जो सीखा है, चखूं और वह औरों को भी सिखाऊं। जो पाता हूं, सब को दूं।

यह विचार मन में आना था कि डाकू के घोड़े की टाप उसे सुन पड़ी। लेकिन वह उसे रोकने नहीं बढ़ा। सोचा कि उसे कहने-सुनने से क्या फायदा है। वह कुछ समझ नहीं सकता।

पहले तो यह विचार आया; फिर मन बदल गया और धर्मपुत्र बढ़कर सड़क पर आ पहुंचा। आते हुए डाकू को देखा कि वह उदास है, आंखें उसकी झुकी हुई हैं। धर्मपुत्र को देखकर दया आई और पास पहुंचकर उसकी रानों पर हाथ रखकर उसने कहा—"भाई, अपने आप पर अब रहम करो। तुम्हारे अंदर ईश्वर का वास है। तुम तकलीफ पाते हो इसीसे औरों को सताते हो। नतीजा यह कि आगे के लिए और तकलीफ जमा करते जा रहे हो। लेकिन ईश्वर तुम्हें प्यार करता है और तुम्हें अपनाने को सदा तैयार है। देखो, अपने को बिलकुल बरबाद न करो। अभी बदल सकते हो।"

पर डाकू नाराज होकर अपनी राह चलने को हुआ। बोला—"अपने काम-से-काम रक्खो—"

लेकिन धर्मपुत्र ने डाकू को और कस के पकड़ लिया और उसकी आंखों से तार-तार आंसू गिरने लगे।

डाकू ने इस पर आंख उठाई और धर्मपुत्र की तरफ देखा। जाने

कैसे और कितनी देर देखता रहा। फिर एकाएक घोड़े से नीचे उतर वह धर्मपुत्र के चरणों में घुटनों आ बैठा।

बोला—"तुमने आखिर मुझे जीत ही लिया, भाई! बीस साल तक मैं अड़ा रहा, लेकिन आखिर तुमने मुझे जीत ही लिया। अब जो चाहे मेरा करो, मैं तुम्हारे हाथ हूं और बेबस हूं। जब तुमने पहले मुझे सीख देने की कोशिश की, उससे मुझे और गुस्सा चढ़ आया था। पर तुम जब लोगों से अपने-आप को दूर ले गये तब मुझे तुम्हारे शब्दों पर खयाल हुआ। क्योंकि तब मैंने देखा कि उन लोगों से तुम्हें अपनी कोई गरज नहीं है। उसी दिन के बाद से मैं तुम्हें खाना पहुंचाने लगा। मैं ही पेड़ पर अंगोछा बांध जाया करता था।"

धर्मपुत्र को याद आई वही पुरानी बात। उस स्त्री की मेज तभी साफ झड़ सकी थी जब झाड़न को साफ कर लिया गया था। इसी तरह जब कोई अपनी परवाह और गरज छोड़कर अपने दिल को साफ कर लेगा तभी वह दूसरों के दिल की सफाई कर सकेगा।

डाकू आगे बोला—"जब मैंने देखा कि तुम्हें मौत का डर नहीं है उस समय से मेरा दिल भी बदल चला।"

और धर्मपुत्र को याद आई वह हाल मोड़ने की घटना। जब तक एक जगह लोहे का सिरा किसी थिर चीज में नहीं अटका दिया गया कि हाल नहीं मुड़ी। ऐसे ही जबतक मौत का डर दूर कर जीवन को ईश-निष्ठान में स्थिर नहीं कर लिया गया तबतक इस आदमी के अक्खड़ मन पर काबू पाना भी नहीं हो सका।

डाकू ने कहा—"लेकिन मेरा मन तब तो पिघल कर पानी-पानी हो आया जब करुणा के मारे तुम्हारी आंखों से अपने लिए मैंने आंसू ढरते देखे।"

धर्मपुत्र सत्य की यह महिमा सुनकर मग्न हो आया। फिर वह अपने ठूंठों के पास गया और डाकू को भी साथ ले गया। जाकर दोनों देखते हैं तो तीसरे ठूंठ में भी सेब का कल्ला फूट गया है और हरी झांकी दे रहा है! उस समय धर्मपुत्र को याद आया कि बनजारों की घास तब तक आग न पकड़ सकी थी जबतक पहले छिपटियां अच्छी तरह न सुलग लेने दी गई थीं। इस

तरह जब उसका अपना दिल सहानुभूति की गरमी से जलने-जैसा हो गया था तभी वह दूसरे के दिल को अपनी लौ से जगा भी सका, पहले नहीं।

और धर्मपुत्र ने इस भांति प्रकाश पाने और अपने पापों के क्षय हो जाने पर बहुत आभार और आनन्द माना।

फिर उसने डाकू को अपनी सारी जीवन-कथा कह सुनाई। इस भांति अपना सब मर्म उसे भेंट करने के अनन्तर धर्मपुत्र ने शरीर छोड़ दिया। डाकू ने उसकी देह की अंत्येष्टि की और धर्मपुत्र के कहे अनुसार ही रहने लगा। धर्मपुत्र से जो पाया था, सब कहीं उसी का वितरण करने में वह लग गया।

: ६ :

दो साथी

(१)

एक बार की बात है कि दो बूढ़े आदमी थे। उन्हें परम तीर्थ-धाम येरुशलम के यात्रा-दर्शन की चाह हुई। उनमें एक का नाम था एफिम शुएव। यह एक खासा खुशहाल काश्तकार था। दूसरे का नाम था एलीशा। एलीशा की हालत उतनी अच्छी न थी।

एफिम आदमी औसत तरीके का था। संजीदा, इरादे का मजबूत, आदत का नेक। शराब उसने जीवन में कभी नहीं पी थी। न बीड़ी पीता था, न तंबाकू। और कभी उसके मुंह पर गाली नहीं आती थी। दो बार गांव में वह सरपंच चुना गया था और उसके काल में हिसाब पाई-पाई का दुरुस्त रहता था। बड़ा उसका कुनबा था। दो बेटे थे और एक नाती का भी ब्याह हो गया था और सब जने साथ रहते थे। वह मिलनसार था और उसकी काया अभी तंदुरुस्त बनी थी। दाढ़ी नीचे तक आती थी और साठ पार तो गये तब दाढ़ी के एक-आध बाल कहीं चांदी के होने शुरू हुए थे।

एलीशा न संपन्न था, न दीन। काम उसका बढ़ईगीरी का था और बाहर बस्ती में जाकर मजदूरी कर लिया करता। पर उमर हो आई तो बाहर अब नहीं जा सकता था। सो घर रहकर उसने मधुमक्खी पाल ली।

इसका एक बेटा काम की तलाश में दूर देश चला गया था। दूसरा घर रहता था। एलीशा दयावान और खुशमिजाज आदमी था। कभी-कदास पी लेता था और संुघनी की आदत भी थी और गाने का भी शौक था। लेकिन आप भी वह शांत प्रकृति का था और पास-पड़ोस के साथ या घर में सबसे बनाकर रहता था। कद में जरा नाटा, रंग कुछ पक्का। दाढ़ी घुंघराली घनी। और सिर अपने हमनाम पुराने ऋषि एलीशा की भांति हमारे इन एलीशा का भी बालों से एकदम सूना था।

इन दोनों वृद्ध जनों ने, एक मुद्दत हुई कि, साथ येरुशलम की यात्रा को चलने का संकल्प किया था। लेकिन एफिम को फुरसत का समय नहीं निकला। काम उसे बहुत रहा करता था। एक निबटता कि दूसरा हाथ घेर लेता। पहले तो नाती की शादी की बात ही आगे आ गई। फिर अपने छोटे बेटे के लाम पर से लौटने के इंतजार में रहने में समय निकल गया। उसके बाद एक नये मकान के सिलसिले में मदद लगनी शुरू हो गई।

सो एक इतवार के दिन दोनों जने, जहां मदद लग रही थी, उस नये घर के आगे मिले! वहां बल्लियों के चट्टे पर बैठकर बात करने लगे।

एलीशा ने कहा—"क्यों जी; वह यात्रा का संकल्प हमारा कब पूरा होने में आयगा?"

एफिम का मुंह लटक गया। बोला—"अभी थोड़ी बार और देखो। यह साल तो तुम जानो कैसा कठिन मुझे पड़ा है। सोचा था रुपये दो-सौ एक में यह झोंपड़ी खड़ी हो जायगी। लेकिन चार-सौ ऊपर लग गये और अभी कितना काम बाकी है। गरमी आने तक और ठहरो। भगवान ने चाहा तो गरमी में जरूर-ही-जरूर चलेंगे?"

एलीशा ने कहा—"मेरी राय तो है कि हमें जल्दी-से-जल्दी चल देना चाहिए। मौसम बसंत का है, सो समय अच्छा भी है।"

"समय तो अच्छा है, लेकिन इस लगी मदद का क्या करूं? इसे छोड़ कैसे दूं?"

"तुम तो ऐसे कहते हो जैसे देखने-भालने को दूसरा कोई है ही नहीं। तुम्हारा बेटा ही जो है।"

"बेटा ! भली कही ! उसका एतबार मुझे नहीं है। कभी हजरत ज्यादा भी चढ़ा जाते हैं।"

"भाई, आंख मिचने पर भी तो हमारे सबकुछ काम चलेगा न। सो बेटा बड़ा हुआ, आप भुगत के सब सीख जायगा।"

"तुम्हारा कहना तो ठीक है, लेकिन काम छेड़ा तो अधबीच में उसे छोड़ा भी नहीं जाता है।"

"भाई, सबकुछ तो इस जन्म में कभी पूरा हुआ नहीं है। उस दिन की बात है कि हमारे घर ईस्टर के लिए झाड़ा-बुहारी और सफाई-धुलाई हो रही थी। सो कुछ यहां करने को है, तो कुछ वहां निपटाना है। इस तरह यह-कर वह-कर, बस यही लगा-लगी रही। फिर भी सब काम पूरा नहीं हुआ। सो बड़े-बेटे की बहू जो हमारी है बड़ी समझदार है। बोली, "परव-त्यौहार का दिन हमारी बाट नहीं देखता, यही गनीमत है। नहीं तो कितना ही करें, हम उसके लिए कभी तैयार न हो पायें और ऐसे तो त्यौहार कभी न मनें।"

एफिम सुन कर सोच-विचार में पड़ गया। बोला, "इस झोंपड़े पर मेरा खासा खर्चा आ गया है और यात्रा पर तुम जानो खाली हाथ तो जाया नहीं जाता। हरेक पर सौ-सौ रुपया तो भी लगेगा। और सौ रुपया कोई छोटी रकम नहीं है।"

एलीशा यह सुनकर हंस पड़ा। बोला—"छोड़ो भी, कैसी बात करते हो। मुझसे दस गुना तुम्हारे पास होगा। फिर भी पैसे की चलाते हो। मुझे बता दो कि कब चलना है, और आज पास कुछ नहीं तो क्या, तबतक मैं चलने जोग कर ही लूँगा।"

एफिम भी इसपर हंसा। कहने लगा—"भई, पता नहीं था कि तुम ऐसे रईस हो। अच्छा, यह रकम ले कहां से आओगे?"

"घर में मिल-मिला कर जमा-बटोर कुछ तो हो ही जायगा। वह काफी न हुआ तो कुछ मधुमक्खी के छत्ते एक पड़ोसी के हाथ उठा दूँगा। वह अरसे से लेना भी चाह रहा है।"

"अगर कहीं शहद उनसे पीछे खूब पका तो तुम्हें बेचने का अफसोस

होगा ।"

"अफसोस ? नहीं भाई, अफसोस मैं नहीं जानता। अपने पाप के सिवा मैं किसी और बात के लिए पछतावा नहीं करता। भई, अपनी आत्मा से बढ़कर तो दूसरा कुछ है नहीं।"

"सो ठीक है, फिर भी घर के काम-धाम का हर्ज करना भी ठीक नहीं लगता।"

"लेकिन आत्मा का हर्ज हो रहा है, सो यह तो उससे बुरी बात है ना। हम दोनों ने तीर्थ का संकल्प किया था। सो चलना ही चाहिए।"

(२)

एलीशा ने आखिर साथी को मोड़ ही लिया। खूब सोच-विचारने के बाद सबेरे के समय एफिम एलीशा के पास आये। बोले—"भई, तुम्हारी बात सही है। चलो, चलें। मौत-जिंदगी परमात्मा के हाथ है। सो जबतक देह में सामर्थ्य है और दम बाकी है तभी चल दें तो अच्छा है।"

सो सात रोज के अंदर दोनों जने प्रस्थान के लिए तैयार मिले। एफिम के पास नकद पैसा काफी हो गया। सौ-एक रुपया उसने साथ ले लिया। दो-सौ बीबी के पास छोड़ दिया।

एलीशा ने भी तैयारी कर ली थी। दस छत्ते उसने पड़ोसी को उठा दिये थे। जो नई मधुमक्खी की मुहाल उन छत्तों पर आकर लगे, वे भी उसीकी। इस तमाम पर सत्तर रुपये उसे मिले। सौ में के बाकी उसने अपने कुनबे के और लोगों से जमा बटोरकर पूरे कर लिये। इसमें इधर के और लोग सब खोखले ही रह गये। बीबी ने अपनी मौत के बाद क्रिया-कर्म के वास्ते बचाकर कुछ रख छोड़ा था सो सब दे दिया। बहू ने भी पास का अपना सब कुछ सौंप दिया।

एफिम ने अपने बड़े लड़के को ठीक-ठीक पूरी तरह सब कुछ समझाकर ताकीद दे दी थी कि कब और कितनी घास कहां से कटेगी, खाद का क्या इंतजाम होगा और छत कैसी पड़ेगी। उसने एक-एक बात का विचार रक्खा था और पूरा बंदोबस्त समझा दिया था। दूसरी तरफ एलीशा ने अपनी बीवी को बस इतना कहा कि उन छत्तों को जो वेच दिये हैं न, अपनी मक्खी

न लगने देना कि कहीं उनका शहद कम हो जाय। और देखना, सब छत्ते पूरे-के-पूरे पड़ोसी को मिल जायं, कुछ अपनी तरफ से चूक न हो। बाकी घर की और बातों के बारे में एलीशा किसी तरह का कोई जिक्र भी मुंह पर नहीं लाया। बोला--"जैसी जरूरत देखना, वैसा अपने आपकर लेना। तुम्हीं लोग तो मालिक हो। सो जो ठीक जानो अपने सोच-विचारकर वह कर ही लोगे।"

इस तरह दोनों वृद्ध जन तैयार हो गये। लोगों ने खाना बनाकर साथ बांध दिया और पैरों के लिए पट्टियां तैयार करके दे दीं। जूते उन्होंने एक जोड़ी पहन लिये, एक साथ रख लिये। परिवार के लोग गांव के किनारे तक साथ-साथ आये और वहां दोनों को विदा दी। दोनों जने अपनी यात्रा पर चल दिये।

एलीशा मन से हलका और प्रसन्न था। गांव से निकलना था कि घरबार की सब बातें उसने मन से भुला दीं। उसको बस अब यह लगन थी कि अपने साथी को कैसे आराम से और खुश रक्खूं। किसीको कोई सख्त कड़ुआ शब्द न कहूं और सारी यात्रा कैसी प्रीति और शांति से पूरी करूं। सड़कपर चलते हुए एलीशा या तो मन-मन में प्रार्थना दुहराता रहता, या संत-महात्माओं के जीवन का विचार करता। जो थोड़ा-बहुत उनके बारे में उसने सुना-जाना था वही उसे बहुत था। रास्ते में कोई मिलता या रात में कहीं ठहरना होता तो वह बड़ी विनय से बात करता और सबसे मीठे बैन बोलता। इस तरह मगन भाव से वह अपनी यात्रा पर आगे बढ़ता रहा। एक बात बेशक उसके बस की नहीं हुई। सुंघनी उससे नहीं छोड़ी गई। सुंघनी की डिबिया तो उसने घर छोड़ दी थी, लेकिन उसके बिना अब उसे कल नहीं पड़ती थी। आखिर एक राहगीर ने उसे कुछ सुंघनी दी। सुंघनी पाकर वह फिर चलते-चलते राह में रुक जाता (कि कहीं उसके साथी को बुरा न लगे या मन न चले) और पीछे रहकर सुंघनी की वह जरा नक्की ले लेता और फिर आगे बढ़ता था।

एफिम भी मजबूत तबियत से चल रहा था। कोई खोटा काम नहीं करता था और अहंकार के बचन नहीं बोलता था, लेकिन मन वैसा हलका नहीं था। घर की फिकर का बोझ उसके मनपर बना था। जाने घरपर कैसे

चल रहा हो। देखो, बेटे से यह और कहने की याद न रही। और हां, वह भी नहीं बतलाया। लड़का ठीक-ठीक चला भी लेगा कि नहीं। रास्ते में कहीं खाद की गाड़ी जाती उसे दीखती या आलू ढोते हुए लोग मिलते तो एफिम के मन में एकदम खयाल होता कि घरपर हमारे सब काम ठीक-ठीक हो रहे होंगे कि नहीं। उन्हें अपने हाथों से करके बता और समझा आऊं।

इस तरह पांच हफ्ते वे दोनों चलते गये, चलते गये। उनके जूते के तले बेकार हो गये। छोटा-रूस आते-आते दूसरे जूतों के बंदोबस्त की उन्हें सोचनी पड़ी। घरसे चले तबसे अबतक खाने और रात के ठहरने के उन्हें दाम देने हुआ करते थे। यहां आकर अब लोग उन्हें ठहराने और सत्कार करने में मानो आपस में होड़-सी करने लगे। अपने घर ठहराते, खिलाते-पिलाते और बदले में पैसा एक न छूते। इतना ही क्यों, आगे राह के लिए वे आग्रह के साथ खाना भी उनके साथ बांध दिया करते थे।

कोई पांच-सौ मील की यात्रा इन लोगों ने इस तरह बे-लागत की। इसके बाद जो जगह आई, वहां उस साल काश्त सूख गई थी। वहां के किसान लोग ठहरा तो मुफ्त लेते थे, पर खाना बे-लागत नहीं दे सकते थे। सो कभी तो रोटी उन्हें मिलती भी नहीं थी। दाम देने को तैयार थे, पर रोटी मयस्सर नहीं होती थी। लोग बोले कि खेती पारसाल एकदम सत्यानाश हो गई। जिनके खलिहान भरे रहा करते थे, उन्हें ही अब घर का बासन-कूसन बेच देना पड़ रहा है। उनसे कुछ उतरी हालत जिनकी थी, उनका हाल बेहाल है। और जो गरीब थे, उनमें भाग गये, सो गये, बाकी जो बचे मांग-तांग कर पेट पालते या घर में पड़े भूखों मर रहे हैं। जाड़ों में तो चोकर और पत्तियां खाकर तन जोड़े रहे।

एक रात दोनों आदमी एक छोटे देहात में ठहरे। रात वहां नींद ली और अगले दिन तड़का फूटने से पहले चल दिये। वहां से काफी रोटी ले रक्खी। धूप में ताप चढ़ने तक खासी राह उन्होंने तय करली। कोई आठ मील चलने पर एक चश्मा आया। वहां दोनों जने बैठ गये और पानी लेकर उसके साथ रोटी भिगो-भिगोकर खाई। फिर पांवों की पट्टी खोल जरा विश्राम किया। एलीशा ने अपनी सुंघनी की डिबिया निकाली।

देखकर एफिम ने नापसंदगी में सिर हिलाया। कहा—"यह क्या बात जी ? यह गंदी लत तुम नहीं छोड़ पाते ?"

एलीशा ने कहा—"यह लत मेरे बस से भारी हो गई दीखती है। नहीं तो और क्या कहूँ ?"

विश्राम के उपरांत उठकर वे लोग वहां से आगे बढ़ लिये। कोई मील और चलने पर एक बड़ा गांव आया जिसके ठीक बीच में से गुजरना हुआ। अब घाम का ताप बढ़ गया था। एलीशा को थकान हो आई थी और जरा वहां ठहरकर पानी पी लेने को उसका जी था। लेकिन एफिम बिना रुके चला जा रहा था। दोनों में एफिम अच्छा चलने वाला था और एलीशा को उसका साथ पकड़े रहने में भी कठिनाई होती थी।

एलीशा ने कहा—"जो कहीं यहां पानी मिल जाता, तो अच्छा था।"

एफिम ने कहा—"अच्छी बात, पियो पानी, पर मुझे प्यास नहीं है।"

एलीशा ठहर गया। बोला—"तुम चलते चलो। मैं जरा उस झोंपड़ी तक जाकर पानी पी आता हूं। थोड़ी देर में बढ़कर तुम्हारा साथ लूँगा।"

"अच्छा।"

यह कहकर एफिम सड़कपर अकेला ही आगे बढ़ लिया। एलीशा झोंपड़ी की तरफ मुड़ा।

झोंपड़ी छोटी-सी थी। दीवारें मिट्टी से पुती थीं। फर्श काले रंग का और इस्तेमाल से चिकना था। ऊपर सफेद पोता। लेकिन दीवारों की मिट्टी गिरने लगी थी। मालूम होता था मिट्टी थोपे मुद्दत हो गई है। ऊपर एक तरफ से छप्पर-छत छिदीली थी। दरवाजे के आगे एक आंगन-सा था। एलीशा आंगन में आया। देखा कि मिट्टी के डंडे का घेर जो घर के चारों तरफ खिचा हुआ है, उसके तले अंदर एक आदमी ढेर की मानिंद पड़ा है। देह का मजबूत, दाढ़ी नहीं है, और कुर्ता पाजामे के अंदर उड़सा हुआ है। आदमी वह वहां छाया में ही लेटा होगा, लेकिन अब सूरज घूमकर पूरा उसके ऊपर पड़ रहा था। वह सोया नहीं था, फिर भी पड़ा हुआ था। एलीशा ने उसके पास जाकर पानी मांगा; लेकिन आदमी ने कुछ जवाब नहीं दिया।

एलीशा ने सोचा कि या तो यह बीमार है या जानबूझकर सुनना नहीं

चाहता। दरवाजे के पास गया तो अंदर से एक बच्चे के रोने की आवाज आई। उसने कुंडी पकड़ दरवाजे को खटखटाना शुरू किया।

"भाई, कोई है ?"

एलीशा ने पुकारा। पर जवाब कोई नहीं। अपने डंडे से किवाड़ को ठोकते हुए उसने फिर पुकारा, "ए जी, कोई सुननेवाला अंदर है ?"

पर कोई उत्तर नहीं।

"ए सुनो, कोई है ?"

जवाब नदारद।

एलीशा लौटने को हुआ। लेकिन तभी ऐसा मालूम हुआ कि जैसे दूसरी तरफ से कोई कराहने की आवाज उसके कान में पड़ी हो।

"कोई मुसीबत इन लोगों पर पड़ी मालूम होती है। चलूं। देखूं तो।" और एलीशा झोंपड़े में घुसा।

खटका उसने खोला। दरवाजे की कुंडी अंदर से बन्द नहीं थी, वह सहज खुल गया और एलीशा जिस कमरे में पहुंचा। उसमें बांई तरफ चूल्हा था। सामने आले के ऊपर मसीह का क्रूस टंगा था। पास एक मेज थी। वहीं बेंच पड़ी थी। बेंच पर थी एक स्त्री। सिर उसका खुला था, तन पर अकेला एक कपड़ा। उमर की बुढ़िया थी। मेज पर सिर रक्खे झुकी बैठी थी। पास ही पोता मिट्टी-सा पीला दुबला एक बालक जिसका पेट आगे को निकला हुआ था। वह कुछ मांस खा रहा था और जोर-जोर से रोकर बुढ़िया का पल्ला खींचता था। एलीशा घुसा तो हवा वहां की उसे बहुत गंधीली मालूम हुई। उसने मुड़कर देखा तो चूल्हे के पास धरती पर एक औरत और पड़ी थी। आंखें बंद थीं। और गले में कुछ घर-घर आवाज हो रही थी। वह वहां चित्त पड़ी आसमान में रह-रहकर टांगें फेंक रही थी। कभी उन टांगों को सिकोड़ती, समेटती और फिर फेंकने लगती। दुर्गंध वहीं से आ रही थी। मालूम होता था कि वह खुद उठ-बैठ सकती है नहीं, न कोई और देखने-भालने वाला है। बुढ़िया ने सिर उठाया और आगंतुक को देखा। बोली, "क्या है ? कुछ चाहते हो ? यहां कुछ नहीं।"

भाषा उसकी दूसरी थी। फिर भी एलीशा बात समझ गया। बोला

"भगवान की दया हो। जरा पीने को पानी चाहता था।"

"यहां कोई नहीं है, कुछ नहीं है। पानी काहे में ला कर रक्खें? जाओ, रास्ता देखो।"

उस समय एलीशा ने पूछा—"क्यों जी, कोई तुममें नहीं जो यहाँ उस बिचारी बीमार को जरा संभालने लायक हो?"

"नहीं, कोई नहीं। लड़का मेरा बाहर बेबस मर रहा है। हम यहाँ अंदर मर रहे हैं।"

बच्चे ने एक नये आदमी को देखकर रोना बंद कर दिया था। लेकिन बुढ़िया बोली तो फिर उसने वही राग शुरू कर दिया। बुढ़िया का आंचल खींचकर बोला—"दादी रोटी, दादी रोटी।"

एलीशा बुढ़िया से पूछने वाला था कि बाहर से वह आदमी लड़खड़ाता लड़खड़ाता वहां पहुंचा। वह दीवार को पकड़े-पकड़े आ रहा था; पर कमरे में घुसा कि देहली के पास धड़ाम से गिर पड़ा। फिर उठकर चलने और पास आने की उसने कोशिश नहीं की। वहीं से टूटती जबान में बोलने लगा। एक शब्द निकलता कि फिर सांस लेने को वह रुक जाता और हांफता हुआ फिर आगे का शब्द मुंह से बाहर होता।

बोला—"महामारी ने हमें पकड़ लिया है।...और अकाल...वह भूखा है...मर रहा है...।"

कहकर उसने बच्चे की तरफ इशारा किया और खुद फूटकर रोने लगा।

इसपर एलीशा ने कंधे पर लटके अपने बकचे को लिया और कमर पर से उतारकर धरती पर रख दिया। फिर बेंच पर उसे खोल उसमें से रोटी (डबल रोटी) निकाली। चाकू लेकर उसमें से एक टुकड़ा काटा और उस आदमी की तरफ बढ़ा दिया। लेकिन आदमी ने उसे तो लिया नहीं, बल्कि उस बच्चे और चूल्हे के पीछे दुबकी बैठी एक दूसरी लड़की को इशारे से एलीशा को बताया। मानो कहा—"देते हो तो उन्हें दो, उन्हें।"

यह देखकर एलीशा ने रोटी बालक की ओर बढ़ाई। रोटी का देखना था कि बालक ने दोनों हाथ बढ़ाकर उसे झपट लिया और नन्हें-नन्हें हाथों में टुकड़े को पकड़ उसमें ऐसा मुंह गाड़कर खाने लगा कि उसकी नाक का पता

चलना मुश्किल था। पीछे से लड़की भी चलती वहां आ पहुंची और रोटी पर आंख गाड़े खड़ी हो गई। एलीशा ने उसे भी टुकड़ा दिया। फिर एक और टुकड़ा काटकर उस बुढ़िया स्त्री को दिया। वह बुढ़िया भी अपने बूढ़े मुँह से उसे कुतरकर खाने लग गई।

बोली—"जो कहीं थोड़ा इस वक्त पानी कोई और ले आता! तालू तो बेचारों के सूख रहे हैं! कल मैं पानी लेने गई थी, या आज, याद नहीं···सो बीच में ही गिर पड़ी। आगे फिर जा नहीं सकी। डोल वहीं पड़ा रह गया। कोई ले न गया हो, कौन जाने वहीं पड़ा हो।"

एलीशा ने कुएँ का पता पूछा। बुढ़िया ने बता दिया। सो एलीशा गया, डोल लिया और पानी लाकर सबको पिलाया। बच्चों ने और बुढ़िया ने पानी आने पर उसके साथ फिर और कुछ रोटी खाई। लेकिन आदमी ने एक कन मुंह में न डाला। बोला, "मैं खा नहीं सकता।"

अब तक वहां पड़ी दूसरी स्त्री को कोई होश नहीं मालूम होता था। वह वैसे ही अधर में टांग फेंक रही थी। एलीशा तब फिर गांव की एक दूकान पर गया। वहां से कुछ जई का चून लिया। नमक, दाल और तेल ले लिया। एक कुल्हाड़ी भी कहीं से खोज ली और काटकर लकड़ी जमा की। फिर आग जलाई। लड़की भी आकर उसमें मदद देने लगी। उपरांत उन्होंने खाना तैयार किया और भूखे जनों को खिलाया।

(५)

उस आदमी ने तो नाममात्र खाया। बुढ़िया ने भी कम ही खाया। पर बच्चों ने तो बरतन को चाटकर साफ कर दिया। फिर वे दोनों बालक आपस में गलबाहीं डाले गुड़ी-मुड़ी होकर सो गये।

उस वक्त बुढ़िया स्त्री और उस आदमी ने एलीशा को अपने दुःख की सारी कथा सुनाई कि कैसे उनकी यह दशा हुई। बोले—"गरीब तो हम पहले ही थे। पर इस साल के सूखे ने मुसीबत ला दी। जो जमा था कठिनाई से सर्दी तक चला। जाड़ों के दिन आते-आते यह नौबत हुई कि पड़ौसी से या जिस-तिस से मांगकर काम चलाना पड़ा। पहले तो उन्होंने दिया, पीछे वे भी इन्कार करने लगे। चाहते थे कि दें, पर देने को उनके

गस होता नहीं था। और हमें भी मांगते शर्म आती थी। सो कर्ज में हम गले तक डूबते गये। एक-एक कर सबका लेना हम पर हो गया। किसीका पैसा चाहिए था तो किसीका नाज वाजिब था और किसी तीसरे की और कोई चीज उधार चढ़ गई थी।

"ऐसी हालत होने पर", आदमी बोला, "मैं काम की तलाश में लगा, पर कोई काम नहीं मिला। पेट रखने जितना नाज मिल जाय, तो उसी मजूरी पर काम करने के लिए बेतादाद लोग तैयार थे; और कभी कुछ काम मिला भी तो, अगले दिन फिर खाली। फिर और काम ढूंढो। मैं इस चक्कर में बीत चला। बुढ़िया और लड़की ने उधर कहीं दूसरी जगह जा भीख मांगना शुरू कर दिया था। पर कभी वेखाये, तो कभी अधपेट, जीते ही गये। आस थी अगली फसल आने तक ज्यों-त्यों चले चलें तो फिर देखा जायगा। पर पतझड़ आनेतक तो हमें भीख में कुछ भी मिलना बन्द हो गया। ऊपर से बीमारी ने आ पकड़ा। हालत बद से बदतर होती गई। आज कुछ मिल जाता, तो दो दिन फाके के होते। आखिर घास खाकर हम लोग तन रखने लगे। मालूम नहीं घास की वजह थी कि क्या, मेरी बीबी बीमार पड़ गई। टांगों पर उससे चला नहीं जाता, न खड़ी रह पाती है। मेरा भी दम छीन होता गया। और मदद कहीं कोई दीखती नहीं...।"

"तो भी" बुढ़िया बोली, "मैं कुछ बची थी। पर निराहार काया कबतक चलती। आखिर मैं भी गिरती गई। यह लड़की दुबला गई और डरी-सहमी-सी रहने लगी। मैं कहती कि जा, पड़ोसियों से कुछ मांग-तांग ला! पर वह घर से बाहर न जाती और कोने में सरककर गुमदुबक बैठ जाती। अभी परसों एक पड़ोसन यहां पर झांकने आई। पर यहां का हाल देख उल्टे पांव चली गई। देखा कि यहां तो खुद सब बीमार और भूखे पड़े हैं। असल में उसके आदमी ने कहा था कि जा, कहीं से इन नन्हों के मुंह डालने के लिए तो कुछ ला। सो उस आस में बेचारी आई थी। पर हम पहले ही यहां मौत की बाट देखते पड़े थे।"

उनकी यह दुःख-कथा सुनी तो एलीशा ने उस रोज जाने और अपने साथी का संग पकड़ने का विचार छोड़ दिया। रात वह वहीं रहा। अगले

सबेरे अंधेरे-दम उठा और घर का काम-धाम सहारने लगा। काम में वह ऐसे अनायास लग गया कि उसीका घर हो। आग जलाई और आटा गूंधा। बुढ़िया उसका साथ देती जाती थी। फिर वह लड़की को साथ लेकर पास-पड़ोस से जरूरी चीज-बस्त लेने चला। क्योंकि घर में कुछ था नहीं, नाज पाने में सब कुछ बिक गया था। न दो बासन रह गये थे, न कोई वस्त्र सो एलीशा जरूरी सामान जुटाने लगा। कुछ अपने पास से मुहय्या हो गया, बाकी खरीदकर ला दिया। सो वहां वह एक दिन रहा, फिर दूसरे दिन, और फिर तीसरे दिन। छोटे बालक में अब वह दम आ गया और एलीशा बैठा होता तो वह सरक-सरककर उसकी गोद में चढ़ जाता। लड़की का चेहरा भी खिल आया और वह हर काम में दौड़कर मदद करने लगी। और जरा बात हो तो झट एलीशा के पास भाग आती। कहती, "दादा, ओ दादा!"

बुढ़िया में भी अब ताकत आती जाती थी और पास-पड़ोस में अब घूम आ सकती थी। आदमी के बदन में भी बल आ रहा था और दीवार का सहारा लेकर अब वह चल-फिर सकता था। बस उसकी बीबी चंगी होने में नहीं आ रही थी। लेकिन तीसरा दिन होते उसे भी होश हुआ और उसने खाने को मांगा।

एलीशा सोचने लगा कि रास्ते में इतना वक्त बरबाद हो जायगा, इसका भला क्या पता था। चलो, अब बढ़ना चाहिए।

(६)

चौथा रोज ईस्टर के व्रत-पर्व का आखिरी रोज था। वह रोज उपवास के पारण का दिन होता और लोग खा-पी कर खुशी मनाते हैं। एलीशा ने सोचा कि इस दिन को तो यहीं इन्हीं लोगों के साथ मुझे गुजारना चाहिए। जाकर दूकान से इनके लिए कुछ ला-लू दूंगा और त्यौहार के आनंद में साथ दूंगा। फिर निबटकर शाम को अपनी राह चल दूंगा।

यह सोचकर एलीशा गांव में गया और दूध-सेवई का इंतजाम किया और घर पहुंचकर अगले रोज के त्यौहार की तैयारी में मदद देने लगा। कहीं कुछ उबल रहा है तो कुछ सिक रहा है। पर्ववाले दिन एलीशा गिरजे गया। आकर तब सबके संग-साथ में उपवास तोड़ा और जीमन किया। उस

रोज बीबी भी उठकर कुछ-कुछ टहलने लायक हो आई थी और पति ने हजामत की और बुढ़िया ने धोकर कुर्ता नया कर रक्खा था सो पहना। तब वह गांव के महाजन के पास क्षमावनी मांगने गया। जमीन और चरागाह उनकी उसी महाजन के यहां गिरवी रक्खी थी। वह कहने गया था कि महाजन, खेत और जमीन बस एक फसल के लिए दे दो। लेकिन शाम को लौटा तो बड़ा उदास था। आकर वह आंसू गिराने लगा। असल में महाजन ने कोई दया नहीं दिखलाई थी। सीधे कह दिया था कि पहले मेरा रुपया दो।

एलीशा इसपर फिर सोच-विचार में पड़ गया। मन में बोला कि अब ये लोग रहेंगे कैसे? और जने काटकर घास तैयार करेंगे तब ये क्या काटेंगे? इनकी जमीन तो गिरवी रखी है। जई पकने के दिन आये। और फिर इस साल देखो धरती-माता ने फसल में क्या धन-धान उगला है; पर दूसरे लोग कटाई कर रहे होंगे और इन बेचारों के पास कुछ भी नहीं। उनकी तीन एकड़ जमीन महाजन के ताबे है। सो मेरे पीछे इन बेचारों की दशा वैसी ही न हो जायगी जैसी आनेपर मैंने देखी थी?

सोचकर एलीशा दुविधा में होगया। आखिर तय किया कि आज शाम न जाऊं, कलतक और ठहर जाऊं। यह विचार पक्का करके रात में सोने को वह ओसारे में गया और प्रार्थना करके बिछावन पर लेट गया। पर वह सो नहीं सका एक तरफ तो सोचता था कि चलूं, क्योंकि यहां उसका काफी समय और काफी पैसा लग गया था। पर दूसरी तरफ इन लोगों पर उसके मन में करुणा भी आती थी। और··· ।

मन में बोला—"इसका तो कोई अंत ही नहीं दीखता है। पहले तो मैंने ही सोचा था कि लाकर इन्हें पानी दिए देता हूं और यह पासकी रोटी। तब क्या जानता था कि बात ऐसी बढ़ जायगी। लो, अब तो खेत और चराई की धरती को गिरवी से छुड़ाने की बात सामने आ गई है। यह किया तो फिर उनको गाय भी लेकर देनी होगी। फिर एक घोड़ा भी चाहिए जिससे गाड़ी में लान-वान ढोया जा सके। वाह दोस्त एलीशा, तुमने तो गले में यह अच्छा फंदा डाल लिया है। अपनी सुध बिसार तुम तो खासे गड़बड़ झाले में पड़ गये हो।" यह सोचता हुआ एलीशा उठा और सिरहाने-

से कोट निकाल, तह खोल, अपनी सुंघनी की डिबिया बाहर की और उसमें से एक नक्की ली। सोचता था कि सुंघनी से मदद मिलेगी और झमेला कटकर मन के खयाल साफ होने में आयेंगे।

लेकिन कहां ? बहुतेरा सोचा, बहुतेरा विचारा। पर निश्चय न होता था एक मन होता कि चल देना चाहिए। पर दया रोक लेती थी। उसे सूझ न पड़ती थी कि करूँ तो क्या ! कोट की तहकर आखिर फिर उसने सिरहाने ले लिया। ऐसे बहुत देर पड़ा रहा। होते-होते मुर्गे की पहली बांग उसे सुनाई दी। तब उसकी पलकों पर नींद उतरने लगी। पर सो न पाया होगा कि उसे ऐसा लगा कि किसी ने उठा दिया है। देखा, तो वह सफर के लिए तैयार है, बकचा कमर पर कसा है, हाथ में लाठी लिये है। बाहर दरवाजा भी इतना खुला है कि वह तरकीब से चुपचाप निकल जा सकता है। वह निकलकर जा ही रहा था कि कमर के बकचे के बंध एक तरफ तार में हिलग गये। वह उसे छुड़ाने में लगा कि इतने में दूसरी तरफ बायें पैर की पट्टी अटक गई और खिचकर खुलने लगी। आखिर उचककर बकचे को उसने ठीक कमर पर लिया, पर देखता क्या है कि तार ने उसे नहीं हिलाया, बल्कि छोटी लड़की उसे पल्ले से पकड़े हुए है। कह रही है—

"दादा, रोटी ! दादा,रोटी !"

फिरकर पैर की तरफ जो उसने देखा तो क्या देखता है कि छोटा बच्चा उसके पांव की पट्टी को पकड़े हुए है। और बराबर की खिड़की में से बुढ़िया और घर का मालिक वह आदमी, दोनों जने उसे जाते देख रहे हैं।

एलीशा इस पर जग आया। उठकर अपने आपसे ऐसे बोलने लगा कि दूसरा भी सुन ले। कहने लगा कि कल मैं उनके खेत उन्हें छुड़ा दूंगा और एक घोड़ा ले दूंगा। बच्चों के लिए एक गाय और फसल आनेतक के लायक नाज भी भर दूंगा। नहीं तो मैं उधर समंदर पार भगवान को पाने जाऊँ, तो कहीं ऐसा न हो कि अंदर के भगवान को ही मैं खो बैठूँ।

इस विचार के बाद एलीशा अपनी गाढ़ी नींद सो गया, तड़का फूटने-पर उठा। अध-सवेरे ही उठ महाजन के पास जाकर उसने चराई की धरती और खेती की जमीन दोनों को पैसा चुकाकर छुड़ा लिया। फिर एक दरांत

ली। (क्योंकि अकाल में यह भी काम आ गई थी) और उसे साथ लेकर घर लौटा। आकर आदमी को तो कटाई करने भेजा और खुद फिर गांव की तरफ चला। वहां पता लगा कि चौपाल पर एक गाड़ी-घोड़ा बिकाऊ है। मालिक से भाव-सौदा करके उसने दोनों खरीद लिये। फिर एक बोरा नाज भी ले लिया और उसे गाड़ी में रखवा लिया। उसके बाद गाय की तलाश में चला जा रहा था कि दो औरतें मिलीं। आपस में बात बतलाती जा रही थीं। वे अपनी भाषा में बोल रही थीं, तो भी एलीशा समझ सका कि वे क्या कह रही हैं।

"अरी, पहले तो वे समझे नहीं कि कौन है। सोचा, आता-जाता होगा कोई भला-मानस। पीने को पानी मांगता आया था कि फिर वह वहीं रह गया बहिन, सुना कुछ, क्या-क्या सामान उनके लिए उसने ले डाला है। रामदुहाई, कहते हैं कि एक घोड़ा और एक गाड़ी तो अभी सबेरे ही चौपाल में उसने मोल लिये हैं। ऐसे आदमी दुनिया में विरले मिलते हैं। चलती हो, चलो उन पुण्यात्मा के दर्शन ही करें।"

एलीशा सुनकर समझ गया कि यह उसीकी तारीफ की जा रही है। सुनकर वह आगे गाय लेने नहीं गया। लौटा, चौपाल पर आया, दाम चुकाये और गाड़ी जोतकर घर आ गया। गाड़ी से उतरा तो घर के लोगों को घोड़ा-गाड़ी देखकर बड़ा अचंभा हुआ। उन्होंने सोचा तो कि कहीं सब यह उन्हीं के वास्ते न हो,—पर पूछने की हिम्मत नहीं हुई। इतने में आदमी घर का दरवाजा खोल बाहर आया। बोला—"दादा, यह घोड़ा कहां से ले आये ?"

एलीशा ने कहा, "अजब सवाल करते हो। खरीदे लिये आ रहा हूं, नहीं तो सस्ता बिका जाता था। अच्छा,जाओ और काटकर घास नांद में डाल दो कि रात को इसके लिये हो जाय। और गाड़ी में से यह बोरा भी उतार लो।"

आदमी ने घोड़ा खोल लिया और बोरा नाज का कोठे में ले गया। फिर घास काटकर नांद में डाल दी। आखिर निबट-निबटा सब जने अपने सोने चले गये। एलीशा आज रात सोने के लिए बाहर रास्ते से लगे ओसारे में

आ रहा था। उस शाम उसने अपना बकचा भी पास ले लिया। सब-के-सब सो गये थे, उस वक्त वह उठा। बकचा अपना संभाला और कमर पर कस लिया। पट्टियां टांगों से बांध लीं, कोट पहन लिया और जूते चढ़ा आगे राह पर एफिम को पकड़ने बढ़ लिया।

(७)

एलीशा कोई तीन मील से ऊपर चलते चला गया होगा कि चांदनी होने लगी। तब एक पेड़ के नीचे उसने बकचा खोला और पास के पैसे गिने। कुल सात रुपये और पांच आने के पैसे बचे थे।

सोचने लगा कि उतने पैसे लेकर समंदर पार की यात्रा की सोचना वृथा है। अगर भीख मांगकर यात्रा पूरी करूं तो उससे तो न जाना अच्छा है। एफिम मेरे बिना भी येरुशलम पहुंच ही जायंगे और मंदिर में वहां मेरे नाम का भी एक दिया रख देंगे। और मेरी बात पूछो तो इस जन्म में अपना प्रण पूरा करने को मुझे अब क्या मौका मिलेगा। बड़ा शुक्र है कि प्रण और संकल्प मैंने मालिक के सामने ही किये थे जो दयासागर हैं और पापियों के पाप माफ कर देते हैं।

एलीशा उठा, झटककर फिर अपना बकचा कमर पर लिया, और वापिस मुड़ चला। वह यह नहीं चाहता था कि कोई उसे पहचान ले। सो गांव को बचाने के लिए चक्कर लेकर वह अपने देश की तरफ तेज चाल चल दिया। घर की तरफ जाते इस बार वही रास्ता उसे हलका लगा जो पहले कठिन मालूम हुआ था। पहले एफिम का साथ पकड़े रहने में मुश्किल होती थी, अब ईश्वर की दया से लंबी राह चलते उसे थकान न आती थी। चलना बालक का खेल-सा लगता था। लाठी हिलाता, एक दिन में चालीस-से पचास मील तक आसानी से नाप लेता था।

देश अपने घर जाकर पहुँचा तो फसल हो चुकी थी। कुनबे के लोग उसे वापिस आया पाकर बहुत खुश हुए। सब पूछने लगे कि क्या हुआ, कैसे बीती, कैसे पीछे और अकेले रह गये। येरुशलम जाये बिना क्यों लौट आये? पर एलीशा ने उनको कुछ कहा नहीं। इतना ही कहा कि भगवान की इच्छा नहीं थी कि मैं वहां पहुँचूं। सो राह में मेरा पैसा जाता रहा और

ली। (क्योंकि अकाल में यह भी काम आ गई थी) और उसे साथ लेकर घर लौटा। आकर आदमी को तो कटाई करने भेजा और खुद फिर गांव की तरफ चला। वहां पता लगा कि चौपाल पर एक गाड़ी-घोड़ा बिकाऊ है। मालिक से भाव-सौदा करके उसने दोनों खरीद लिये। फिर एक बोरा नाज भी ले लिया और उसे गाड़ी में रखवा लिया। उसके बाद गाय की तलाश में चला जा रहा था कि दो औरतें मिलीं। आपस में बात बतलाती जा रही थीं। वे अपनी भाषा में बोल रही थीं, तो भी एलीशा समझ सका कि वे क्या कह रही हैं।

"अरी, पहले तो वे समझे नहीं कि कौन है। सोचा, आता-जाता होगा कोई भला-मानस। पीने को पानी मांगता आया था कि फिर वह वहीं रह गया बहिन, सुना कुछ, क्या-क्या सामान उनके लिए उसने ले डाला है। रामदुहाई, कहते हैं कि एक घोड़ा और एक गाड़ी तो अभी सबेरे ही चौपाल में उसने मोल लिये हैं। ऐसे आदमी दुनिया में बिरले मिलते हैं। चलती हो, चलो उन पुण्यात्मा के दर्शन ही करें।"

एलीशा सुनकर समझ गया कि यह उसीकी तारीफ की जा रही है। सुनकर वह आगे गाय लेने नहीं गया। लौटा, चौपाल पर आया, दाम चुकाये और गाड़ी जोतकर घर आ गया। गाड़ी से उतरा तो घर के लोगों को घोड़ा-गाड़ी देखकर बड़ा अचंभा हुआ। उन्होंने सोचा तो कि कहीं सब यह उन्हीं के वास्ते न हो,—पर पूछने की हिम्मत नहीं हुई। इतने में आदमी घर का दरवाजा खोल बाहर आया। बोला—"दादा, यह घोड़ा कहां से ले आये?"

एलीशा ने कहा, "अजब सवाल करते हो। खरीदे लिये आ रहा हूं, नहीं तो सस्ता बिका जाता था। अच्छा,जाओ और काटकर घास नांद में डाल दो कि रात को इसके लिये हो जाय। और गाड़ी में से यह बोरा भी उतार लो।"

आदमी ने घोड़ा खोल लिया और बोरा नाज का कोठे में ले गया। फिर घास काटकर नांद में डाल दी। आखिर निबट-निबटा सब जने अपने सोने चले गये। एलीशा आज रात सोने के लिए बाहर रास्ते से लगे ओसारे में

आ रहा था। उस शाम उसने अपना बकचा भी पास ले लिया। सब-के-सब सो गये थे, उस वक्त वह उठा। बकचा अपना संभाला और कमर पर कस लिया। पट्टियां टांगों से बांध लीं, कोट पहन लिया और जूते चढ़ा आगे राह पर एफिम को पकड़ने बढ़ लिया।

(७)

एलीशा कोई तीन मील से ऊपर चलते चला गया होगा कि चांदनी होने लगी। तब एक पेड़ के नीचे उसने बकचा खोला और पास के पैसे गिने। कुल सात रुपये और पांच आने के पैसे बचे थे।

सोचने लगा कि उतने पैसे लेकर समंदर पार की यात्रा की सोचना वृथा है। अगर भीख मांगकर यात्रा पूरी करूं तो उससे तो न जाना अच्छा है। एफिम मेरे बिना भी येरुशलम पहुंच ही जायंगे और मंदिर में वहां मेरे नाम का भी एक दिया रख देंगे। और मेरी बात पूछो तो इस जन्म में अपना प्रण पूरा करने को मुझे अब क्या मौका मिलेगा। बड़ा शुक्र है कि प्रण और संकल्प मैंने मालिक के सामने ही किये थे जो दयासागर हैं और पापियों के पाप माफ कर देते हैं।

एलीशा उठा, झटककर फिर अपना बकचा कमर पर लिया, और वापिस मुड़ चला। वह यह नहीं चाहता था कि कोई उसे पहचान ले। सो गांव को बचाने के लिए चक्कर लेकर वह अपने देश की तरफ तेज चाल चल दिया। घर की तरफ जाते इस बार वही रास्ता उसे हलका लगा जो पहले कठिन मालूम हुआ था। पहले एफिम का साथ पकड़े रहने में मुश्किल होती थी, अब ईश्वर की दया से लंबी राह चलते उसे थकान न आती थी। चलना बालक का खेल-सा लगता था। लाठी हिलाता, एक दिन में चालीस-से पचास मील तक आसानी से नाप लेता था।

देश अपने घर जाकर पहुँचा तो फसल हो चुकी थी। कुनबे के लोग उसे वापिस आया पाकर बहुत खुश हुए। सब पूछने लगे कि क्या हुआ, कैसे बीती, कैसे पीछे और अकेले रह गये। येरुशलम जाये बिना क्यों लौट आये? पर एलीशा ने उनको कुछ कहा नहीं। इतना ही कहा कि भगवान की इच्छा नहीं थी कि मैं वहां पहुँचूं। सो राह में मेरा पैसा जाता रहा और

साथी का साथ छूटकर मैं पीछे पड़ गया। भगवान मुझे माफ करेंगे और आप लोग भी माफ करें।

इतना भर कहकर जो पैसा बचा था सब अपनी बुढ़िया बीबी के हाथों में दे दिया। फिर घर-बार के हाल-अहवाल पूछे। सब ठीक-ठीक चल रहा था। काम सबने पूरा किया था। किसी ने कोर-कसर नहीं की थी और सब जने मेल और शांति से रहे थे।

उसी दिन एफिम के घर के लोगों को भी उसके लौटने की खबर मिली। वे भी अपने दादा की खबर लेने आये। उनको भी एलीशा ने यही जवाब दिया।

कहा—"एफिम तेज चलते हैं। संत पीटर के पर्व के दिन से तीन रोज इधर मेरा उनका साथ छूट गया सोचता था मैं फिर साथ पकड़ लूंगा। लेकिन ईश्वर का चाहा होता है। मेरा पैसा जाता रहा और फिर आगे बढ़ने लायक मैं नहीं रहा। सो अधबीच से लौट आया।"

लोग अचरज करते थे कि ऐसे समझदार आदमी होकर उन्होंने क्या यह मूरखपने की बात की। चलने को चल पड़े; पर जाना था वहां पहुंचे नहीं और रास्ते में ही सब पैसा फूंक दिया। कुछ काल तो वे इस पर विस्मय में रहे। फिर धीरे-धीरे सब भूल चले। एलीशा के मन से भी सब बिसर गया। वह अपने घर के काम-धंधे में लग गया। अपने बेटे की मदद से जाड़ों के लिए लकड़ी काट कर भर ली। औरतों ने और सबने मिलकर नाज गाह रक्खा, फिर बाहर के छप्पर को ठीक कर लिया। मक्खियों के छत्तों को छा दिया और पड़ोसी को उसने वे दस छत्ते दे दिये जो बेचे थे उसपर जितना मधु-मुहाल आया, सब-का-सब ईमानदारी से पड़ोसी की तरफ कर दिया। बीबी ने कोशिश भी की कि न बताऊं कि इन छत्तों पर से कितने मधु-मुहाल हुए हैं। लेकिन एलीशा सब जानता था कि कौन छत्ते फले हैं, कौन नहीं। सो दस की जगह पड़ोसी को सत्रह भरे छत्ते मिले। जाड़ों की सब तैयारी करके उसने लड़के को काम तलाश करने दिया। खुद मधु-मक्खी के कोटर तैयार करने और लकड़ी की खड़ाऊं वगैरह बनाने के काम में जुट गया।

(८)

एलीशा उधर पीछे गांव में रह गया था तो उस दिनभर एफिम ने राह में उसका इंतजार देखा। आगे कुछ ही कदम चलने पर वह बैठ गया था। बाट देखता बैठा रहा, बैठा रहा। झोंक आई और एक नींद वह सो भी लिया। उठकर फिर बाट जोहने लगा। लेकिन उसका साथी नहीं लौटा। बाट देखते उसकी आंखें दुख आईं। उस पेड़ के पीछे सूरज डूबने लग रहा था, पर एलीशा का उस सड़क पर न अता दीखता था न पता।

एफिम ने सोचा—"शायद हो कि इसी रास्ते वह मुझसे आगे निकला चला गया हो। क्या पता किसी ने अपनी गाड़ी पर बिठा लिया हो, मैं सो रहा हूं तभी बिना मुझे देखे आगे बढ़ता गया हो। लेकिन ऐसा हो कैसे सकता है कि मैं उसे न देखूं। यहां तो पट पर मैदान में दूर-दूर तक साफ दीखता है। चलूं, लौट कर देखूं। लेकिन जो कहीं वह आगे बढ़ गया होगा तब तो फिर ऐसे हम दोनों बिछुड़ ही जायंगे और कोई किसी को न मिलेगा। सो अच्छा है मैं चला ही चलूं। रात को जहां पड़ाव होगा, वहां तो आखिर दोनों मिलेंगे ही।"

सो चलते-चलते गांव आया। वहां उसने चौकीदार से कहा कि इस-इस शकल का कोई मेरी उमर का आदमी चलता हुआ आयगा, तो उसे जहां मैं ठहरा हूं वहीं ले आना। लेकिन एलीशा उस रात भी नहीं आया। एफिम अकेला आगे बढ़ा। राह में जो मिलते सबसे पूछता कि नाटे कद का सिर साफ, बूढ़ी उमर का कोई मुसाफिर तो तुमने नहीं देखा है? पर किसी ने उसे नहीं देखा था। एफिम को अचरज होता और अकेला आगे बढ़ लेता। सोचा कि आखिर ओडेसा पहुंचकर तो हम दोनों मिलेंगे ही। नहीं तो जहाज पर मुलाकात पक्की हैं। यह सोच उसने फिर उस बाबत सब फिकर छोड़ दी।

चलते-चलते रास्ते में उसे एक यात्री मिला जो एक लंबी कफनी पहने था। बाल बड़े थे और सिर पर ऐसी टोपी थी जैसे उपदेशक हो। वह थौसके तीरथ की यात्रा से आता था और दूसरी बार येरुशलम धाम को जा रहा था। वे दोनों रात एक ही जगह ठहरे थे, सो वहां मिल गये।

फिर तो साथ-ही-साथ वे चलने लगे।

ओडेसा दोनों कुशलपूर्वक पहुंच गये। वहां जहाज के लिए तीन दिन बाट देखने में रुकना पड़ा। जगह-जगह और दूर-दूर से और बहुत-से यात्री भी उसी तरह जहाज की प्रतीक्षा में थे। वहां फिर एलीशा के बारे में एफिम ने पूछताछ की पर किसीसे कुछ पता नहीं मिला।

एफिम ने वहां फिर पास पर सही कराई, जिसकी फीस पांच रुपये बैठी। चालीस रुपये में येरुशलम का वापिसी टिकट मिला। सफर के लिए खाने-पीने के लिए सामान भी साथ खरीदकर उसने रख लिया।

साथ के यात्री ने तरकीब बताई कि किस तरह बिना पैसे भी जहाज पर जाना हो सकता है। लेकिन एफिम ने उधर ध्यान नहीं दिया। बोला, "मैं खर्च के लिए तैयार होकर आया हूं। सो मैं तो पैसा देकर चलूंगा।"

जहाज की सवारियां पूरी हो गईं और सब यात्री उसपर आ रहे। एफिम और उसके साथी भी उसमें थे। लंगर उठा और जहाज समंदर में बढ़ लिया।

दिन भर तो मजे में चलता गया। पर रात हवा कुछ तेज उठ आई। पानी पड़ने लगा और जहाज डगमग-डगमग होने लगा। लोग डर गये। स्त्रियां चीखने-चिल्लाने लगीं और आदमियों में जो कमजोर थे, वे भी बचत की जहां-तहां जगह ढूंढ़ते भागने लगे। डर एफिन को भी लगा, लेकिन उसने जाहिर नहीं किया। डेक पर जहां पहले जमकर बैठ गया था वहीं बैठा रहा। वहां पास टांबो के और लोग भी बैठे थे। सो तमाम दिन और तमाम रात वे सब जने अपने-अपने थैले या बक्स से लगकर चिपके हुए चुपकी मार बैठे रहे। तीसरे दिन जाकर हवा थमी। समंदर शांत हो आया और पांचवें दिन जहाज कुस्तुनतुनिया बंदर पर जा लग गया। कुछ लोग उतरकर संत-सोफिया के गिरजा के, जो तुर्कों के अधिकार में था, दर्शन करने उतर गये। और लोग तो गये; लेकिन एफिम जहाज पर ही रहा। उसने तो बस किनारे से ही कुछ रोटी खरीदकर कनात मानी। जहाज वहां चौबीस घंटे रहा और फिर आगे बढ़ा। फिर समर्ना बंदर पर वह ठहरा। उसके बाद अलेक्जेंड्रीया। आखिर सब लोग सकुशल जाफा बंदर पर आ पहुंचे। वहां सब

यात्रियों को उतरना था। अभी यहां से भी येरुशलम पक्की सड़क चालीस मील से कुछ ऊपर ही था। जहाज से उतरते भी लोगों को बड़ा डर लगा। जहाज ऊंचा था और नाव इतनी नीची कि जैसे नाव में एक-एक करके वे लोग उतरे क्या गिराये जाते थे। और नीचे पानी में खड़ी नाव इससे बड़ी डगमगाया करती थी। यह भी डर था कि जरा कुछ हो जाय कि नाव में तो आदमी पहुंचे नहीं और पानी में गिर जाय! दो-एक आदमी इस तरह गिरकर भीगे भी। खैर, आखिर जैसे-तैसे सब लोग सकुशल किनारे पहुँचे गये।

वहां से ये पांव-पांव चले और तीसरे दिन दुपहरी के वक्त येरुशलम पहुँच गये। शहर के बाहर रूस के लोगों के लिए एक जगह बनी थी, वहां सब जने ठहरे। सबके पासों पर वहां भी सही की गई। फिर खा-पीकर एफिम अपने उस यात्री के साथ तीर्थ-धाम देखने निकला। पर मंदिर खुलने का यह समय नहीं था सो वे धर्माचार्य के रहने की जगह चले गये। वहां सब-के-सब यात्री जमा थे। स्त्री अलग और पुरुष अलग, सबको दो घेरों में बैठाया गया था। जूते बाहर छोड़ने को कह दिया था और सब वहां नंगे पैर थे। बैठने के बाद एक साधु, जिनके कंधे पर तौलिया था और साथ-साथ जल। उन्होंने अपने हाथों से सबके पांव धोये। तौलिये से पोंछ और माथा नवा कर सबके चरन छुए। घेरों में बैठे हर स्त्री-पुरुष के साथ उन्होंने ऐसा किया। औरों में एफिम के पैर भी धोये और माथे छुये गये थे। सो सबेरे-शाम प्रभु-कीर्तन में एफिम शामिल हुए, प्रार्थना की और वेदी पर, अपना दीपक जलाकर रखा। अपने मां-बाप के नाम की, लिपि लिखकर पुरोहित को दी कि उसके नाम भी धर्म-प्रार्थना के बीच ले लिये जायं। धर्माचार्य के यहां सब यात्रियों को खाने-पीने को भी दिया गया। अगले सबेरे मिस्र की मरियम माता की गुहा देखने वे लोग गये। वहां ही माता मरियम ने तपस्या की थी। वहां भी उन्होंने दीप जलाये और स्तुति पढ़ी। वहां से हजरत इब्राहीम के मठ में गये और वह जगह देखी जहां हजरत, परमात्मा की भेंट-स्वरूप, अपने पुत्र को मारने को तैयार हो गये थे। फिर वह स्थान देखा जहां मरियम मगदालिन को प्रभु ईसा के दर्शन मिले थे। जेम्स का चर्च

भी उन्होंने देखा। इस तरह साथ के यात्री ने एफिम को ये सभी स्थान दिखाये। वह बताते भी गये कि कहां क्या चढ़ाना चाहिए। दोपहर बीते वे अपने स्थान पर लौटे और भोजन किया। उसके बाद लेटकर आराम करने की तैयारी कर रहे थे कि साथ का यात्री चीखने-चिल्लाने लगा और अपने सब कपड़े फेंक-बिखेरकर टटोलने लगा। बोला—"मेरा बटुआ किसी ने चुरा लिया है। उसमें तेईस रुपये थे। दो तो दस-दस के नोट थे, बाकी खरीज।"

वह यात्री झींकता-रोता रहा, पर रंज मनाने से क्या होता था। कोई और चारा नहीं था। सो फिर चुपचाप अपनी जगह ही वह जा लेटा और नींद लेने की कोशिश करने लगा।

(६)

बराबर में एफिम पड़ा हुआ था। उस समय उसके मन में विकार हो आया।

वह सोचने लगा कि इसका किसी ने कुछ चुराया नहीं मालूम होता। सब झूठ-मूठ की बात है। जान पड़ता है उसके पास था ही कुछ नहीं। देखो न, कहीं जो पैसा उसने दिया हो। जहां देना होता, पट्ठा मुझसे ही दिलवाता। और हां, मुझ से एक रुपया भी तो उधार ले रक्खा है!

यह खयाल आना था कि एफिम ने मन की लगाम खींची। अपने को झिड़ककर कहा कि दूसरे आदमी के दोष देखने का मुझे क्या हक है। यह तो पाप की बात है। नहीं, मैं उसके बारे में और खयाल नहीं लाऊंगा। पर जैसे ही मन और तरफ फेरा कि छूटकर फिर वह वहीं अपने साथी की बात पर पहुंच जाता था। उसे खयाल होता कि देखो, पैसे का वह कैसा नदीदा है। और जब चिल्ला रहा था कि मेरा बटुआ चोरी चला गया है तो आवाज उसकी कैसी खोखली और नकली मालूम होती थी।

सो फिर सोचा कि नहीं जी, उसके पास पैसा-वैसा कुछ था ही नहीं। झूठ-मूठ की बात है।

सांझ को दोनों जने उठे और बड़े मंदिर में संध्या की आरती में शामिल हुए। साथ का यात्री एफिम से लगा-लगा ही चल रहा था। हर कहीं कंधे के पास दीखता। मंदिर में आये, जहां बहुत से यात्री थे। रूसी थे, उसी भांति

और बहुतेरे देशों के लोग थे। ग्रीक के, अरमीनिया के, तुर्किस्तान के, सीरिया के। एफिम भी उनके साथ मंदिर के तोरणद्वार में से दाखिल हुआ। पुजारी उन्हें तुर्की संतरियों के पास से होकर मंदिर के दालान में उस जगह ले गया, जहां ईशु-मसीह को क्रूस से उतारा गया था और उनकी देह का अभिषेक हुआ था। वहां बड़े-बड़े नौ शमादान रक्खे थे और बत्तियां जल रही थीं। पुजारी ने उनको सब दिखाया और बताया। एफिम ने अपने नाम का भी एक दीपक वहां रक्खा। फिर पुजारी सीढ़ियां चढ़कर सीधे वहां उन्हें ले गया जहां मसीह का सलीब खड़ा था। एफिम ने वहां झुककर इबादत की। फिर वह जगह उन्हें दिखाई जहां धरती पाताल तक फट गई थी। फिर वह स्थान देखा जहां मसीह के हाथ और पैर कीलों से ठोंककर सलीब में जड़े गये थे। फिर आदम-की दरगाह देखी जहां मसीह की देह से खून चूकर उस पर गिरा था। फिर वह पत्थर देखा जहां मसीह बैठे थे और सिर पर उनके कांटों का ताज चढ़ाया गया था। फिर वह खंभा दिखाया, जहां प्रभु को बांध कर बेंत लगाये थे। फिर पत्थर पर मसीह के चरण चिन्ह के दर्शन किये। और आगे भी कुछ देखने को था कि तभी भीड़ में सनसनी पड़ी और लोग मन्दिर के भीतर आंगन की तरफ भागने लगे। वहां एक पूजा हो चुकी, अब दूसरे कीर्तन का आरम्भ था। एफिम भी भीड़ के साथ पत्थर की चट्टान में कटे मसीह के ताबूत की तरफ बढ़ा चला।

वह साथ के यात्री से पीछा छुड़ाना चाहता था। मन-मन में उसके बारे में बुरे भाव उसमें आ रहे थे। उसे इस बात का चेत था। लेकिन यात्री साथ नहीं छोड़ता था। पास-ही-पास लगा हुआ वह भी ताबूत तक आया। वे बढ़कर आगे की पंगत में पहुंचना चाहते थे। लेकिन अब नहीं हो सकता था, वे बिछुड़ गये थे। भीड़ इतनी थी कि न आगे हिलना बन सकता था, न पीछे जाना मुमकिन था। एफिम अपने सामने निगाह रक्खे मन में दुआ दोहरा रहा था। रह-रहकर अपने बटुए की संभाल भी कर लेता था। चित्त उसका दो तरफ बंटा था। कभी तो सोचता कि यात्री ने उसके साथ छल किया है। पर फिर खयाल होता कि कौन जाने वह सच ही बोलता हो और सचमुच बटुआ उसका चोरी गया हो। आखिर मेरे ही साथ ऐसा हो सकता है कि नहीं।

(१०)

ताबूत के ऊपर छत्तीस शमादान जल रहे थे। वेदी छोटी थी और एफिम उधर ही निगाह जमाये खड़ा था। औरों के सिर के ऊपर से निगाह ऊंची कर वह सामने देख रहा था कि कुछ उसे दीखा और वह अचंभे में रह गया। उस शमादानों के ठीक नीचे जहां अखंड जोत जल रही थी, सब के आगे की पंक्ति में देखता क्या है कि एक बूढ़ी उमर का आदमी बड़ा-सा कोट पहने वहां खड़ा है। सिर बालों से साफ चमकीला चमक रहा है। ऐनमैन वह एलीशा मालूम होता है।

एफिम ने सोचा कि मालूम तो होता है, लेकिन एलीशा हो नहीं सकता। मुझसे आगे भला कैसे वह वहां पहुंच सकता था। हमसे पहले का जहाज तो एक हफ्ता पेश्तर ही छूट गया था। वह तो एलीशा को किसी हालत में नहीं मिल सकता था। रहा हमारा जहाज, सो उसपर तो वह था नहीं, क्योंकि मैंने एक-एक यात्री को देख और पूछ लिया था।

एफिम यह सोच ही रहा था कि वह सामने का वृद्ध पुरुष इबादत में झुका और फिर उठ कर तीन बार तीनों दिशाओं में झुककर उसने सबको नमस्कार किया। पहले तो सामने ईश्वर को नमन किया। फिर दायें-बायें अपने सब भाइयों को। दाईं तरफ मुड़कर जब वह व्यक्ति प्रणाम कर रहा था, उस वक्त एफिम ने साफ-साफ देखा। संदेह की जगह न थी। वह तो एलीशा ही है। वही दाढ़ी, वही भवें। आंखें और नाक वही। सब-का-सब चेहरा वही-का-वही। और कोई नहीं जी, एलीशा ही है।

एफिम को अपने बिछुड़े साथी के मिलने पर बड़ी खुशी हुई। विस्मय भी हुआ कि उसके आगे एलीशा आया तो कैसे?

सोचा कि शाबाश एलीशा। देखो न कैसे वह बढ़ता हुआ ठेठ आगे पहुँच गया है। कोई जरूर साथ लेकर रास्ता बताता उसे आगे ले गया होगा। यहां से निकलकर उसको पाना चाहिए। और यह जो भलामानस यात्री साथ लग गया है, सो इसे छोड़ एलीशा का संग पकड़ना ठीक होगा। उससे शायद मुझे भी आगे पहुंचने की राह मिल जायगी।

एफिम टक सीध में निगाह जमाये रहा कि एलीशा आंख से अलग न

हो जाय। पर कीर्तन पूरा हुआ, भीड़ में हलचल हुई और सब जने तावूत पर माथा टेकने को बढ़ने लगे। इस धक्कम-धक्के में एफिम को फिर भय हुआ कि कहीं ऐसे में बटुआ कोई चुरा न ले। हाथ में उसे दबाये, भीड़ में कोहनी मारता, वह पीछे की ओर बढ़ने लगा। अब तो वह बस किसी तरह बाहर हो जाना चाहता था। बाहर खुले में आया और वहां बहुत काल एलीशा की खोज में रहा। गिरजे के अन्दर देखा। बाहर देखा; आंगन में या धर्मशाला में खाते-पीते, पुस्तक बेचते या सोते उसे बहुत भांति के बहुतेरे आदमी मिले; पर एलीशा कहीं नहीं दीखा। सो एफिम बिना अपने साथी को पाये अपने ठहरने की जगह लौट कर आया। उस शाम साथ का यात्री भी फिर नहीं लौटा। उधार का रुपया बिया चुकाये वह चला गया था और एफिम अकेला पड़ गया था।

अगले दिन एफिम दर्शन को मन्दिर गया। अबकी जहाज पर मिले एक दूसरे बूढ़े यात्री का साथ उसने ले लिया था। मन्दिर में जाकर फिर उसने अगली पंक्तिमें पहुँचने की कोशिश की। लेकिन भीड़ के दबाव में ही रह गया। खैर, वहां एक खंभे के सहारे टिक कर उसने अपनी इबादत पूरी की। पर सामने जो देखता है तो ठीक अखंड ज्योति के नीचे वेदी के ऐन पास सबके आगे खड़ा है कौन?—वही एलीशा। बाहें उसकी पुजारी की भांति वेदी की तरफ फैली हैं और सिर उसका रोशनी में चमचम चमक रहा है।

एफिम ने सोचा कि इस बार तो मैं उसे खोने नहीं दूंगा।

सो धकियाता हुआ वह आगे बढ़ा। लेकिन वहां पहुँचा तो एलीशा वहां नहीं था। अनुमान किया कि चला गया होगा।

तीसरे दिन एफिम फिर दर्शन के लिए आया और देखता क्या है कि मन्दिर में वेदी से लगकर सबसे खास और अगली पवित्र जगह पर सबकी निगाह के बीचोंबीच खड़ा है एलीशा! बाहें फैली हैं और निगाह आकाश की ओर है। जैसे ऊपर उसे कुछ प्रकाश दीख रहा हो। और उसका साफ सिर सदा की भांति चमकीला चमक रहा है।

एफिम ने सोचा कि इस बार तो किसी तरह मैं उसे अपने से जाने नहीं दूंगा। जाकर दरवाजे पर खड़ा हुआ जाता हूं। फिर एक दूसरे को पाये बिना

हम किसी तरह भी नहीं रह सकेंगे।

एफिम गया और दरवाजे से लगकर खड़ा हो गया। ऐसे खड़े-खड़े दोपहर बीत गया। तीसरा पहर बीत चला। हर कोई मन्दिर से जा चुका था। लेकिन एलीशा की मूरत नहीं दीखी, नहीं दीखी।

येरुशलम में एफिम छः हफ्ते रहा और सब धाम देखे। बैथलेहम के दर्शन किये, बेथैनी गया और जार्डन भी देखा। मन्दिर में अपने नाम का दीपक छोड़ा। जार्डन के पवित्र जल की शीशी भरकर साथ में ली और वहां की मिट्टी भी बांध ली। और कुछ मोमबत्तियां भी लीं जिन्हें अखंड ज्योति से छूकर एक बार जगा लिया था। आठ जगह पर उसने अपने नाम की प्रार्थना के अर्थ दान दिया। बस राह खर्च भर को उसने पैसा रक्खा, बाकी सब पुन्न कर दिया। आखिर तीर्थ पूरा कर अपने घर की तरफ वापिस हो लिया। जाफा तक पैदल यात्रा की। वहां से ओडेसा तक जहाज में। और फिर आगे पांव-पांव घर चला।

(११)

जिस राह गया, उसी राह एफिम लौट रहा था। ज्यों-ज्यों घर पास आता, उसपर चिन्ता बढ़ती जाती थी कि पीछे घर के काम-धाम की क्या हालत हुई होगी। कहते हैं न कि एक साल में कितना कुछ नहीं बह जाता। बनाने में जिन्दगी लग जाती है, पर बिगड़ सब छन में सकता है। तो वह सोचता था कि उसके लड़के ने पीछे जाने क्या कुछ करके रक्खा होगा। कैसा मौसम वहां चल रहा होगा। जाड़ों में चौपायों पर कैसी बीती होगी और मकान भी ठीक-ठीक पूरा हुआ होगा कि नहीं। एफिम जब उस देश में आया, जहां पारसाल एलीशा बिछड़ गया था तो गांवों को वह मुश्किल से पहचान सका। हालत अब कुछ-की-कुछ थी। पिछली साल तो नाज के दाने का ठिकाना न था। अब सब खुशहाल थे। फसल ऐसी भरी हुई थी कि क्या कहा जाय। अब सबके घर भर-पुर गये थे और पहली मुसीबत याद भी न आती थी।

एक शाम एफिम ठीक वहां पहुंचा जहां एलीशा रुककर पाछे रह गया था। वहां से पहले घर के पास आना था कि एक लड़की बाहर भागती

आई। सफेद फ्रॉक पहने बड़ी भली लगती थी।

बोली—"दादा, ओ दादा! चलो हमारे घर।"

एफिम अपनी राह बढ़े जाना चाहता था। लेकिन उस नन्हीं नटखट ने जाने न दिया। कोट का छोर पकड़ लिया और हँसती हुई घर की तरफ खींच कर ले चली। वहां छोटा बच्चा लिये एक स्त्री मिली, उसने आवभगत के भाव से कहा कि आइये दादा, कुछ खा न लीजिये और यह रात यहां विश्राम कीजिये।

सो एफिम अन्दर पहुंचा। सोचा कि यहां एलीशा की बाबत पूछकर देखना चाहिए। मैं समझता हूं कि पानी पीने एलीशा इसी घर की तरफ बढ़कर आया था।

स्त्री ने आगे बढ़कर मेहमान का बकचा कंधे पर से उतरवाया और हाथ-मुंह धोने को पानी दिया। फिर मेज पर बिठाकर सामने दूध रक्खा और चपातियां, दलिया वगैरह लाकर दिया। एफिम ने बहुत शुक्रिया माना कि चलते राहगीर पर आप ऐसी दया दिखलाती हैं। एफिम ने उसके इस सत्कार की बहुत तारीफ की।

लेकिन स्त्री ने मानों इन्कार में सिर हिलाया। बोली—"यात्रियों की खातिर करने का तो हमारा धर्म है। और वजह भी है। असल में एक यात्री ही थे, जिन्होंने हमें जीवन में धरम का रास्ता दिखाया। हम ईश्वर को भूलकर रहा करते थे। सो ईश्वर ने हमें ऐसा दंड दिया कि बस मौत ही से बचे। पिछली गरमियों में हालत ऐसी आ गई कि हम सब लोगों को बीमारी ने घेर लिया। बिलकुल बेबस और मोहताज हो गये। खाने को पास दाना नहीं था। वह तो हम मर ही जाते कि ईश्वर के दूत बनकर एक वृद्ध पुरुष हमारी मदद को आ पहुंचे। वह ऐसे ही थे जैसे आप। एक दिन पीने को थोड़ा पानी मांगने आये थे, लेकिन हमारी यह हालत देखी तो उन्हें दया हो आई। फिर हमारे साथ ही कुछ दिन रह गये। उन्होंने हमें खाने को दिया, पीने को दिया और फिर हमें अपने पैरों पर खड़ा किया। धरती हमारी गिरवी से छुड़ा दी और एक गाड़ी-घोड़ा खरीदकर हमको दे दिया।"

इसी समय एक बूढ़ी मां वहां आई और बीच में बात काटकर बोली—

"अजी, हम कैसे कहें कि वह मनुष्य ही थे और ईश्वर के भेजे कोई फरिश्ते नहीं थे। उन्होंने हम सबको प्रेम किया और करुणा की। और गये ऐसे कि हमें नाम भी नहीं बता गए। सो हम यह भी नहीं जानते कि किस के नाम की हम माला फेरें और दुआ करें। वह हालत मेरी आंखों के आगे है। मैं मौत की बाट देखती वहां पड़ी थी, कि आये वह वृद्ध। उनका सिर साफ था। देखने में कोई खास बात नहीं थी। आकर उन्होंने पीने को पानी मांगा। और मैं थी कि मन की पापिनी। सोचने लगी कि जाने यह आदमी किस ताक में यहां आया है। मैं तो ऐसी थी, और देखो कि उन्होंने हमारे साथ क्या किया। ठीक यही जगह जहां तुम बैठे हो, वहीं, बेंच पर, हमें देखते ही अपनी कमर से समान उतार कर रक्खा और खोलने लगे।"

तभी वह लड़की बीच में बोली—"ना दादी, न। पहले तो उन्होंने गठरी यहां बीच में रक्खी थी, कोई बेंच पर थोड़ी रक्खी। बेंच पर तो फिर पीछे उठाकर रक्खी थी।"

इसके बाद वे सब जन उन्हीं पुरुष की याद करने लगे और उन्हीं की बाबत बहस और चर्चा करने लगे, कि उनके मुंह से क्या-क्या शब्द निकले, क्या उन्होंने दिया, कहां वह बैठते थे, कहां सोते थे, और किससे कब और क्या-क्या बातें उन्होंने की थीं।

रात को घर का मर्द भी अपने घोड़े पर आया और वह भी एलीशा के बारे में बखान करने लगा कि कैसे वह दयावान यहां रहा करते थे।

"वह न आते तो हम अधम अपने पाप के बीच मरे ही पड़े हुए थे। निराश, पल-पल मौत के मुँह में हम सरकते जा रहे थे। ईश्वर को कोसते और आदमी को कोसते थे। लेकिन वह दयालु आये और हमें अपने पैरों खड़ा किया। उनसे हमने परमात्मा को जानना चाहा। उनसे हमने विश्वास पाया कि आदमी में नेकी का बास है। भगवान उनका भला करे। हम जानवर की तरह रहते थे। उन्होंने हमें आदमी बनाया।"

एफिम को खिला-पिला कर उन्हें बिछौना बतला दिया और फिर वे खुद अपने सोने चले गये।

एफिम लेट तो गया, पर सो नहीं सका। एलीशा उनके मन से बाहर

नहीं होता था। उसे स्मरण हुआ कि येरुशलम तीर्थ में तीन बार सबसे आगे के स्थान पर उसने एलीशा को देखा था।

सोचा कि एलीशा इसी भांति मुझसे आगे निकला है। भगवान ने मेरी तीर्थ यात्रा को तो स्वीकार किया हो या नहीं भी स्वीकार किया हो, पर एलीशा के पुण्य को तो प्रत्यक्ष ही उसने ग्रहण कर लिया है।

अगले सबेरे एफिम ने उन लोगों से विदा मांगी। परिवार के लोगों ने राह के लिए उसके साथ कलेवा बांध दिया और एफिम घर की तरफ आगे बढ़ा।

(१२)

पूरा सालभर एफिम को यात्रा में लग गया। गर्मी लगते गया था कि उन्हीं दिनों लौटा। पर जिस शाम घर पहुंचा तो उसका लड़का वहां था नहीं। बाहर दारू-घर पर गया था। लौटा तो ज्यादा चढ़ा आया था। एफिम ने उससे घर के हाल-चाल की बाबत पूछा। पर साफ ही दिखाई देता था कि बाप के पीछे उसने जमकर कुछ नहीं किया है। पैसा जहां-तहां खर्च डाला है और काम का ख्याल नहीं रक्खा है। सो बाप ने लड़के को डांटना शुरू किया।

लड़के ने भी बेअदबी से जवाब दिया। बोला—"तो तुम्हींने यहां रहकर क्यों नहीं सब देखा-भाला। पैसा बांधकर आप खुद तो चल दिये तीरथ करने और अब कहते हैं कि कमाकर रक्खूं मैं।" बूढ़े को सुनकर गुस्सा आ गया और पीटने लगा।

सबेरे एफिम गांव के चौधरी के पास अपने बेटे के चाल-चलन की शिकायत करने लगा। रास्ते में एलीशा का मकान पड़ता था। वहां उसकी बीबी उसारे में खड़ी थी। बोली—"आओजी, आओ। कब आये? क्या हाल है? तीरथ आपका राजी-खुशी तो हुआ न?"

एफिम रुक गया बोला—"हां, ईश्वर की दया है। तीरथ सब राजी हुआ। पर एलीशा तो बीच में छूट गये कि फिर दीखे ही नहीं। वह कुशल से घर आ गये हैं न?"

स्त्री को बात करने का चाव था। बोली—"हां जी, वह वापिस घर आ

गये हैं। आये उन्हें दिन भी हो गये। मैं समझूं कार्तिक बीते ही वह आ गये थे। भगवान की कृपा हुई कि उन्हें जल्दी वापस भेज दिया। उनके बिना यहां सब सूना लगता था। काम की तो उनसे अब बहुत आस नहीं है। काम की उमर उनकी गई। पर तुम जानो कि घर के बड़े तो वह हैं। और वह होते हैं तो घर में उछाह रहता है। और हमारा लड़का तो—उसके आनन्द की क्या पूछो—'भाभी, सूरज छिप जाता है न, सो पिताजी के बिना वैसी हालत हो जाती है जैसे धूप उठ गई हो। अजी, उनके पीछे तो सब बिरथा लगता है और घर में उमंग नहीं रहती। हम लोग सब उनका खयाल रखते हैं और आराम देते हैं। और हमें भी तो वह कितना प्यार करते हैं।"

"वह घर ही हैं न ?"

"हां जी, घर ही हैं। अपनी मधु-मक्खियों के पास होंगे। वहीं सदा दीखते हैं। कहते थे, इस साल खूब मधु होगा। भगवान ने ऐसी कृपा की है कि खूब मक्खी फली हैं। ऐसी कि कभी उन्होंने भी अपनी उमर में नहीं देखी। वह कहते हैं कि भगवान हमारे औगुन के माफिक तो यह हमें इनाम नहीं दे रहे हैं। आओ, बड़ेजी, तुम आओ। तुमसे मिल कर उन्हें बहुत खुशी होगी।"

एफिम उधर बरामदे में से निकलता हुआ दूसरी तरफ के घर में गया। वहां एलीशा मिला। वही लंबा चोगा था। न मुंह ढकने की कोई जाली थी न हाथ में दस्ताने। पेड़ों के कुंज के नीचे, खुले सिर बांह फैलाये खड़ा था। एफिम को येरुशलम के मन्दिर में दीखे चित्र की याद हो आई। उसी भांति सिर उसका चमक रहा था और पेड़ों के ऊपर छनकर आनेवाली धूप भी ठीक मन्दिर की अखंड ज्योति-सी दीखती थी। और मक्खियों ने उसके सिर के आस-पास उड़कर अपने सुनहरे पंखों से वहीं के जैसा उज्ज्वल प्रभा-मंडल बना रखा था। प्रेम से सब उसके चारों तरफ मँडरा रहीं थीं और कोई काटती नहीं थी।

एफिम रुक गया और दूर से ही स्त्री अपने पति को पुकार कर बोली—

"अजी, देखो भी, वह बड़ेजी आये हैं।"

एलीशा ने मुड़कर देखा। चेहरा उसका प्रसन्न था। धीमे से दाढ़ी में

उलझी दो-एक मक्खियों को निकालते हुए एफिम बढ़कर मित्र की तरफ आया।

"आओ भाई, आओ। कहो, तीरथ कुशल से तो हुआ?"

"हां, काया तो मेरी तीरथ करने गई ही थी! और जार्डन का जल भी तुम्हारे लिये भरकर लाया हूं। पर उसके लिए तो तुम हमारे घर आओगे, है न? लेकिन मालिक को मेरी तीरथ-यात्रा स्वीकार हुई कि नहीं..."

एलीशा बोला—"अजी, तारन-तरन वही हैं। भगवान का ही सब है।"

एफिम कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—"काया तो वहां पहुंची, पर सच पूछो तो आत्मा मेरी वहां पहुंची कि दूसरे की यह......"

बीच में एलीशा ने कहा—"भाई, यह तो भगवान के देखने का काम है। भगवान सब देखते हैं।"

एफिम—"और वापसी में उस घर पर भी ठहरा था जहां तुम पीछे छूट गये थे......"

एलीशा सुनकर जैसे भय से भर गया। जल्दी से बोला—

"भगवान का काम है, भाई, सब भगवान का! आओ, अन्दर आओ। हमारा शहद तो जरा देखो।"

कहकर एलीशा ने बात बदल दी और घर के हाल-चाल की चर्चा छेड़ दी।

एफिम मन की सांस मन में रोके रह गया। फिर उस घर के उपकृत लोगों की बात उसने नहीं की। न यही बतलाया कि किस रूप में परमतीर्थ येरुशलम के मन्दिर की ठीक वेदी के पास एलीशा को उसने तीन बार देखा था। पर अब मन के भीतर खूब समझ गया कि ईश्वर की प्रतिज्ञा और उसके आदर्श को पालन करने का सबसे अच्छा मार्ग क्या है। यही कि आदमी जब तक जीये, औरों की भलाई करे और प्रेम से व्यवहार करे।

: ७ :

जीवन-मूल

(१)

एक रैदास-मोची अपने स्त्री-बच्चों के साथ एक किसान की झोंपड़ी में रहा करता था। नाम था ननकू। उसके पास अपनी जमीन नहीं थी, न

घर। रोज जूते गाठकर रोजी चलाता था। पर काम का भाव सस्ता था और नाज का महंगा। सो जो कमाता था, खाना जुटाने में खर्च हो जाता। स्त्री-मर्द के बीच जाड़ों के लिए बस एक लोई थी। वह भी चिथड़े हो चली थी। यह दूसरा साल था कि दोनों सोचते थे कि अबके दोहर-लिहाफ बनवाएंगे। सो जाड़ो के दिनों तक ननकू ने उसके लिए कुछ पैसा बचा भी लिया था। पांच का एक नोट घर के बक्स की तलहटी में रखा था और कोई इतना ही पैसा बस्ती में लोगों से उसे लेना निकलता था।

सो एक सवेरे कम्बल-लोई लेने के खयाल से ननकू बस्ती जाने को तैयार हुआ। उसने कुर्त्ता पहना, उस पर बीबी के बदन को मिरजई, और ऊपर एक गाढ़े की चादर डाल ली। नोट जेब में रक्खा। झाड़ से एक डंडा तोड़ सहारे को हाथ में लिया, और कलेऊ करके राम-नाम ले रवाना हो लिया। सोचा कि जो पांच रुपय बस्ती में लेने निकलते हैं, वे भी उगाह लूंगा। सो पांच तो वे, पांच ये—दस रुपये म जाड़े के लिए खासे गर्म कपड़े हो जायंगे।

बस्ती में आया और अपने कर्जदार एक किसान के घर गया। लेकिन किसान घर पर मिला नहीं। स्त्री थी, सो स्त्री ने वचन दिया कि पैसा अगले हफ्ते मिल जायगा, मैं खुद तो दे कहां से सकती हूं। तब ननकू दूसरे द्वारे पहुंचा। उस आदमी ने भी कसम दिला कर कहा कि इस वक्त पास पैसा है नहीं, नहीं तो मैं क्या मुकरनेवाला था? ये पांच आने हैं, चाहो तो ले जाओ। हालत यह देख ननक ने कोशिश की कि कुछ तो नकद दे दूं, बाकी उधार हो जाय, और ऐसे एक लोई ले ही चलूं। लेकिन दूकानदारों में से किसी ने भी उसका भरोसा न किया। कहा कि पैसा ले आओ फिर मन-पसंद लोई छांट ले जाना। तुम जानो, वसूली में भाई, बड़ी मेहनत लगता है।

नतीजा यह कि बस्ती में ले देकर जो ननकू ने कमाई की सो कुल जमा पांच आने। हां, एक आदमी ने अपना जोड़ा भी दिया था कि इसके तले मोटा चमड़ा लगाकर ठीक कर देना।

ननकू का मन इस पर ढीला हो आया। पांच आने जो मिले, उन्हें दारू में फेंक, बिना कुछ लिये दिय, खाली हाथ वह घर को वापिस चल

दिया । सबेरे आते उसे सरदी लगी थी; लेकिन अब दारू चढ़ाने के बाद बे-कपड़े भी उसे कुछ गरमी मालूम होती थी । हाथ की लकड़ी को धरती पर पटकता हुआ, दूसरे हाथ में जूता-जोड़ा लटकाये, अपने-अपसे बात करता हुआ, ननकू चला जा रहा था ।

"कंबल नहीं है, न लोई, तो भी खासी गरमाई आ गई । एक घूंट क्या लिया कि नस-नस की ठंड भी भाग गई । अजी, क्या जरूरत है लोई की । मजे में चल रहा है । फिक्र काहे की । मैं तो ऐसा ही आदमी हूं, फिक्र नहीं पालता । परवाह क्या, बिना लोई मजे में कट जायगी । क्या है, अंह, छोड़ो भी । पर बीबी झींकेगी, झिड़केगी···जरूर झिड़केगी । और सच तो है । यह बेशक शर्म की बात है । आदमी दिन भर काम करे और उसे मजदूरी न मिले !···ठहरो, अगर तुम पैसा नहीं देते तो क्या समझा है ! मैं चमड़ी उधेड़ दूँगा। मेरा नाम ननकू है । क्या ? देने के नाम पांच आने ! पांच आने का भला बन क्या सकता है ? सिवा इसके कि चुल्लू ताड़ी पी ली जाय । आये कहने, तंगी है । होगी तंगी । लेकिन हम ? हमारी तंगी भी कोई पूछता है? तुम्हारे पास मकान है, बगिया है,सब है । मेरे पास जो पहने खड़ा हूं, वही है । तुम्हारे पास अपनी खेती का नाज है, मुझे एक-एक दाने का पैसा देना होता है । कुछ करूं, नाज तो चाहिए ही । और खाली रोटी के लिए काम में पसीना बहाता हूं तो भी नहीं जुड़ती । तीन रुपये की मजदूरी हफ्ते में बनती होगी । हफ्ते का अन्त आया कि चून खतम । वह तो जैसे-तैसे रुपया धेली ऊपर बना लेता हूं तो काम चलता है , नहीं तो बस राम का नाम । सुनते हो जी, जो हमारा लेना आता है, अभी रख दो । हील-हुज्जत न चलेगी ।"

यह कहता-सुनता वह सड़क के मोड़तक आ गया था । वहां था एक शिवजी का मन्दिर । देखता क्या है कि शिवालय के पिछवाड़े धौला-सा कुछ दीखता है । दिन का चांदना धीमा हो रहा था । उसमें ननकू आंख गाड़कर देखने लगा कि वह धौला-धौला क्या है पर उसे पहचान कुछ नहीं आया । सोचा कि जाते वक्त तो यहां कोई सफेद पत्थर था नहीं । क्या फिर बैल है ? लेकिन बैल भी नहीं है । सिर तो आदमी का-सा मालूम

होता है। पर इतना सफेद! और आदमी का इस वक्त यहां काम क्या है?

पास आया तो साफ-साफ दिखाई देने लगा। अचंभा देखो कि वह सचमुच आदमी था। जीता हो, चाहे मुर्दा, उघाड़े बदन मन्दिर की दीवार से सटा बैठा था। हलन-चलन का नाम नहीं। ननकू को डर लग आया। सोचा कि किसी ने उसे मारकर कपड़े खोंस लिये हैं और वहां छोड़ दिया है। मैंने कुछ छेड़ा तो मुसीबत में ही पड़ना होगा।

सो वह ननकू देखी-अनदेखी कर आगे बढ़ लिया। वह उधर से फेर देकर निकला जिससे आदमी फिर उसे दिखाई ही न दिया। कुछ बढ़ गया, तब उसने पीछे मुड़ कर देखा। देखता क्या है कि वह आदमी दीवार से लगा हुआ, अब झुका नहीं बैठा है, बल्कि चल फिर रहा है। कहीं वह मेरी तरफ तो नहीं देख रहा है।

उसको पहले से भी ज्यादा भय हुआ। सोचा कि मैं वापिस उसके पास चलूं या कि अपनी राह बढ़ता जाऊं। पास गया तो क्या मामला निकले। उसमें जोखिम भी हो सकता है। जाने कौन बला है। यहां सुन-सान में किसी नेक इरादे से तो वह आया न होगा। पास जाने पर हो सकता है कि कूदकर मेरा गला धर दबाये और भागने का भी रास्ता न रहे। यह भी नहीं, तो ऐसे आदमी का मैं करूंगा क्या? मेरे सिर वह बोझ ही हो जायगा, और क्या? नंग-धड़ंग, भला उसमें मेरा होगा क्या? अपने बदन के कपड़े तो उतारकर मैं उसे दे नहीं सकता। सो अपने राह मैं चला ही चलूं।

यह सोच कर ननकू बढ़ा ही चला। मन्दिर पीछे छूट गया कि तभी उसके भीतर दूसरा खयाल आया। बीच सड़क रुककर उसने अपने से कहा कि ननकू, तू यह कर क्या रहा है? क्या जाने वह आदमी भूखा मर रहा हो, और तू डर के मारे पास से कतराकर निकला जा रहा है। क्या तू भी मालदार हो गया कि चोर-डाकू का डर लगे? ननकू, तेरे लिए यह शर्म की बात है।

(२)

पास पहुंच जो देखा तो जवान आदमी है, तंदरुस्त और शरीर पर

कोई चोट-रोग का निशान नहीं है। पर सर्दी के मारे ठिठुरा जा रहा है और सहमा हुआ है। वहां दीवार से कमर टिकाये चुपचाप बैठा है, ननकू की तरफ आंख उठाकर नहीं देखता। जैसे कि उसमें इतना दम ही नहीं है। ननकू और पास गया तब उस आदमी को चेत होता मालूम हुआ। सिर मोड़कर उसने आँखें खोलीं और ननकू की तरफ देखा। उस एक नजर पर ननकू तो निछावर हो गया। वह तो जैसे निहाल हो आया और उसके मन को यह आदमी एकदम भा गया। उसने हाथ की जूता-जोड़ी जमीन पर रख दी। दुपट्टा उतारकर वहीं रख दिया और मिर्जई भी उतारने लगा। बोला—

"सुनो दोस्त, कहने-सुनने की बात नहीं है। अब चटपट ये कपड़े पहन डालो।"

कहा और बांह से पकड़कर उसने अजनबी को उठाया। खड़े होने पर ननकू ने देखा कि उसका शरीर साफ और स्वस्थ है। हाथ-पैर का बनाव सुघड़ और चेहरा भला, भोला और सुन्दर है। ननकू ने अपनी मिर्जई उसके कंधे पर डाल दी। लेकिन उस भले आदमी को आस्तीन में बांह करना न आया। खैर, ननकू ने खुद मिर्जई पहना दी। दुपट्टा लपेट दिया और जूता पहना दिया।

ननकू ने सिर की टोपी भी उतार उसको दे देनी चाही। लेकिन इसमें उसके अपने सिर को ही ठंडी लगती। उसने सोचा कि एह, मेरा सिर गंजा है और उसके बड़े-बड़े घुंघराले बाल हैं। इससे टोपी अपने सिर पर ही रहने दी। बोला—"अच्छा दोस्त, अब जरा चलो-फिरो। ऐसे गरमी आयेगी। बाकी फिर देखेंगे। चल सकते हो न?"

अजनबी खड़ा हो गया और सदय भाव से ननकू को देखने लगा। लेकिन मुंह खोलकर शब्द वह कुछ भी नहीं कह सका।

ननकू ने कहा, "भाई, बोलते क्यों नहीं हो? यहां सरदी बहुत है। ठिठुर जाओगे। चलो, घर चलें। यह लो लकड़ी। चला न जाय तो उसे टेकते चलो। लेकिन बढ़े चलो, बढ़ाओ कदम।"

आदमी चल पड़ा। वह ऐसे चला जैसे कदम तिरते हो। उसके

किसी से पीछे रहने की तो बान न थी।

चलते-चलते ननकू ने पूछा, "भाई, तुम हो कहां के ?"

"मैं इस तरफ का नहीं हूँ।"

"यही मैं सोचता था। इधर के लोगों को मैं पहचानता हूँ पर यहां तुम शिवाले के पास कैसे आन पहुँचे ?"

"मालूम नहीं।"

"किसी ने तुम्हें लूटा-ठगा तो नहीं है ?"

"नहीं, सब ईश्वर का दंड है ?"

"सो तो है ही। वह सबका मालिक है। तो भी कुछ खाने और कहीं सिर टेकने को जगह पाने की तदबीर तो करनी ही होगी न। तुम्हें जाना कहां है ?"

"मुझे सब जगह समान हैं।"

ननकू को अचरज हुआ। आदमी वह दुष्ट नहीं मालूम होता था। कैसा मीठा बोलता था। लेकिन उसका अता-पता जो न था। तो भी ननकू ने सोचा कि कौन जानता है कि बेचारे के साथ क्या अनहोनी हुई हो।

यह सोचकर उस अजनवी आदमी से उसने कहा—"अच्छा, ऐसा है तो मेरे साथ घर चलो। वहां थोड़ा आराम करना, फिर देखा जायगा।"

यह कहकर ननकू घर की तरफ चल दिया। नया आदमी साथ-साथ था। हवा तेज हो चुकी थी। ननकू को अकेले कुरते में सरदी लग आई। नशा छूट रहा था और अब ठंड ज्यादा सताती थी। तो भी सीटी बजाता अपने वह चला जाता था। पर रह-रहकर उसे सोच होता था कि घर में कैसे बीतेगी ? चला था कम्बल लेने और आ किस हाल में रहा हूं। खाली हाथ तो हूँ ही, तिस पर बदन की मिर्जई बदनपर नहीं है और भी बढ़कर यह कि साथ एक आदमी लिये हुए जिसका अता-न-पता और जिसके पास कपड़ा न लत्ता। मन्नो भी क्या कहेगी ? निश्चय ही बहुत खुश तो वह होनेवाली है नहीं।

यह सोच-सोचकर उसका मन बैठ जाता था। पर जब वह इस अजनवी आदमी की तरफ देखता, और उसकी हालत को और भीगी कृतज्ञ निगाह

को याद करता तो उसे खुशी और हौसला भी होता था।

(३)

उस दिन सबेरे ही ननकू की बीबी ने सब काम पूरा कर लिया। पानी ले आई, बच्चों को खिला-पिला दिया, खुद खा-पीकर निबट चुकी और चौका-बासन भी सब कर डाला। फिर बैठी सोचने लगी कि शाम को खाना बनाऊं कि नहीं। अभी रोटी तो काफी बची हैं अगर कहीं ननकू ने बस्ती में ही कुछ खा-पी लिया तो फिर यहां क्या खायेंगे? फिर तो कल के लिए भी यही रोटी चल जायंगी।

यह सोचकर उसने बची रोटियों को हाथों पर लेकर जैसे तोला। बोली, "बस, अब आज और नहीं बनाऊंगी। घर में आटा भी बहुत नहीं बचा है। तो भी यह इतवार तो इसमें निकालना ही है।"

सो मानवती ने रोटी अलग ढककर रख दीं और पति का कुरता ठीक करने बैठ गई। काम करती जाती थी और सोचती जाती थी—"जाड़ों के लिए वह लोई भी खरीदकर लाते होंगे।" वह सोचने लगी, पर कहीं दूकानदार उन्हें ठग न ले। वह सीधे बहुत हैं। छल-कपट जानते नहीं। एक बच्चा भी उन्हें बेवकूफ बना सकता है। दस रुपये पास हैं—कोई कम रकम नहीं है। लोई और दोहर उतने में दोनों हो सकते हैं। बिना कपड़े जाड़ों में चलेगा कैसे? लोई हो गई तो ठीक हो जायगा। नहीं तो बाहर कहीं निकलने के लायक भी हम नहीं। पर देखो जी, उनको भी कि जो था सब कपड़ा अपने बदन पर वही लेते गये। कुछ नहीं छोड़ गये। मेरी मिर्जई भी नहीं छोड़ गये। कब आयंगे? ऐसे बहुत सबेरे तो नहीं गये। पर वक्त है, अब उन्हें आना ही चाहिए। ओ राम, कहीं बहक न गये हों। ताड़ी की गंध······"

यह सोच रही थी कि बाहर दरवाजे पर कदमों की आहट हुई। सुई को वहीं कपड़े में उड़स मानवती उठकर दरवाजे की तरफ लपकी। देखती क्या हैं कि एक छोड़ दो आदमी हैं। एक तो ननकू है, दूसरा उसके साथ कोई और भी है। उसके सिर पर टोपी है नहीं, और ऊंचे जूते चढ़ाये हुए है।

मानवती ने फौरन ताड़ लिया। ताड़ी की गंध आती थी। सोचा कि

हजरत ने पी दीखती है। और जब देखा कि बदन पर मिर्जई नहीं है, दुपट्टा नदारद है, लोई-वोई भी कोई साथ नहीं दीखती है, और आकर सिमटे-से चुप खड़े हैं, तो उसका दिल निराशा से टूट आया। उसने सोचा कि मालूम होता है कि रुपया सब दारू पर उड़ा डाला है और कहीं के उठाईगीर इस आदमी के साथ मौज-चैन उड़ाई गई है और उसे ले आये हैं मेरे सिर पटकने को।

द्वार की राह छोड़ उसने दोनों को अन्दर जाने दिया। पीछे खुद आई। देखा कि दूसरा आदमी नाजुक बदन का है, जवान है, और मेरी मिर्जई उसके तन पर है : नीचे उसके कुरता न कमीज, न सिर पर टोपी। आकर सींक-सा सीधा खड़ा हो गया है, न हिलता है न ऊपर देखता है। मानवती ने सोचा कि जरूर कोई बदकार है। नहीं तो ऐसा डरता क्यों ?

वह गुस्से में एक तरफ खड़ी हो गई, कि देखूं, ये क्या करते हैं।

ननकू ने टोपी उतारी और खटिया पर ऐसे आ बैठे, जैसे कोई खास बात न हुई हो, सब ठीक ही ठाक हो।

बोला—"मन्नो, खाना हो तो लाओ कुछ दो न ?"

मानवती कुछ बुदबुदाकर रह गई। हिली-डुली तक नहीं। एक को देखा, फिर दूसरे को देखा। फिर माथा पकड़ चुप रह गई। ननकू ने देखा कि पत्नी बिगड़ी हुई है। उसने इस बात को दरगुजर कर देना चाहा, जैसे कुछ न हुआ हो। अपने साथी की बांह पकड़कर कहा—अरे, बैठो भी। अब कुछ खाओगे कि नहीं।"

सो वह अजनवी आदमी भी पास ही खाट पर बैठ गया।

ननकू ने कहा—"कुछ हमारे लिए क्या पकाकर रखा है ? न हो तो वैसा कहो।" मानवती का गुस्सा उबल पड़ा। बोली, "रक्खा है पकाकर, पर तुम्हारे लिये नहीं। मालूम होता है कि अकल तो तुम दारू के साथ पी आये हो। लेने गये थे लोई-कपड़े, आये तो पास की मिर्जई भी गायब। फिर साथ में लिये आ रहे हैं जाने किस उठाईगीर को, पास जिसके तन पर ढंकने को भी चिथड़ा नहीं।"

"बस, बस करो, मानवती। बेमतलब ज्यादा जबान नहीं चलाया

करते। भला, पूछा तो लिया होता कि ये कैसे आदमी हैं, कौन हैं—"

"तो लो, पहले पूछती हूं कि बताओ तुमने रुपयों का क्या किया है?"

ननकू ने जेब से पांच का नोट निकाला और तह खोलकर सामने कर दिया।

"यह पांच का नोट है। बंसी ने कुछ दिया नहीं। जल्दी देने को कहता है।"

मानवती का गुस्सा कम नहीं हुआ। देखो न, लोई तो लाना कैसा, खुद अपनी मिर्जई जो तन पर रहने दी हो। वह भी इस फकीर को दे डाली। फिर उसी को साथ लेते आये हैं घर!

उसने नोट को ननकू के हाथ से झपट लिया और संभालकर उसे अन्दर रखने चली गई। बोली "मेरे पास नहीं है खाना देने को। दुनिया के तमाम नंगे बदकारों को खिलाने को कोई मैं ही नहीं रह गई हूं।"

"सुनो मुन्नो, जरा तो चुप रहो। कुछ दूसरे आदमी की भी सुनो।"

"बड़ी सुनूं। नशेबाज से मिल गई बड़ी अकल। जभी तो मैं तुम्हें व्याहना नहीं चाहती थी। शराबी बदखोर! मेरी मां ने जो दिया, सब पी डाला। अब लोई लेने गये, उसे भी पीकर खत्म किया।"

ननकू ने बहुतेरा कहना चाहा कि कुल पांच आने पैसे मैंने खर्चे हैं, और कि कैसे और कहां यह आदमी मिला और क्यों साथ है। लेकिन मानवती ने न एक कहने दी, न एक सुनी। वह एक के बदले दस कहती थी। और दसियों बरस पुरानी जाने कहां-कहां की गड़ी बातें उखाड़कर बीच में ले आती थी।

बकते-झींकते उसने तेजी में आकर ननकू को बांह से पकड़ खींचा। कहा कि लाओ, मेरी मिर्जई दो। यह अकेली तो मेरे पास है, उसे भी छीन ले गये, हां—तो, और दूसरे को दे डाला। अभी मैं उतरवा लूंगी। समझते हो?—अभी, अभी। सत्यानासी कहीं के!

ननकू ने कहा—"ले, ले।"

और उसने जोर से झिटककर अपना कुर्त्ता बदन से खींच उतारा।

मानवती चिल्लाई—"इसका क्या करूंगी मैं, नास-जाय!"

लेकिन तैश में ननकू ने कुर्त्ता तन से उतार ही डाला और अलग खींचकर

उसे मानवती के सिर पर दे मारा।

मानवती कुर्त्ते को लेकर झींकने लगी। वह सामने से चली जाना चाहती थी, पर नहीं भी चाहती थी। असल में किसी तरह गुस्सा निकालकर वह खत्म कर देना चाहती थी। गुस्से में उसे तसल्ली नहीं थी। और यह भी उसे मालूम हो रहा था कि इसमें उस बिचारे दूसरे आदमी का कोई कसूर तो है नहीं।

(४)

आखिर रुककर बोली—"अगर वह भलामानस होता तो उघाड़े बदन न होता। उसकी देह पर कुर्त्ता तक तो नहीं है। और ठीक-ठिकाना होता तो तुम्हीं न बतला देते कि कहां और कैसे मिला ?"

ननकू—"यही तो बतला रहा हूं। सड़क का वह पहला मोड़ पड़ता है कि नहीं, वहीं शिवाले पर मैं पहुंचा कि यह आदमी वहां बैठा था। बे-कपड़े, मारे जाड़े के ठिठुरा जा रहा था। भला यह मौसम है बदन उघाड़े बैठने का ? यह तो ईश्वर की मर्जी जानो कि मैं वहां पहुंच गया। नहीं तो यह बचता नहीं। तब मैं क्या करता ? हमें किसी के मन का या करनी का क्या पता है ? न जाने क्या किसी के साथ बीती हो। सो मैंने उसे ढारस दिया, कपड़ा दिया और उसे साथ ले आया। इसपर गुस्सा मत करो, मानो ! गुस्सा पाप है। आखिर एक दिन हम सबको काल के गाल में चले जाना है कि नहीं ?"

मानवती के मुंह तक फिर क्रोध के वचन आये, लेकिन उस नये आदमी को देखकर चुप रह गई। वह खटिया की पाटी पर बैठा था। हिलना न डुलना, बाहों में घुटने पकड़े, सिर छाती पर डाले, आंखें बन्द, ऐसा बैठा था कि शिथिल। माथे पर भौंहों के बीच जैसा उसके डर की सिकुड़न थी। सो देख मानवती चुप रह गई।

ननकू ने कहा—"बताओ, तुम्हें बिलकुल ईश्वर का खयाल नहीं है।"

मानवती ने ये वचन सुने। फिर नये आदमी को देखा तो एकाएक उसका जी उसकी तरफ कोमल हो आया। वह अन्दर गई और चौके में से खाने को ले आई। वहीं खाट पर थाली रख दी और पानी के गिलास भी रख दिये।

बोली—"लो, भूख हो तो यह लो। अब खाते क्यों नहीं ?"

ननकू ने अपने साथी को कहा—"सुनते हो, भाई, लो शुरू करो।"

रोटी तोड़ी और मठे के साथ मिलाकर दोनों जने खाने लगे। मानो आंगन में बोरी डाल, अलग बैठ गई और हथेली पर सिर रक्खे वह इस अजनबी को देखने लगी। देखते-देखते इस आदमी के लिए उसके मन में करुणा भर आई। जैसे उस पर प्यार हो आने लगा। इसी समय उस आदमी का चेहरा खिल आया। भवें पहले की तरह सिकुड़ी न रहीं, आंखें उठाकर उसने मानो की तरफ और मुस्करा दिया।

मानो का जी हल्का हो गया। खाने के बरतन उसने हटा दिये और फिर उस नये आदमी से बातचीत करने लगी।

पूछा—"कहां के रहने वाले हो ?"

"यहां का नहीं हूं।"

"फिर इस राह कैसे आ लगे ?"

"कुछ कह नहीं सकता।"

"ऐसा हाल तुम्हारा क्यों है ? किसी ने लूटा-लाटा तो नहीं है ?"

"जी, सब दंड परमात्मा का है।"

"और वहां तुम नंगे पड़े थे ?"

"जी, कपड़े बिना ठिठुरा जाता था। इन्होंने मुझे देखा और याद की। अपने कपड़े उतारकर मुझे दे दिये और यहां अपने घर में ले आये और आपने मुझे यहां भोजन दिया और मुझ पर कृपा की। ईश्वर आपकी बढ़वारी करेगा।"

मानवती उठी और जो ननकू का कुर्त्ता संभाल रही थी, लाकर इस आदमी को दे दिया। साथ कहीं से धोती-जोड़ा भी निकाल लाई।

बोली, "यह लो, भाई। पहन लो। अच्छा सोओगे कहां। खैर, जगह पड़ी है, पुआल है ही। सो जी चाहे जहां सोओ।"

उसने कपड़े पहन लिये और जाकर भीतर कोठरी में पुआल पर लेट गया। मानो ने फिर घर की चीज-बस्त संभाली, और दीया बुझाकर वह भी खटिया पर पहुंच गई।

उसी चीथड़ा रजाई को पति-पत्नी दोनों जने ऊपर ले लेट रहे। लेकिन मानवती को नींद न आई। वह आदमी उसके मन से बाहर ही नहीं होता था। सोचती थी कि घर में सब रोटी खतम हो गई हैं। कल को चून भी नहीं बचा है और ले-दे के जो कपड़े बचे थे, सो उसको दे देने पड़े हैं। इस पर थोड़ा उसका मन मन्द होता था। लेकिन जब उस आदमी की मुस्करा-हट की याद आती थी, तो मन खुशी से खिलने को होता था।

सो देर तक मानवती जागती रही। देखा कि ननकू भी जग रहा है। रजाई उसने उसकी तरफ करके कहा—

"ननकू !"

"हां !"

"रोटी तो सब चुक गई। चून दो-एक मुट्ठी बचा होगा। अब कैसे होगा ? झुनिया मौसी से आटा उधार लेना होगा, और क्या ?"

"अरे, जो जिलाता है, वह पेट भरने को भी देगा।"

स्त्री फिर कुछ देर सोचती जगती पड़ी रही। अनन्तर बोली—"आदमी वह भला मालूम होता है। फिर बताता क्यों नहीं कि है कौन ?"

"कोई बात होगी।"

"ननकू !"

"हां।"

"क्यों जी, हम देते हैं तो फिर हमें कोई कुछ क्यों नहीं देता ?"

ननकू को इसका कोई जवाब नहीं जुड़ा। उससे बोला—"ऊंह, छोड़ो भी, सोओ, सोओ।" और करवट ले वह सो चला।"

(५)

सबेरे ननकू उठा। बच्चे अभी सोये थे। स्त्री कहीं पड़ोस में आटे का बन्दोबस्त करने गई थी। साथ का आदमी अकेला ओसारे में उन्हीं कपड़ों में बैठा आसमान को देख रहा था। चेहरा उसका खुला हुआ और खुश था।

ननकू ने कहा—"सुनो दोस्त, पेट को खाना चाहिए, तन को कपड़ा। इसके लिए उपाय है मेहनत। सो काम से रोजी चला करती है। बोलो,

कुछ काम-धाम जानते हो ?"

"जानता तो मैं कुछ नहीं हूँ।"

ननकू को यह सुनकर अचरज हुआ। लेकिन बोला—"कोई सीखनेवाला हो तो सब सीख सकता है।"

"अच्छी बात है। सब काम करते हैं, मैं भी करूँगा।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"नाम !—मंगल।"

"अच्छा मंगल, तुम अपनी बाबत कुछ नहीं बताते हो, जाने दो। तुम जानो तुम्हारा काम ! लेकिन गुजारे के लिए उद्यम तो कुछ करना होगा न। जैसे मैं बताऊँ करते चलोगे तो तुम्हारे रहने और खाने-पीने के बन्दोबस्त में हमें कोई अड़चन नहीं होगी।"

"परमात्मा की दया हुई तो मैं काम सीखता जाऊँगा। भगवान् आप का भला करें। मुझे बताते जाइए।"

ननकू ने सूत लिया, पैर के अँगूठे से बांधा, और उसे बटने लगा। बोला—

"देखते हो न ? कुछ भी तो मुश्किल नहीं है।"

मंगल गौर से देखता रहा। फिर उसी तरह अँगूठे में सूत बांध वह भी बटने लगा। न-कुछ में यह उसे आ गया और सूत उसने अच्छा बट लिया।

फिर ननकू ने बताया कि कैसे मोम से इसे चिकना करते हैं। यह भी मंगल सीख गया। फिर बताया कि कैसे फंदा डालते हैं, कैसे सीते हैं। यह भी मंगल आसानी से सीखता चला गया।

ननकू जो बताता, मंगल झट समझ जाता। तीन दिन के बाद तो मंगल ऐसा काम करने लगा मानो जिन्दगी भर यही काम करता रहा हो। लगन से सब दिन वह यही किया करता और थोड़ा खाता। काम के बाद अपने चुपचाप आसमान की तरफ देखने लगता। वह शायद ही कहीं इधर-उधर जाता था। बस काम जितनी बात करता था। न हँसी, न मजाक, न कुछ। पहले दिन जब मानवती ने उसे खाने को दिया था, उस वक्त को छोड़कर फिर वैसी मुस्कराहट भी उसके चेहरे पर नहीं दीखी।

(६)

दिन पर दिन चलते गये। इस तरह साल निकल गया। मंगल ननकू के साथ रहता और काम करता। उसका नाम सरनाम हो चला था। लोगों में हो गया था कि ननकू का आदमी यह मंगल जैसे जूते सीता है, वैसा आस-पास क्या दूर तक भी कोई नहीं सी सकता। काम ऐसा खूबसूरत और मजबूत और सुबुक कि क्या बात। सो ननकू के यहां दूर-दूर के लोग जूते बनवाने आने लगे। इससे ननकू की हालत सुधर आई और खुशहाली बढ़ने लगी।

एक बार जाड़ों के दिन थे। ननकू और मंगल काम करने बैठे थे। तभी दो घोड़ों की बग्घी टनन-टनन करती हुई उनके गांव में आई। उन्होंने झांककर देखा। देखते क्या हैं कि बग्घी उनके द्वार पर आकर रुक गई है और वर्दीदार कोचवान ने गाड़ीके रुकते ही चट से नीचे कूदकर दरवाजा खोल दिया है। दरवाजे में से कीमती कपड़े पहने कोई रईस आदमी उतरे और उसी घर की तरफ बढ़े। मानवती ने झटपट आकर अपने घर के दरवाजे चौपट खोल दिये। सज्जन को अन्दर आने के लिए दरवाजे में झुकना पड़ा। फिर आकर जो खड़े हुए तो सर उनका छत को छूता मालूम होता था और जैसे वह सारी जगह उनसे भर गई थी।

ननकू ने उठकर सलाम किया। वह अचंभे में इन्हें निहार रहा था। इनके जैसा आदमी उसने नसीब में नहीं देखा था। वह खुद दुबला था। मंगल की देह भी इकहरी थी और मानवती के तो हाड़ निकल रहे थे। पर यह सज्जन जैसे दूसरी दुनिया के थे। चेहरा सुर्ख, दोहरी देह, गर्दन ऐसी कि क्या पूछिये। पूरे देव मालूम होते थे।

सज्जन ने ऊपर का चोगा उतारा नहीं कि उसे पास खड़े नौकर ने हाथों-हाथ संभाल लिया। वह बोले—"तुममें कौन है जिसका जूता मशहूर है ?"

ननकू ने आगे बढ़कर और झुककर कहा:—"जी, हाजिर हूँ।"

तब सज्जन ने पुकारकर कहा—"ऐ छोकरे, वह चमड़ा इधर तो लाओ।"

नौकर चमड़े का बंडल लेकर दौड़ा आया।

"खोला।"

नौकर ने खोला। सज्जन ने छड़ी से चमड़े को दिखाते हुए कहा—"देखते हो, यह चमड़ा है।"

"जी।"

"जी नहीं, जानते हो कैसा चमड़ा है ?"

ननकू ने हाथ से टटोलकर चमड़े को देखा। बोला—"अच्छा चमड़ा है।"

"अच्छा है ! बेवकूफ, ऐसा कभी तुमने अपने जनम में देखा भी है ? असल जर्मनी का है अकेला वह टुकड़ा बीस रुपये का है।"

ननकू सहमकर बोला—"जी, ऐसा चमड़ा हमें कहां देखने को मिलता है, हुजूर।"

"हां, सो ही तो। अच्छा इसके जूते तैयार कर सकोगे ?"

"जी, हुजूर ! कर सकूंगा।"

यह सज्जन जोर से बोले—"कह दिया, सकूंगा। अरे, कर भी सकोगे ? याद रखना कौन कह रहा है और क्या चमड़ा है। समझे ? ऐसा जूता बनाना होगा कि साल भर पूरा चले। न उधड़े न बिगड़े। कर सकते हो, तो लो चमड़ा और शुरू करो। नहीं कर सको तो सीधे कहो। समझते हो न, अगर साल भर के अन्दर जूते में उधड़न आ गई या उनकी शकल बिगड़ चली तो तुम हो और जेलखाना। क्या समझे ? और जो वह फटे नहीं और शकल भी कायम रही, तो काम के तुम्हें दस रुपया मिलेंगे। सुना ?"

ननकू तो रोब के मारे डर गया था। उससे जवाब नहीं दिया गया। उसने मंगल को देखा और धीमे से कोहनी मारकर मानो उससे पूछा—"क्या कहते हो ? यह काम ले लूं ?"

मंगल ने सिर हिला दिया, जैसे कहा कि हां, ले लो।

मंगल की कही मानकर ननकू ने काम ले लिया। वादा किया कि जूते तैयार कर दूंगा कि साल में न एक उनकी सीवन जायगी, न शकल में फरक आयगा।

तब नौकर को बुलाकर सज्जन ने कहा—"ए, हमारे पैर का यह जूता उतारो तो।" यह कहकर बाईं टांग उन्होंने आगे बढ़ा दी। फिर

ननकू से कहा—"देखते क्या हो ? लो अपना नाप लो ।"

ननकू ने कागज लिया। उसे धरनी पर हाथ से बार बार चपटा किया। झुका, अपने कुर्ते से अच्छी तरह हाथ पोंछे कि सज्जन के मोजे मैले न हो जायं, और नाप लेना शुरू किया। तली नापी, टखना नापा और पिंडली का नाप देखने लगा। पर कागज उसका छोटा निकला। पिंडली की मोटाई इतनी थी कि कागज ओछा रहा।

"देखना, नाप कहीं इस जगह सख्त न हो जाय।"

ननकू ने उसमें फिर दूसरा कागज जोड़ा। सज्जन मोजे में से अपना अँगूठा चला रहे थे और वहां खड़े लोगों को देख रहे थे। इसी दरमियान उनकी नजर मंगल पर पड़ी।

"ऐ, यह कौन है ?"

"हुजूर, यह मेरा आदमी है। यही जूते सियेगा।"

सज्जन ने मंगल को कहा—"यह ! अच्छा, सुनते हो जी तुम, देखो भूलना नहीं कि जूते पूरे साल भर चलें। नहीं तो......"

ननकू ने अचरज से मंगल को देखा। देखा कि मंगल जैसे उन रईस को देख ही नहीं रहा है, बल्कि उनके पार जाने कहां देख रहा है। जैसे पार पीछे कुछ सचमुच हो। उधर देखते-देखते मंगल एकाएक मुस्करा आया और उसके चेहरे पर चमक झलक गई।

उस सज्जन ने गरजकर कहा—"दांत क्या निकालता है, बेवकूफ ! खयाल रखना, वक्त तक जूते तैयार हो जायं। सुना न।"

मंगल ने कहा—"जी, समय पर तैयार लीजिये।"

"हां—तैयार !"

यह कहा, जूते पहने, चोगा चढ़ाया और दरवाजे की तरफ बढ़े। लेकिन झुकने की याद न रही और दरवाजे की चौखट खट् से सिर में लगी।

झुंझलाकर उन्होंने गाली दी और सिर मलते हुए गाड़ी में बैठ चलते बने।

चले गये तो ननकू ने कहा—"क्या खूब, आदमी हो तो ऐसा हो। डील-डौल ऐसा कि देव ! एक बार घन पड़े तो शायद पता न चले। ऐसी देह ! देखो न, सिर लगा तो चौखट टूटते बच गई। पर सिर का कुछ न बिगड़ा।"

मानवती बोली—"जो खाएगा-पीयेगा वह मजबूत न होगा तो क्या तुम होगे। ऐसी शिला को तो मौत भी छूते बचे!"

(७)

उनके चले जाने पर ननकू मंगल से बोला—"दोस्त, काम ले तो लिया; पर कहीं मुसीबत में न फंसना पड़े। चमड़ा कीमती है और आदमी तुम समझो वह मुलायम नहीं है। सो काम में कोई नुक्स नहीं रहना चाहिए। सुना न? तुम्हारी आँख सही और हाथ सच्चे हैं। मैं तो फूहड़ हुआ। इससे भाई, इस चमड़े की काट-कूट को तुम्हीं संभालो। मैं इतने तले सिये डालता हूं।"

मंगल ने वह चमड़ा ले लिया। उसे बिछाया, मोड़ा और रापी लेकर काटना शुरू कर दिया।

मानवती आकर देखने लगी। देख रही थी कि उसे अचरज हुआ। उसने बूट बनते देखे थे, लेकिन मंगल बूट के ढंग पर चमड़े को नहीं काट रहा था, और ही तरीके पर काटने लगा था।

उसने रोकर कहना भी चाहा, लेकिन फिर सोचा कि मैं ज्यादा तो जानती नहीं शायद कोई खास बूट इसी तरह से बनते हों। और मंगल खुद होशियार है, सो मुझे दखल नहीं देना चाहिए।

चमड़ा काट चुका तो मंगल ने सीना शुरू किया। लेकिन दोहरी सिलाई नहीं की, जैसे कि बूट सिये जाते हैं। बल्कि इकहरी सिलाई शुरू की, जैसे कि सुबुक काम के या बचकाने स्लीपर सिये जाते हैं।

ननकू ने यह देखा तो उसके मन में बड़ा पछतावा हुआ। सोचा कि मंगल साल भर मेरे साथ रहा है, कभी उसने गलती नहीं की। अब यह उसको हो क्या गया है? वह ऊंचे पूरे बूट को कह गये थे और मंगल ने इकहरी तली के सुबुक स्लीपर बना डाले हैं। ऐसे सारा चमड़ा खराब हो गया अब उनको मैं क्या जवाब दूंगा ऐसा दूसरा चमड़ा कहां से लाकर दूंगा।

बोला—"यह कर क्या रहे हो, मंगल! तुमने तो सारा नाश करके रख दिया। उन्होंने ऊंचे-ऊंचे पूरे बूट के लिए कहा था और यह तुमने क्या

बनाकर रख दिया है।"

ऐसा सख्त-सुस्त सुना कर चुका होगा कि बाहर से किसी के आने की आहट हुई। इतने में तो अपने द्वार पर ही कुंडे की खटखटाहट सुनाई देने लगी। देखें तो घोड़े पर सवार कोई आया है।

किवाड़ खुले और उन सज्जन के साथ वाला वही आदमी सामने दिखाई दिया। बोला—"जय रामजी की, चौधरी।"

"जय रामजी की भाई", ननकू बोला, "कैसे आना हुआ ?"

"मालकिन ने जूतों की बाबत मुझे भेजा है।"

"जूतों की बाबत ! क्या मतलब ?"

"अब बूटों की जरूरत नहीं हैं। क्योंकि मालिक तो रहे नहीं, उन्होंने प्राण छोड़ दिये।"

"क्या—आ !"

"वह यहां से घर तक भी नहीं पहुंच सके, गाड़ी में ही मौत ने ले लिया। घर पहुंचकर हम सबने जो उन्हें उतारना चाहा तो देखते क्या हैं कि वह बोरों की तरह लुढ़क रहे हैं। उनमें जान नहीं रह गई थी। बदन ऐसा अकड़ गया था कि जैसे-तैसे गाड़ी से बाहर उन्हें लिया जा सका। मालकिन ने मुझे यहां भेजा है कि जूतेवालों से कहना कि बूट जिन्होंने बनवाये थे, उन्हें अब उनकी जरूरत नहीं रही। लेकिन अब उनकी जगह मुलायम इकहरी स्लीपर तैयार कर दें। कहा है, जबतक वे तैयार न हों वहीं रहना और साथ लेकर आना। सो इस वास्ते मैं आया हूं।"

इसपर मंगल ने बचे-खुचे चमड़े को समेटा, स्लीपर लिये-दोनों की तह की, आस्तीन से फिर एक बार पोंछ कर उन्हें साफ कर दिया, और दोनों चीज उस आदमी के हवाले कीं।

"अच्छा, जय रामजी की चौधरी।" कहता हुआ वह आदमी चला गया।

(८)

दूसरा साल निकला, फिर तीसरा। इस तरह ननकू के साथ रहते मंगल को छः साल हो गये। वह पहले की तरह रहता था। इधर-उधर कहीं जाता नहीं था, जरूरत पर बोलता था। उस सब काल में वह सिर्फ दो बार मुस्कराया

था। एक जब कि मानवती ने उसे खाना दिया था, दूसरे जब वह रईस यहां आये थे। ननकू उससे बहुत खुश था और अब ज्यादा सवाल उससे नहीं पूछता था। उसे ख्याल था तो यही कि मंगल पास से कहीं चला न जाय।

एक दिन सब जनें घर में थे। मानवती खाने की तैयारी कर रही थी, बच्चे खेल रहे थे, ननकू एक तरफ बैठा सी रहा था और मंगल एक जोड़ी की एड़ी नई कर रहा था।

इतने में एक लड़का भागा आया और मंगल की कमर पर आ कूदा। बोला—"चाचा, ओ चाचा, देखो कौन आ रही हैं। छोटी दो लड़कियां भी हैं। यहीं आ रहीं मालूम होती हैं। ओ चाचा ओ, एक लड़की लंगड़ी चलती है।"

लड़के के यह कहने पर मंगल ने औजार नीचे रक्खे और सब काम छोड़ द्वार से बाहर देखने लगा।

ननकू को इसपर अचरज हुआ। मंगल कभी भी आंख उठाकर बाहर की तरफ नहीं देखता था। लेकिन अब तो जाने क्यों वह एकटक देख रहा था। ननकू ने भी उझककर बाहर देखा। देखता क्या है कि सचमुच एक स्त्री अच्छे कपड़े पहने उसींके घर की तरफ चली आ रही है। हाथ पकड़े दो लड़कियां हैं। ऊनी, गर्म, सलीके के कपड़े पहने हैं और कंधों पर दुशाला पड़ा है। लड़कियां दोनों एक-सी हैं। एक को दूसरे से पहचानना मुश्किल है। लेकिन दोनों में एक का बायां पैर खराब है और वह लंगड़ा कर चलती है।

वह स्त्री उन्हींके ओसारे में आई। आगे-आगे लड़कियां थीं, पीछे वह। आकर स्त्री ने उन लोगों को अभिवादन किया।

ननकू ने कहा—"आइए, आइए। हमारे लायक क्या काम है?"

स्त्री बेंच पर बैठ गई। दोनों लड़कियां भी उसके घुटने से चिमट बैठीं। वे जैसे यहां इन लोगों के बीच डर गई थीं।

"मैं इन दोनों बच्चियों के लिए जूते बनवाना चाहती हूं। जरा मुलायम होने चाहिए, गरमियों के लायक।"

"जरूर लीजिए, जरूर। ऐसी बचकानी जोड़ी हमने बनाई तो नहीं है लेकिन बना देंगे। रुयेदार, सादे या फैंसी, जैसे कहें। मेरे आदमी इस मंगल

के हाथ में हुनर है—"

कहकर ननकू ने मंगल को देखा। देखता क्या है कि मंगल का तो काम-धाम सब छूट गया है और उसकी निगाह उन लड़कियों पर जम गई है! ननकू को अचंभा हुआ। लड़कियाँ नन्हीं-नन्हीं बड़ी सुन्दर थीं। काली आंखें, गुलाबी गाल और अच्छे कपड़े भी पहने थीं। लेकिन ननकू को समझ न आया कि मंगल यह उन्हें ऐसे क्यों देख रहा—मानो पहले से जानता हो। वह उलझन में पड़ गया, पर महिला से काम की बात चलाता जाता था। कीमत पट गई और ननकू पांव का नाप लेने बढ़ा। स्त्री ने लंगड़ी लड़की को गोद में उठाकर कहा—"इस लड़की के ही दो नाप ले लो। एक लंगड़े पैर के लिए और तीन दूसरे पैर के जूते बना देना। दोनों के एक पांव हैं। जुड़वां बहनें जो ठहरीं।

ननकू ने नाप लिया और बोला—"जी, ऐसा हो कैसे गया? कैसी सयानी सुन्दर लड़की है। क्या जनम से पांव ऐसा है।"

"नहीं, नहीं, उसकी मां से ही यह टांग कुचल गई थी।"

इस समय मानवती भी वहां आई थी। उसे अचरज हुआ कि यह महिला कौन है और ये बच्चियां किसकी हैं। पूछने लगी, "तो क्या तुम इनकी मां नहीं हो?"

"नहीं, बीबी, मैं मां नहीं हूं। नाते में कुछ लगती हूं। मैं इनको पहले जानती भी नहीं थी। लेकिन अब तो दोनों मेरी गोद में हैं, मेरी हैं।"

"तुम्हारी नहीं हैं, फिर भी तुम इन्हें इतना-प्यार करती हो!"

"प्यार नहीं तो और क्या करूं? दोनों को अपना दूध पिला कर मैंने पाला है। मेरे अपना भी एक बालक था। ईश्वर ने उसे उठा लिया। पर उसका मुझे इतना प्यार नहीं था जितना इन नन्हियों का मोह मुझे हो गया है।"

"तो फिर ये किसके बालक हैं?"

(६)

इस तरह एक बार शुरू होना था कि स्त्री पूरी ही कहानी कह चली—

"कोई छः साल होते हैं कि इनके मां-बाप मर गये। दोनों तीन दिन आगे-पीछे इस धरती से उठ गये। मंगलवार को पिता की अर्थी उठी तो बृहस्पति को मां ने संसार तज दिया। बाप के मरने के दो दिन बाद इन बेचारे अनाथों ने जन्म लिया। मां का सहारा तो इनको एक दिन का भी नहीं मिला। हम तब उसी गांव में रहते थे। हमारे यहां खेती होती थी। दोनों हम पड़ोसी थे, हमारे घर के घेरे तो मिले ही हुए थे। बाप इनका अकेला-सा आदमी था और पेड़ काटने का काम करता था। जंगल में पेड़ काटे जा रहे थे कि एक के नीचे वह आ गया। पेड़ ठीक उसके ऊपर आकर गिरा। और वह पिच गया, आंत बाहर आ गई फिर दम निकलना कै घड़ी की बात थी। घर तक ला न पाये कि जान जा चुकी थी। उसके तीसरे दिन मां ने इस जुगल जोड़ी को जन्म दिया। वह अकेली थी और गरीबिनी थी। जवान या बुड्ढा, कोई उसका न था। बेचारी अकेली ने इन नन्हियों को जनमा और अकेली जाकर मौत से मिल गई।

"अगले सबेरे में मैं उसे देखने गई। झोंपड़ी में घुसती हूं और देखती हूं कि उस बेचारी की देह तो ठंडी पड़ी थी और अकड़ गई थी। मरते समय दर्द में करवट ली होगी कि उसमें इस बच्ची की टांग जाती रही। फिर तो गांव के लोग आ गये। देह को उठा अर्थी पर रक्खा और क्रिया-कर्म किया। दोनों बेचारे वे नेक आदमी थे। बच्चे उनके बाद अकेले रह गये। तब उन का क्या होता। गांव में मैं ही थी जिसकी गोद में दूध-पीता बच्चा था। कोई डेढ़ महीने का मेरा पहलौता मेरी छाती से था। इससे उन दोनों को भी मैंने ही ले लिया। गांव के लोगों ने बहुतेरा सोचा कि क्या हो। आखिर उन्होंने मुझे कहा कि भगवती, अभी-अभी तो तुम्हीं इन्हें पाल सकती हो। पीछे देखेंगे कि फिर क्या किया जावे। सो मैं छाती का दूध पिलाकर एक बच्ची को पालने लगी। दूसरी को पहले-पहल मैंने दूध नहीं दिया। सोचती थी कि वह क्या बचेगी ? लेकिन फिर मैंने खुद ही खयाल किया कि वह बेचारी बेकसूर क्यों दुःख पाये और भूखी रहे। सो मुझे दया आई और मैं उसे दूध पिलाने लगी। इस भांति मैं तीनों को, अपने बालक को और इन दोनों को भी, अपनी छाती के दूध से पालने लगी। मेरी भरी उमर थी

और मैं तंदुरुस्त थी और खाना अच्छा खाती थी। सो परमात्मा ने इतना दूध दिया कि कभी तो वह अपने आप ही गिरने लगता था। कभी मैं दो-दो को एक साथ दूध देती। एक को पूरा हो जाता, तो तीसरे को ले लेती। अब परमात्मा की लीला कि ये दोनों बच्चियां तो पनपती गईं, और मेरा अपना बालक दो बरस का हो न पाया कि जाता रहा। उसके बाद मेरे कोई सन्तान नहीं हुई, लेकिन हम बराबर खुशहाल होते चले गये। अब मेरा आदमी एक किराने के व्यापारी का एजेंट है। तनख्वाह खासी है और हम लोग मजे में हैं। हमारे अपना कोई बालक नहीं है और ये नन्हीं मुझे न मिल जातीं तो जीवन सूना ही मुझे मालूम होता। सो इनको प्यार के सिवा भला मैं क्या कर सकती हूं। यही मेरी आंखों की रोशनी हैं और जीवन का धन हैं।"

यह कहकर उस स्त्री ने लंगड़ी लड़की को एक हाथ से गोद में चिपटा लिया और दूसरे से उसके गाल के आंसू पोंछने लगी।

सुनकर मानवती ने सांस भरी। बोली—"सच है, मां-बाप के बिना जीना हो सकता है, पर ईश्वर के बिना कोई भी नहीं जी सकता।"

इस तरह वे आपस में बातें करने लगीं कि एकाएक उस जगह जैसे बिजली की रोशनी हो गई हो, ऐसा लगने लगा। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। देखते हैं कि ज्योति उधर से फूट रही है, जहां मंगल बैठा था। सबकी नजर उधर गई। देखते क्या हैं कि घुटनों पर हाथ रक्खे मंगल बैठा ऊपर की ओर देख रहा है और चेहरे पर उसके मुस्कराहट खेल आई है।

(१०)

महिला लड़कियों को लेकर चली गई। तब मंगल अपनी जगह से उठा। औजार नीचे रख दिये और ननकू और उसकी स्त्री के सामने हाथ जोड़ कर बोला—"अब मुझे विदा दीजिए। ईश्वर ने मेरे अपराध क्षमा कर दिये हैं। जो भूल हुई हो उसके लिए आपसे भी माफी मांगता हूं।"

सुनकर दोनों जने देखते क्या हैं कि मंगल के चेहरे में एक आभा फूट रही है। यह देख ननकू मंगल के आगे आ सिर नवा कर बोला—"मंगल, मैं देखता हूं तुम साधारण आदमी नहीं हो। न मैं तुम्हें रुकने को कहने

लायक हूं न कुछ पूछने लायक। पर इतना बताओ कि यह क्या बात है कि जब तुम मुझे मिले और मैं तुम्हें घर लाया तब तुम उदास मालूम होते थे। लेकिन मेरी बीबी ने खाना दिया तो तुम उसकी तरफ मुस्करा पड़े और चेहरा खिल गया। उसके बाद फिर जब वह रईस बूट बनवाने आये तब तुम दूसरी बार हँसे और पहले से ज्यादा तुम्हारे चेहरे पर रौनक दीखी। और अब यह श्रीमती अपनी लड़कियों के साथ आई कि तुम तीसरी बार हँसे और ऐसे खिल आये जैसे उजली धूप। मंगल, मुझे बताओ कि तुम्हारे चेहरे पर ऐसी शोभा उन तीन बार क्यों आई? तुम मुस्कराये क्यों?"

मंगल ने उत्तर दिया—"शोभा इसलिए कि मुझे दंड मिला था, सो अब ईश्वर ने माफ कर दिया है। और मैं तीन बार हँसा, क्योंकि ईश्वर ने मुझे तीन सत्य जानने के लिए यहां भेजा था, और अब मैं उन्हें जान गया हूं। एक मैंने तब जाना जब तुम्हारी स्त्री ने मुझपर करुणा की। इसलिए पहली बार तो मैं तब हँसा। दूसरा सत्य मैंने जाना जब वह रईस यहां जूते बनवाने आये थे। इससे दूसरी बार मैं उस समय मुस्कराया। और अब इन लड़कियों को देखकर मैंने तीसरा और अंतिम सत्य जान लिया। इससे अब मैं तीसरी बार हँसा हूं। और मेरा दुःख कट गया है।"

इस पर ननकू बोला—"मंगल, हमें बतलाओ कि ईश्वर ने तुम्हें दंड क्यों दिया था और ये तीन सत्य क्या हैं, कि हम भी उन्हें जान सकें।"

मंगल ने जवाब दिया—

"भगवान ने मुझे सजा इसलिए दी कि उनकी आज्ञा मैंने टाली थी। मैं स्वर्ग में एक देवता था, पर मैंने ईश्वर की आज्ञा भंग की। ईश्वर ने मुझे एक स्त्री की आत्मा लेने भेजा था। मैं उड़कर धरती पर आया। देखता हूं कि स्त्री वह अकेली है, बेहाल पड़ी, और अभी हाल जुड़वा बच्चियों को जन्म देकर चुकी है। बच्चियां मां के बराबर पड़ीं अपनी नन्हीं-सी जान से चिचियाकर रो रही हैं, पर मां उन्हें उठाकर छाती तक नहीं ले जा सकती। मुझे देखकर वह समझ गई कि मैं ईश्वर का दूत हूं और उसे लेने के लिए आया हूं। सो वह रोने लगी। बोली—"ओ परमात्मा के दूत! मेरे पति की राख अभी ठंडी भी नहीं हुई है। पेड़ गिरने से उसके असमय प्राण गये। मेरे

न बहन है, न चाची हैं, न मां। इन अनाथों को पीछे देखने वाला कोई नहीं है। देखो, मुझे अभी मत ले जाओ। बच्चों को दूध पिलाकर पाल-पोस देने दो कि वे पैरों चल जायं। तब बेखटके ले जाना। तुम्हीं सोचो बच्चे मां-बाप के बिना भला कैसे रहेंगे ?"

"मेरा जी पसीज आया और मैंने मां की विननी रक्खी। उठा कर एक बच्ची को मैंने उसकी छाती से लगा दिया, दूसरी को उसकी बांहों में दे दिया। वापस आया। स्वर्ग और ईश्वर के पास पहुंचकर कहा कि मैं उस मां की आत्मा को नहीं ला सका हूं। पति उसका एक पेड़ के गिरने से हाल ही में मरा है और उसके अभी दो जुड़वां बच्ची हुई हैं। सो उसका निवेदन है कि अभी मुझे न ले जाओ। कहने लगी कि मुझे बच्चों को पाल-पोस लेने दो कि वे चलने लगें, नहीं तो बच्चे मां-बाप के बिना कैसे जियेंगे ? मैंने इसलिए उन्हें अपना हाथ नहीं लगाया।

"ईश्वर ने कहा—'जाओ, उस मां की आत्मा को लो और तीन सत्य सीखो। सीखो कि आदमियों में किस तत्त्व का वास है, आदमी का क्या वश नहीं है, और वह किसका जिलाया जीता है। जब ये तीन बात सीख लोगे तब ही तुम फिर स्वर्ग वापस आ सकोगे।"

"सो मैं उड़कर फिर धरती पर आया और मां को उठा कर चला। बच्चियां तब उसकी छाती से गिर गईं और अंतिम करवट जो ली तो देह उसकी एक बच्ची पर जा रही। उससे उसकी बच्ची की एक टांग बेकाम हो गई। मैं आत्मा को लेकर ऊपर उड़ा कि ईश्वर के पास ले जाऊं। पर जाने कैसा एक हवा का चक्कर आया कि मेरे डैने गिरने लगे। मैं उड़ने में असमर्थ हो गया। मां की आत्मा फिर अकेली ईश्वर की तरफ उड़ गई और मैं धरती पर सड़क के किनारे आ गिरा।"

(११)

ननकू और मानवती अब समझे कि कौन था जो इन सब दिन उसके साथ घर में रहा-सहा था और घर में खाया-पिया था। वे गर्व और भय से भर आये।

देवदूत ने कहा—"मैं अकेला पड़ा था। अनजान, न कपड़ा था

न कुछ। आदमी होने से पहले मैं सर्दी या भूख नहीं जानता था। आदमी की कोई जरूरत नहीं समझता था। लेकिन वहां भूख मालूम हुई और मैं ठंड में ठिठुर जाने लगा। जानता नहीं था कि क्या करूं। तभी पास ईश्वर के नाम पर बनाया गया आदमियों का एक मंदिर मुझे दिखाई दिया। मैं वहां गया कि शरण मिलेगी। पर मंदिर में ताला जड़ा हुआ था और मैं अंदर जा नहीं सका। सो हवा की शीत से बचने के लिए मैं मंदिर के पीछे दीवार के सहारे उकडूं बैठ गया। सांझ हो रही थी। मैं भूखा था। दर्द और ठंड से बदन मेरा अकड़ जाता था। तभी एकाएक सड़क पर आते हुए एक आदमी की आहट मुझे मिली। हाथ में उसके एक जोड़ी जूते लटके थे और वह अपने आप से बात करता हुआ जा रहा था। खुद आदमी होने के बाद पहली बार मैंने मनुष्य का चेहरा देखा। वह मुझे बड़ा भयानक मालूम हुआ और उधर से मैंने आंखें मोड़ लीं। वह आदमी बात करता जाता था कि कैसे जाड़ों के लिए मुझे कपड़े बनवाने हैं, और बीबी के लिए क्या करना है, और बच्चों के लिए क्या करना है। मैं सोचने लगा कि मैं यहां पास ही सर्दी और भूख के मारे मरा जा रहा हूं और एक आदमी यह है कि अपने और अपनी स्त्री के लिए ही खाने-पहनने की बात सोचता है। वह मुझे मदद नहीं कर सकता। मुझे देखकर उस आदमी की भवें तन गईं और चेहरा भी भयावह हो आया। वह मुझ से कतराकर दूसरी राह निकल गया। मेरी आस टूट चली। लेकिन एकाएक जान पड़ा कि वह लौटा आ रहा है। ऊपर निगाह उठाकर मैंने देखा तो वह वही नहीं दीखता था। पहले उसके चेहरे पर मौत का डर था, अब जीवन वहां था और ईश्वर की सत्ता का चिह्न मुझे उस मुख पर मिला। वह आदमी मेरे पास आया। कपड़े दिये और मुझे फिर घर भी ले गया। घर आने पर एक स्त्री मिली और मुंह खुलना था कि वह मर्द से भी ज्यादा भयावनी मालूम हुई। वाणी में उसकी मौत विराजमान थी और उसमें से चारों ओर जो यम की गंध लपटें ले-ले कर फूटती थी उसमें सांस लेना मुझे दूभर हो गया। बाहर मैं चाहे सर्दी में ठिठुर मरूं, लेकिन मुझे वह अपने घर से निकाल बाहर करने को तैयार थी। मैं जानता था कि अगर ऐसा हुआ तो इसमें उसका अनिष्ट है। लेकिन पति का उसे

ईश्वर की याद दिलाना था कि वह स्त्री एकदम बदल गई। फिर वह मेरे लिए खाने को लाई और मुझे करुणा की आंखों से निहारा तब मौत का वास उसमें नहीं था, और उसमें विद्यमान ईश्वर की महिमा मुझे दिखाई दे आई। उस समय मुझे पहली सचाई की बात याद आई। ईश्वर ने कहा था कि यह जानो कि आदमी के अंतर में किसका वास है। और मैंने प्रतीति पा ली कि आदमी के अंदर प्रेम का वास है। मुझे हर्ष हुआ कि ईश्वर की कृपा-दृष्टि मुझपर बनी है और सत्य-दर्शन में वह मेरे सहाई हैं। तब सहसा मुझ-से मुस्कराहट फूट गई लेकिन अभी सब मैंने नहीं जाना था। जानना शेष था कि क्या आदमी का वश नहीं है और आदमी किसके जिलाये जीता है।

"मैं फिर आप लोगों के साथ रहने लगा और एक साल बीत गया। तब एक आदमी आया। वह जूते बनवाना चाहता था जो एक साल तक काम दें। न बीच में कहीं से उधड़ें, न बिगड़ें। मैंने उसकी ओर देखा। एकाएक देखता क्या हूं कि उस आदमी के ठीक पीछे-पीछे मेरा ही साथी है, जो उसे उठा लेने को आया हुआ है। मेरे सिवा उस यमदूत को किसी ने नहीं देखा। लेकिन मैंने उसे पहचान लिया और जान गया कि आज का सूरज छिपने न पायगा कि उससे पहले ही मेरा साथी उस आदमी की आत्मा को ले उड़ेगा। यह देख मैंने सोचा कि देखो, यह आदमी साल भर का बंदोबस्त कर रहा है, लेकिन उसे पता नहीं कि वह कै घड़ी का मेहमान है। उस समय मुझे ईश्वर का दूसरा वचन याद आया कि यह सीखो कि आदमी का वश क्या नहीं है ?

'आदमी के अंतर में किसका वास है, यह तो मैं जान गया था। अब जाना कि आदमी का वश क्या नहीं है। आदमी का यह वश नहीं है कि वह अपनी आगे की जरूरतें जाने। इस दूसरी सचाई का दर्शन पाने पर दूसरी बार फिर मुझे हर्ष की मुस्कराहट आ गई। एक बिछोह के बाद अपने स्वर्ग के साथी को देखकर भी मुझे आनन्द हुआ और परम संतोष हुआ कि ईश्वर ने मुझे दूसरे सत्य के दर्शन दिये।

"लेकिन अब भी सब मैं नहीं जानता था। तीसरा सत्य मुझसे ओझल बना था। वह यह कि आदमी किसके श्वास से जीता है। फिर कुछ दिन

बीते। मैं उत्कंठा में रहने लगा कि ईश्वर कब तीसरे सत्य का उद्घाटन करते हैं कि छठे साल जुड़वां बहनों को लेकर वह महिला आई। देखते ही उन लड़कियों को मैंने पहचान लिया। फिर क्या सुनी कि कैसे वे बच्ची पलीं और जीती रहीं। वह सुनकर मैंने सोचा कि मां ने उन बच्चियों के लिए मुझे रोका था। मैंने उसकी यह बात मान ली थी कि बच्चे मां-बाप से जीते हैं। लेकिन देखो कि एक बिलकुल अनजान औरत ने उन्हें पाला-पोसा और बड़ा किया। जब वह स्त्री उन बच्चियों को प्यार करती थी, जो उसकी कोख की नहीं थीं, और उस प्यार में उसकी आंखों में आंसू आ रहते थे, तब साक्षात् अशरण-शरण का रूप उनमें मुझे दिखाई दे आया। मैं समझ गया कि लोग किसके जिलाये यहां जीते हैं। उस समय मैं धन्य हो गया, क्योंकि ईश्वर ने तीनों सचाइयों के समाधान का मुझे दर्शन करा दिया था। मेरे बंधन कट गये, पाप क्षमा हो गये। और तब मैं तीसरी बार मुस्कराया।"

(१२)

अनंतर उस देवदूत का शरीर दिव्य होकर दसों दिशाओं में मिल गया। अब प्रकाश ही उसका परिधान था और आंखें उसपर ठहरती न थीं। वाणी गंभीर सुन पड़ी थी जैसे कि घन-घोष हो और स्वयं आकाश से दिव्य ध्वनि बिखरती हो। इसी वाणी में देवदूत ने कहा—

"मैं सीख गया हूं कि लोग अपनी-अपनी चिंता करके नहीं रहते हैं, बल्कि प्रेम से रहते है।

"बच्चियों की मां को नहीं मालूम था कि उनके जीवन को क्या चाहिए, न उस अमीर आदमी को मालूम था कि उसे क्या चाहिए, न किसी आदमी का वश है कि उसको मालूम हो कि शाम होने तक क्या होनेवाला है। कोई क्या जानेगा कि शाम तक भोग भोगना मिलेगा कि राख में मिलना बदा है!

"आदमी बनकर मैं जिंदा रहा तो इसलिए नहीं कि अपनी परवाह की या कर सका! बल्कि इसलिए जिंदा रहा कि एक राहगीर के दिल में प्रेम का अंश था। उसने और उसकी बीबी ने मुझपर करुणा की और मुझे प्रेम किया। अनाथ बच्चियां जीती रहीं, तो मां की चिंता के भरोसे नहीं, लेकिन

इसलिए जीती रहीं कि एक बिलकुल अनजान स्त्री के हृदय में प्रेम का अंकुर था और उसने उनपर दया की और प्यार किया। और सब लोग अगर रहते हैं तो अपनी-अपनी फिक्र करने के बल पर वे नहीं रहते, बल्कि इसलिए रहते हैं कि उनमें प्रेम का आवास है।

"मैं अबतक जान सका था कि ईश्वर ने मनुष्य को जीवन दिया कि वे जीयें। लेकिन अब मैं उससे आगे भी जानता हूं।

"मैंने जाना है कि ईश्वर यह नहीं चाहता कि लोग अलग-अलग जियें। इसलिए हक नहीं है कि कोई जाने कि किसीकी अपनी जरूरतें क्या हैं। ईश्वर तो चाहता है कि सब एक्य-भाव से जियें। इसलिए सब-को पता है कि सबकी जरूरतें क्या हैं।

"अब मैं समझ गया हूं कि चाहे लोगों को पता हो कि वह अपनी फिक्र करके जीते हैं, लेकिन सचाई में तो प्रेम है ज़ो उन्हें जिन्दा रखता है। जिसमें प्रेम है, वह भगवान में हैं और भगवान उसमें है। क्योंकि भगवान प्रेममय है।"

इतना कहकर देवदूत ने ईश्वर की स्तुति की, जिसकी गूंज से मानो सारा वाताकाश हिल गया। तभी ऊपर छत खुली और धरती से आसमान तक एक जलती लौ की ज्योति उठती चली गई। ननकू और उसके स्त्री-पुत्र चमत्कार से सहमे-से धरती पर आ रहे। तभी देवदूत में प्रकाश के पंख उग आये और वह आकाश में उड़कर अंतर्द्धान हो गया।

ननकू को चेत आया तो मकान ज्यों-का-त्यों खड़ा था और घर में उसके कुनबेवालों के सिवाय कोई न था।

: ८ :

करीम

पुराने राज की बात है कि एक समय मध्य-देश में करीम नामका एक काश्तकार रहा करता था। बाप उसका अपने बेटे का ब्याह करने के एक साल बाद परलोक सिधार गया था। धन-संपदा उसने कुछ बहुत पीछे नहीं छोड़ी थी। कुछ जोड़ी बैल थे—दो गाय और काम को दो घोड़े। पर

करीम को इंतजाम करना आता था, इससे वह उन्नति करने लगा। पति-पत्नी सबेरे रात होने तक खूब काम करते। औरों से सबेरे उठ जाते और सोते सबसे पीछे थे। इस तरह साल-पर-साल उनकी दौलत में बढ़वारी होती गई। होते-होते थोड़ा-थोड़ा करके करीम के पास खूब संपदा हो गई। तीस-पैंतीस बरस बीते होंगे कि उसके पास दो सौ से ऊपर बैल हो गये थे। अस्तबल में कोड़ियों घोड़े। भेड़-बकरियों की तो शुमार क्या। और काम के लिए नौकरानियां और नौकर थे। वे ही सब करते थे। दूध के काढ़ने और सब तरह की सेवा भी वे करते थे। सबको तनख्वाह मिलती थी। करीम के पास हर चीज की खूब इफरात थी और दूर-पास के सब उसके भाग्य पर विस्मय और ईर्ष्या करते थे। कहते थे कि किस्मतवाला आदमी तो करीम है। उसके पास सबकुछ है। दुनिया का मजा है तो उसे है।

अच्छे-अच्छे लोग और ओहदेवाले अफसर करीम की बड़ाई सुनते और उसकी जान-पहचान करना चाहते थे। दूर-दूर से लोग उससे मिलने को आते थे, करीम सबका स्वागत और सबकी खातिर करता था। खुलकर खिलाता-पिलाता और आवभगत करता था। कोई आओ, उसका भंडारा तैयार था। जो चाहो, वहां खाने में पा लो। मेहमान आते तब खास रसोई बना करती थी। जो कहीं तादाद कुछ ज्यादा हुई तो पूरी ज्यौनार के सामान हो जाते थे।

करीम के तीन संतान थीं। दो लड़के, एक लड़की। सबकी शादी कर उसने छुट्टी पाई थी। जब उसकी हालत ऐसी नहीं थी, मामूली थी, तो वे बच्चे मां-बाप के संग लगकर काम किया करते थे। खुद बैलों की सानी-पानी देखते-करते थे। लेकिन अमीरी आती गई तो वे बिगड़ते भी गये। एक को तो दारू की लत लग गई। बड़ा तो कहीं कोई फौजदारी कर बैठा और वहीं काम आ रहा। छोटे को ऐसी औरत मिली कि सरकश। सो बापका कहना अब बेटा नहीं सुनता था और दोनों जनों को अधिक काल साथ निभाना मुश्किल होता जाता था।

इससे दोनों अलग हो गये। करीम ने बेटे को मकान दे दिया और खासी तादाद में गाय-बैल भी उसकी तरफ कर दिये। इस तरह उसकी चल

ग्रौर ग्रचल संपदा कम पड़ गई। उसके बाद ही जाने कैसी एक बीमारी फूटी। उससे भेड़ों के रेवड़-के-रेवड़ सत्यानाश हो गये। फिर अकाल का साल आ गया और काश्त में सूखा पड़ा। बहुत-से चौपाये अगले जाड़ों में बेमौत मर गये। ऊपर से बनजारों का उत्पात हुआ और वे कई घोड़े चुरा ले भागे। इस तरह करीम की संपदा क्षीण होने लगी। वह घट-घटकर कम पड़ती जा रही थी। उधर उसकी काया का कस भी घट रहा था। आखिर सत्तर बरस का होते-होते वह दिन आया कि घर का माल-असबाब नीलाम-बोली पर चढ़ाना पड़ गया। कालीन-गलीचे, जीन-तंबू और इसी तरह की और चीजें घर से निकलकर बाजार में आने लगीं। यहां तक कि आखिरी बचे-खुचे बैलों की जोड़ियों से भी जुदा होने की नौबत आ गई। अब खाने के भी लाले पड़ गये। उसकी कुछ समझ न आया कि कैसे क्या हुआ और देखते-देखते सब संपदा हवा हो गई। सो करीम और उसकी बीबी को बुढ़ापे की उमर में दूसरे दर की नौकरी सोचनी पड़ी। करीम के पास कुछ न बचा था; बस तन के कपड़े थे; बुढ़िया बीबी और काम चलाऊ कुछ बासन-ठीकरे। बेटा अलग होकर एक दूसरे गांव आ रहा था और बेटी उसकी मर चुकी थी। सो उन बूढ़ों को मदद करनेवाला कोई न था।

उनका पड़ोसी था एक मोहम्मद शाह। मोहम्मद शाह की हालत ऐसी थी कि न बहुत इफरात थी, न गरीबी। अपने खाता-पीता था और मन का नेक आदमी था। करीम की पुराने दिन की बढ़ी-चढ़ी मेहमाननवाजी को उसने याद की और उसके मन में बड़ी दया आई। बोला—"करीम, तुम और तुम्हारी बीबी दोनों मेरे मकान पर आकर रहो। गरमी में मेरी खरबूजों की पलेज का काम देख लिया करना। जाड़ों में चौपायों की जरा सार-संभार कर देना। बीबी तुम्हारी गायों को थाम लेगी और दुह दिया करेगी। तुम दोनों का खाना-कपड़ा मेरे जिम्मे। और जब जिस चीज की जरूरत हो मुझे कह देना। वह मिल जायगी।" करीम ने अपने नेक पड़ोसी का शुक्रिया माना और वह और उसकी बीबी दोनों मोहम्मद शाह के यहां नौकरी पर हो गये। पहले तो उनको इसमें बड़ी मुश्किल मालूम हुई। पर

धीमे-धीमे वे इसके आदी हो गये। अपने बस बराबर मालिक का काम करते और सबर से बसर करते।

मोहम्मद शाह ने देखा कि इन लोगों से उसे बड़ा आराम हो गया है। पहले अच्छी हालत में और खुद मालिक रहने की वजह से इंतजाम की बाबत ये लोग यों ही सबकुछ जानते हैं। तिसपर आलसी नहीं हैं। और काम से बचते नहीं हैं। लेकिन उसके मन को दुःख रहता था कि देखो, बेचारे किस ऐश पर पहुंचकर आज कैसे मुसीबत के दिन देख रहे हैं।

एक बार मोहम्मद शाह के कोई नातेदार लोग दूर से उसके यहां मेहमान हुए। एक वायज मुल्ला भी उनके साथ थे। मोहम्मद शाह ने करीम को कहा कि एक अच्छी भेड़ लो और आज की दावत के लिये उसीको जिबह करो। करीम ने मन लगाकर सब तैयारी की। सब तरह का खाना मेहमानों के आगे रक्खा गया। सब लोग दस्तरखान पर बैठे खाना खा रहे थे कि करीम का उधर दरवाजे से गुजरना हुआ।

मोहम्मद शाह ने करीम को जाते देखकर एक मेहमान से कहा—"आपने उन जईफ को देखा जो अभी यहां से गुजर के गये हैं?"

मेहमान ने कहा—"हां। उसमें खास बात क्या है?"

"खास बात यह", मोहम्मद शाह ने कहा, "कि कभी वह यहां के सब से मालदार आदमी थे। नाम उनका करीम है। वह नाम आपने सुना भी होगा।"

मेहमान ने कहा—"जी हां, नाम तो खूब ही सुना है। पहले देखने का मौका नहीं आया, लेकिन इस नाम की शोहरत तो दूर-दूर तक फैली हुई है।"

"जी हां, लेकिन अब उनके पास कुछ नहीं बचा है और मेरे यहां मजदूर बनकर रहते हैं। उनकी बुढ़िया बीबी भी नौकर है। वह दूध दुहती है।"

मेहमान को बड़ा अचरज हुआ। उनका मुंह खुला रह गया। बोला—"किस्मत का भी एक चक्कर है। एक ऊपर उठता है तो दूसरा नीचे आता है। क्यों साहब, करीम बुढ़ापे की बदकिस्मती पर रंज तो जरूर ही मानते होंगे?"

"जी, कौन जानता है। वैसे यह सुकून से संजीदा और चुपचाप रहते हैं और काम सब तनदिही से करते हैं। रंजीदा दीखते तो नहीं हैं।"

मेहमान ने कहा—"क्या मैं उनसे बात कर सकता हूं? उनकी जिंदगी के बारे में पूछना चाहूंगा?"

"क्यों नहीं!" कहकर मेजबान ने आवाज देकर करीम को बुलाया। बोला—"बड़े मियां, जरा यहां आइए। आइए, इस शर्बत में तो शरकत कीजिए। अपनी बीबी मोहतरिमा को भी लेते आइयेगा।"

करीम बीबी के साथ वहां आया। मेहमानों को और मालिक को सलाम किया। फिर मुंह से दुआ दुहराता हुआ वहीं दरवाजे के पास नीचे बैठ गया। बीबी उधर परदे के पीछे से आई और मालिकन के पास जाकर बैठ गई।

शर्बत का गिलास करीम को दे दिया गया और जवाब में करीम ने झुककर शुक्रिया माना। मुंह से लगाया और फिर गिलास नीचे रख दिया।

उन मेहमानों ने कहा—"हजरत यकीन है कि आपको हमें देखकर कुछ रंज हो आता होगा। अपनी पहली खुशबख्ती के बाद आज की यह बदबख्ती आपको जरूर नागवार गुजरती होगी।"

करीम मुस्कराया। बोला—"अगर मैं आपको कहूं कि असल में खुशी क्या है और खुश-किस्मती क्या है तो आप मेरा यकीन नहीं करेंगे। इससे बेहतर हो कि आप मेरी बीबी से पूछकर देखें! वह औरत है जो मन में होगा वही उसकी जबान पर आ जायगा। वह आपको सब हकीकत बयान कर देगी।"

यह सुनकर मेहमान पर्दे की तरफ मुखाबित हुए। बोले-"बड़ी बी, पहले अमीरी के दिनों के मुकाबिले आज की यह बदबख्ती आपको भला क्यों कर बर्दाश्त होती होगी?"

उन मोहतरिमा ने पर्दे के पीछे से इसके जवाब में कहा—"जनाब, हकीकत उल्टी है और मैं अर्ज करती हूं। और मेरे खाविंद, हम दोनों पूरे पचास साल सुख की तलाश में रहे। अबतक वह कहीं पाया नहीं। पर इन पिछले दो सालों से जब हमारे पास कुछ नहीं रह गया है और मेहनत करके हम जीते हैं, मालूम होता है कि हमको असली सुख मिला है और जो आज

है उससे बढ़कर हम कुछ नहीं चाहते।"

मेहमानों को सुनकर अचंभा हुआ और मालिक मोहम्मद शाह भी ताज्जुब में रह गये। वह तो उठ तक पड़े और पर्दे को पीछे खींच दिया ताकि सब नजरभर उन मोहतरिमा को देख सकें।

वह खड़ी थीं, सीने पर हाथ बंधे थे और अपने बूढ़े खाविंद की तरफ देख रही थीं। मुस्कराहट उनके चेहरे पर थी और उधर बूढ़े करीम के मुंहपर भी मुस्कराहट थी!

वह कहने लगीं—"हकीकत कहती हूं। इसे मजाक न गिनियेगा। पचास साल तक हम खुशी की तलाश में रहे; लेकिन भटकते रहे। दौलत थी, तबतक खुशी नहीं हासिल हो सकी। अब जब सब जाता रहा है और मेहनत की नौकरी पर हम लोग लगे हैं, तब आकर वह खुशी भी मिली है जिसकी तलाश थी। अब हमें और कोई चारा नहीं है।"

मेहमान ने पूछा—"लेकिन उस खुशी का सबब क्या है? राज़ क्या है?"

"सबब और राज़ यह है", उन्होंने कहा, "कि जब दौलत थी तब हम दोनों के पीछे जाने कितनी और क्या फिकरें लगी रहती थीं। यहां तक कि आपस में बात करने का वक्त भी नहीं मिलता था। न खुदा का नाम ले पाते थे, न अपनी रूहानी भलाई की कुछ बात सोच पाते थे। मेहमान आये दिन बने रहते और हमें धुन रहती कि क्या तश्तरियां उनके आगे पेश की जायं, और क्या खातिर की जाय कि वे पीठ पीछे हमारी बुराई न करें, वाह-वाही करें। उनसे छूटने पर नौकरों की फिक्र लग जाती। वे काम से आंख बचाते और खाने के वक्त अच्छा चाहते थे। उधर हमारी कोशिश रहती कि उनसे ज्यादा-से ज्यादा काम वसूल किया जाय, और एवज मिले कम-से-कम। इस तरह गुनाह का एक चक्कर चलता रहता था। फिर बराबर डर बना रहता था कि कोई बछिया न मर जाय, घोड़ा न जाता रहे। चोर का डर रहता था और जंगली जानवर का डर रहता था। रात जागते बीतती थी कि कहीं कुछ नुकसान न हो रहा हो। और रह-रहकर और उठ-उठकर हम माल की चौकसी करते थे। एक फ़िक्र मिटती कि दूसरी आ दबाती। और

नहीं तो ऐसी ही बात सोचते कि जाड़ों में अब के चरी का कैसा पूरा डालना होगा। और फिर हम दोनों में अक्सर तफरका पड़ जाया करता।

वह कहते ऐसा होना चाहिए, मैं कहती कि नहीं वैसा होना चाहिए। इस तरह हम झगड़े पैदा किया करते, अगर्चे फिर मिल भी जाते। गर्ज कि एक मुसीबत से दूसरी मुसीबत और एक गुनाह से दूसरा गुनाह, सिलसिला इस तरह चलता रहता और जिसे सुख कहा जाय, वह नाम को न मिल पाता।"

"और अब ?"

"अब सबेरे उठते हैं तो हम दोनों के मन हलके रहते हैं। बीच में तनाव की कोई बात नहीं रह गई। अब मुहब्बत और दिल का इत्मीनान हमारा नहीं टूटता। कोई फिकर अब हमें नहीं है। यही खयाल रहता है कि मालिक की खिदमत कैसे अंजाम दें। जितना कस है उतना हम काम करते हैं, और इरादा नेक देखते हैं। सोचते हैं कि हमारे मालिक को नुकसान न होने पाये, नफा ही हो। काम से लौटकर आते हैं तो खाने-पीने को हमें मिल जाता है, सर्दी में तापने को आग मिल जाती है और कपड़ा भी तन को काफी हो जाता है। अब मन की दो बात करने को भी समय है। खुदा का नाम ले सकते हैं और आकबत की सोच सकते हैं। पचास बरस तक हम सुख की तलाश में भटके। आखिर अब हमें वह मिला है।"

मेहमान हँसने लगे—

लेकिन करीम ने कहा—"हँसिये नहीं, मेहरबान। मजाक की बात यह नहीं है। जिंदगी की हकीकत बयान की है। हम भी पहले वेवकूफ बने और दौलत के चले जाने पर रंज मानने लगे थे। पर अब खुदावंदकरीम ने असलियत हमपर जाहिर कर दी है। वही आपसे अर्ज की है। अपनी तसल्ली के लिए नहीं, बल्कि सच पूछिए तो आपकी भलाई के वास्ते !"

और उनके साथ के वायज मुल्ला ने उस बात की ताईद की।

कहा—"बेशक, यह सही है। करीम ने हकीकत कही है। कुरान-शरीफ में हजरत पैगम्बर ने भी यही फर्माया है।"

यह सुनकर मेहमानों का हंसना रुक गया और चेहरे संजीदा हो आये।

: ६ :

आदमी और जानवर

एक दिन किसान सबेरे-तड़के हल-बैल लेकर अपने खेत की तरफ चला। साथ रोटी ले ली। खेत पर पहुंच कर उसने हल संभाला और रोटी चादर में लपेट कर झाड़ी के नीचे रख दी। फिर काम में लग गया। दोपहर तक काम करते-करते बैल थक गया और उसे भी भूख लग आई। तब उसने बैल को चरने खोल दिया, हल को एक तरफ किया और चादर में रक्खी अपनी रोटी लेने बढ़ा।

चादर उठाई, पर यह क्या! रोटी क्या हुई? उसने यहां देखा, वहां देखा। चादर को उलटा-पलटा, झाड़ा; लेकिन रोटी वहां थी कहां? किसान को माजरा कुछ समझ में न आया।

उसने सोचा कि है यह अचरज की बात। मुझे दीखा नहीं तो क्या, पर कोई-न-कोई यहां आया जरूर है और रोटी ले गया है।

असल में वहां था पाप-दानव का एक चर। किसान उधर काम कर रहा था कि उसने ही रोटी चुरा ली थी। अब भी वह झाड़ी के पीछे छिपा बैठा था, आशा में था कि किसान रोए-झींकेगा, बकेगा और बुद-दुआएं देगा।

रोटी चले जाने पर कृषक दुःखी तो हुआ, पर सोचा कि अब हो क्या सकता है। आखिर उसके बिना कोई मैं भूखा तो मर ही नहीं गया। और जिसने रोटी ली होगी जरूरत की वजह से ही ली होगी। सो चलो, उसका ही भला हो।

यह सोच, पाप के कुएं पर जा, उसने भरपेट पानी पिया और थोड़ा-सा सुस्ताने लगा। तनिक विश्राम के बाद अपना बैल ले, जोत, फिर खेत गोड़ने में लग गया।

यह देख वह चर मन-ही-मन फीका पड़ गया। सोचा था कि किसान मन मैला करेगा और कोसा-कासी करेगा। पर उससे तो किसी के लिए एक बुरा शब्द नहीं निकला।

सो इसकी खबर उसने जाकर दी अपने मालिक पाप-दानव को। बताया

कि मैंने तो उस किसान की रोटी तक चुरा ली; लेकिन उस भले आदमी ने गाली तो क्या देना, उल्टा कहा कि जिसने ली हो चलो, उसीका भला हो।

दानव सुनकर बहुत बिगड़ा। कहा कि शर्म की बात है कि आदमी तुमसे बढ़ जावे। तुम अपना काम नहीं जानते। अगर किसान लोग और उनकी बीबियां ऐसी नेक होने लगीं तो फिर हम दानव कुल वालों का क्या ठिकाना रहेगा। समझे? फौरन वापस जाओ और बिगड़ी बात बनाओ। तीन साल के अन्दर जो तुमने किसान की नेकी पर काबू नहीं पा लिया तो तुमको वैतरनी में फेंक दिया जावेगा। सुना? अब जाओ।

चर मालिक की धमकी पर सहमा-सहमा पृथिवी पर वापस आया। सोचने लगा कि क्या करूं, क्या न करूं कि मेरा काम पूरा हो। खूब सोचा, खूब सोचा। आखिर एक युक्ति उसे सूझी।

उसने एक मजूर का वेष धरा और जाकर उसी किसान के यहां नौकरी कर ली। पहले साल उसने कहा कि इस बार नीची दलदली जमीन में नाज बोओ। किसान ने उसकी बात पक्की रखकर वैसा ही किया। विधि की करनी कि उस साल खूब सूखा पड़ा और सबकी फसल धूप के ताप में प्यासी मारी गई। लेकिन इस किसान की खेती खूब फूली और फली। पौध खूब लम्बी हुई और खूब घनी और बाल में दाना भी बड़ा आया। कटकर इतना नाज हुआ, इतना नाज हुआ कि उस बरस को भी काफी हुआ और आगे के लिए भी बहुतेरा बच गया।

अगले साल उस चर ने सलाह दी कि अबकी टीलेवाली जमीन पर बोना चाहिए। बात मानी गई और वहीं बीज डाला। उस साल वर्षा इतनी हुई कि बहुत। दूसरे सब लोगों की खेती झुक गई, गल गई और बाल में दाना भी नहीं पड़ा। पर चर के मालिक किसान के खेत टीले पर बालों की झूमर पहने लहराते रहे, उनका कुछ नहीं बिगड़ा। इस बार पहले से भी ज्यादा गल्ला किसान को बचा। अब तो उसके खलिहान इतने अटाअट भर गये कि उसे समझ न आता था कि इस सबका क्या करूं।

ऐसे समय उस चर ने मालिक को बताया कि इस-इस तरह नाज में से खींचकर दारू तैयार की जा सकती है और दारू वह चीज है कि क्या कहा

जाय । उसकी निसबत बस किसीसे नहीं दी जा सकती ।

किसान ने वही किया । तेज शराब तैयार की । खुद पी और दोस्तों को पिलाई ।

इतना करके वह चर अपने मालिक दानव के पास आया । कहा, "मालिक, मैंने कामयाबी पा ली है और आपका काम पूरा हो गया है ।"

दानव ने कहा, "अच्छा, हम खुद चलकर देखते हैं कि तुमने क्या किया है ।"

दानव और चर दोनों किसान के घर आये । देखते क्या हैं कि वहां तो पास-पड़ोस के आसूदा किसान निमंत्रित हैं और शराब की दावत दी जा रही है । एक जशन समझो । किसान की स्त्री साकी बनी मेहमानों को शराब दे रही है ।

इतने में किसीसे टकरा कर स्त्री लड़खड़ाई और शराब उसके हाथ से बिखर गई । इसपर पति ने कहा कि कमबख्त, तुझे कुछ सूझता नहीं है । इस नियामत को तूने ऐसी-वैसी चीज समझ रखा है कि लुढ़काती फिरती है ? कमीनी वेहया ?

चर ने धीमे-से कुहनी मारकर मालिक को दिखाया कि देखिए, यही वह आदमी है जिसने अपने मुंह की रोटी छिन जाने पर भी गुस्सा नहीं किया था !

किसान, औरत को अलग हटाकर, अब भी उसपर तर्राता हुआ, खुद जाम भर-कर लोगों को देने लगा । इतने में एक गरीब, मेहनती काम से लौटते हुए उधर ही आ निकला । वह पार्टी में निमंत्रित नहीं था । लेकिन सबको जयरामजी की करता हुआ वह भी वहां आन बैठा । हारा-थका था । सबको पीता देख जी हुआ कि उसे भी एक घूंट मिले । वह बैठा रहा, बैठा रहा । मुंह में उसके पानी आ-आ गया । लेकिन मेजबान किसान ने उसे नहीं पूछा । उल्टे कहा कि हर ऐरा-गैरा आ जाय तो उसे पिलाने को मैं इतनी कहां से लाता फिरूंगा, तुम्हीं बताओ ।

यह सब देख दानव प्रसन्न हुआ । लेकिन उसके चर ने कहा कि अभी क्या हुआ है, आप देखते जाइये । जाने क्या-क्या बाकी है ।

क्या घर के, क्या बाहर के, सबने खुलकर हाथ बंटाया। पहले दौर पर उन लोगों ने आपस में चिकनी-चुपड़ी तकल्लुफ की बातें शुरू कीं। वह मायाचारी की बातें थीं।

दानव सुनकर खुश हुआ और अपने चर को शाबाशी देने लगा। कहा कि शराब से कैसा लोमड़ी का-सा कपट उन्हें आ गया है। इस चीज में अगर यह सिफत है कि लोग एक-दूसरे को धोखा देना चाहने लगते हैं, तो बस फिर क्या है, फतह हुई रक्खी है।

चर ने कहा कि आप अभी देखते जाइये। अभी तो वे लोमड़ी की तरह एक-दूसरे की तरफ दुम हिला रहे हैं और डोरे डाल रहे हैं। शराब का एक-एक दौर और, तो वे जंगली भेड़िये बने दीखेंगे।

सो सबने एक दौर और चढ़ाया। उसके बाद उनकी बातचीत फूहड़ होती जाने लगी। चिकनी-नमकीन बातों की जगह अब वे एक-दूसरे को तरेरने और गालियां देने लगे। बक-झक हुई और मार-पीट की उनमें नौबत आ गई। देखते देखते सब आपस में झगड़ने लगे। मेहमान मेजबान का फर्क न रहा, बखेड़े में मेजबान भी शामिल हुए और उनकी भी गति बनी।

दानव इस सब करामात पर खूब खुश हुआ। चर से कहा कि यह काम तुम्हारा एक नम्बर का है। मैं तुमसे खुश हूं।

पर चर ने कहा कि अभी और बाकी है। आगे इससे भी बढ़कर दृश्य आप देखेंगे। अभी भूखे भेड़िये की तरह लड़ रहे हैं। एक जाम और, और वे सूअर की मानिन्द बन जायंगे।

फिर तीसरा दौर चला। उसके बाद उनमें और सूअर में फिर भेद ही क्या रह गया था। बेसुध, वे चीखते थे और रेंकते थे। कोई किसीकी न सुनता था। उन्हें सँभालना मुश्किल था और एक-दूसरे पर गिरे जाते थे।

फिर जशन बिखरने लगा। लोग लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते, एक-एक, दो-दो, तीन-तीन करके वहां से गलियों की राह बिदा हुए। घर का मालिक मेहमानों को रवाना करने बाहर आया कि वह भी मुंह के बल औंधा कीच में गिरा। सिर से पैर तक लिथड़ा हुआ सूअर की भांति वह वहीं बड़बड़ाता हुआ पड़ा रहा।

पाप-दानव यह सब देखकर अपने चर से संतुष्ट हुआ। कहा, "शाबाश, तुमने खूब चीज ईजाद की है। पहली भूल तुम्हारी सब माफ हुई। लेकिन मुझे बताओ कि वह चीज तुमने बनाई कैसे? पहले तो जरूर उसमें तुमने लोमड़ी का खून डाला होगा, जिससे लोमड़ी की माया-चारी पीनेवालों में आ गई। फिर मालूम होता है कि भेड़िये का खून उसमें मिलाया होगा। तभी तो भेड़िये की तरह वे खूंखार बने दीखते थे। और अन्त में सूअर का लहू भी रक्खा ही होगा कि वे सूअर की तरह बरनि लगे।"

चर ने कहा कि नहीं, उस सबकी जरूरत नहीं हुई। मैंने तो बस इतना किया कि जिससे किसान के पास जरूरत से ज्यादा नाज हो जाय। जानवर का खून तो आदमी के अन्दर रहता ही है। खाने जितना अन्न उसके पास रहे तब तक वह असर दबा रहता है। वही इस किसान का हाल था। पहले तो मुंह का कौर छिनने पर उसका मन कड़ुवा नहीं हुआ; पर जब पास जरूरत से ज्यादा हो गया तो उससे मौज-मजे करने की तबियत उसमें हो आई। बस उस समय मैंने उसे मौज की यह राह दिखा दी—दारू। ईश्वर की दी हुई नियामतों में से खींच कर अपने मजे के लिए जब वह दारू बनाने लगा तो लोमड़ी और भेड़िया और सूअर सबकी तासीर उसके अंदर से बाहर फूट आई। आदमी बस पीता रहे, फिर तो वह हमेशा जानवर बना रहेगा, इसमें शक नहीं।

दानव ने चर की पीठ ठोंकी। पहली चूक के लिए उसे क्षमा किया और कारगुजारी के लिए अपनी नौकरी में ऊंचे पद पर उसे बहाल किया।

: १० :

तीन जोगी

एक धर्माचार्य जहाज पर कलकत्ते से जगन्नाथ-धाम की यात्रा को जा रहे थे। उस जहाज पर और बहुत-से यात्री भी थे। समुद्र शांत था। वायु अनु-कूल और मौसम सुहावना! यात्री लोगों को कुछ कष्ट नहीं था। मिल-जुल कर खाते-पीते, गीत-गाते और चर्चा करते वह समय बिताते थे।

एक बार वह आचार्य डेक पर बाहर आये। वह इधर-उधर घूम रहे थे

कि देखते हैं कि आगे जहाज के मुहाने पर कुछ लोग जमा हैं। बीच में उनके एक केवट समंदर की तरफ इशारे से जाने क्या दिखा कर सुना रहा है। जिधर मछुए ने उंगली उठाकर बताया था, धर्माचार्य भी ठहर कर उधर ही देखने लगे। लेकिन उन्हें कोई खास बात दिखाई नहीं दी। धूप से समंदर की सतह ही चमकती दीखती थी। इसपर केवट की कहानी सुनने को वह पास आ गये। लेकिन उस आदमी ने उन्हें देखकर अपनी बात बन्द कर दी और आदर-भाव से प्रणाम किया। और यात्री भी संभ्रम से प्रणाम करके चुप हो गये।

"भाइयो", धर्माचार्य बोले, "मैं आपका कुछ हर्ज करने नहीं आया। यह भाई कुछ दिखाकर बतला रहे थे। सो मेरी भी सुनने को तबियत हुई कि क्या बात है।"

उनमें से एक यात्री जो औरों से साहसी थे, बोले—"तीन साधुओं की बाबत यह हमें कह रहे थे।"

"कैसे तीन साधु ?"

धर्माचार्य यह कहते हुए और आगे आ गये और वहां रक्खे एक बक्स पर बैठ गये।

"मुझे भी बताओ, कैसे साधु ?" मैं जानना चाहता हूं। और तुम इशारे से दिखला क्या रहे थे ?"

केवट ने आगे जरा दाहिनी तरफ इशारे से बतलाते हुए कहा—"वहां छोटा टापू दीखता है न ? जी, जरा दायें। जी, वही। वहां तीन जोगियों का बास है जो सदा आत्मा के उद्धार में लवलीन रहते हैं।"

"कहां, कौन-सा टापू ! मुझे तो कोई दीखता नहीं।" धर्माचार्य बोले।

"जी, वह दूर। मेरे हाथ की तरफ देखिये। वह छोटा बादल दीखता है, न, उसीके नीचे जरा दायें, एक बारीक लकीर-सी दिखाई देती है। जी वही टापू है।"

धर्माचार्य ने ध्यान से देखा। पर आंखों को अभ्यास नहीं था। इससे धूप में चमकते हुए पानी की सतह के सिवा उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। बोले—"मुझे तो दिखाई नहीं दिया। पर खैर, वह साधु कौन हैं जो वहां रहते हैं ?"

केवट बोला—"कोई संत लोग हैं। जोगी-ध्यानी। उनकी बाबत सुन तो मुद्दत से रक्खा था। पर दर्शन पारसाल से पहले नहीं किये।"

फिर केवट ने अपनी कथा सुनाई कि एक बार मैं नाव लेकर दूर निकल गया था। इतने में रात हो गई। दिशा का स्थान मैं सब भूल गया। आखिर उस टापू पर जाकर लगा। सबेरे का समय था। यहां-वहां भटक रहा था, इतने में मिट्टी की बनी हुई एक कुटिया मुझे मिली। उसके पास एक बूढ़े पुरुष खड़े हुए थे। तभी अन्दर से दो पुरुष और भी आ गये। सबने मिलकर मुझे वहां खिलाया-पिलाया और फिर मेरी नाव ठीक करने में भी मदद दी।"

धर्माचार्य ने पूछा—"वे साधु दीखते हैं ?"

"एक तो नाटे कद के हैं और कमर उनकी झुकी है। वह एक कफनी सी पहने रहते हैं और बहुत बुड्ढे हैं। मैं समझूं, सौ से तो काफी ऊपर होंगे। उनकी इतनी उमर हो गई है कि सफेद दाढ़ी कुछ हरी पड़ती जा रही है। पर चेहरे पर सदा उनके मुस्कराहट रहती है। और चेहरा ऐसा है कि देवता-स्वरूप। दूसरे उनसे लम्बे हैं लेकिन उनकी भी अवस्था बहुत है। वह फटा-टूटा देहाती ढंग का कुर्त्ता पहने रहते हैं। दाढ़ी उनकी भरी है और कुछ पीले-भूरे रंग की है। काया के खूब मजबूत। मैं उनकी भला क्या मदद कर सकता, कि उन्होंने तो मेरी डोंगी को ऐसे पलट दिया जैसे वह कोई तेलची हो। वह भी हँसमुख रहते हैं और चेहरे पर दया-भाव दीखता है। तीसरे का डील खासा है और दाढ़ी बरफ-सी सफेद घुटनों तक आ रही है। सौम्य दीखते हैं और सख्त। भवें घनी, आंखों पर झूलती मालूम होती हैं और वह बस कमर से एक चटाई का टुकड़ा लपेटे रहते हैं।"

"वे तुमसे कुछ बोले भी ?" धर्माचार्य ने पूछा।

"अधिकतर तो वे सब काम चुप रहकर ही करते हैं। आपस में भी बहुत ही कम बोलते हैं। देखकर ही तीनों एक दूसरे को समझ जाते हैं, जसे आंख से ही बोल लेते हैं। जो सबसे ज्यादा डील के हैं, मैंने उनसे पूछा कि आप क्या यहां बहुत काल से रहते हैं ? सुनकर उनकी भवों में सिकुड़न आई और जैसे नाराजी में कुछ गुनगुनाया। लेकिन जो सबसे वृद्ध थे, उन्होंने उनका हाथ अपने हाथ में लिया और मुस्कराने लगे। तब उनका गुस्सा

भी एकदम शांत हो गया। उन बूढ़ों के मुंह से बस इतना निकला—"हमपर दया रक्खो।" और कहकर मुस्करा दिये।

केवट यह कथा सुना रहा था कि टापू पास आने लगा।

उन साहसी आदमी ने उँगली से दिखाकर कहा—"अब श्रीमान् देखें तो टापू साफ नजर आ सकता है।"

धर्माचार्य ने देखा। सचमुच एक काली लकीर-सी दीखती थी। वहां टापू। कुछ देर उधर देखते रहकर आचार्य वहां से आये और जहाज के बड़े मांझी से पूछा—"वह कौन टापू है ?"

"वह ?" उसने कहा, "उसका कोई नाम तो नहीं है। ऐसे तो यहां बहुतेरे टापू हैं।"

"क्या यह सच है कि वहां अपनी आत्मा के उद्धार के लिए तीन फकीर रहते हैं ?"

"ऐसा सुनता तो हूँ, महाराज। पर मालूम नहीं, यह सच है, या क्या ? मल्लाह लोग कहते हैं कि उन्होंने उन्हें देखा है। पर कौन जाने कि अपना मनगढ़ंत दीख तक भी जाता हो।"

"हम उस टापू पर जाना चाहते हैं और उन आदमियों को देखना चाहते हैं।" धर्माचार्य ने कहा—"क्या यह हो सकता है ?"

उसने जवाब दिया कि ठेठ टापू तक तो जहाज जा नहीं सकता, हां नाव से आप जा सकते हैं। उसके लिए कप्तान से बोलना होगा।"

धर्माचार्य ने कप्तान को बुला भेजा। कप्तान से आने पर कहा—"मैं उन फकीरों को देखना चाहता हूँ। क्या मुझे किनारे पहुँचाया जा सकता है ?"

कप्तान ने कहा;—"जी हां, पहुँच सकते हैं। पर इसमें देर हो जायगी और गुस्ताखी न हो तो मैं श्रीमान को कहूं कि लोग ऐसे नहीं हैं कि श्रीमान उनके लिए कष्ट उठायें। सुना है कि वे बुड्ढे एकदम नादान हैं। न कुछ समझते हैं न जानते हैं। और बेजुबान ऐसे हैं कि जैसे जलचर मछली।"

धर्माचार्य ने कहा—"खैर, हम देखना चाहते हैं। देर की और कष्ट की चिंता न कीजिये। खर्च की भरपाई हमारे हिसाब से कर लीजियेगा। लाइए,

मुझे एक नाव दीजिये ।"

अब और क्या हो सकता था। लाचार वैसा ही हुक्म दे दिया गया । बादबान फिरे और जहाज को टापू की तरफ मोड़ दिया गया । आगे सामने कुर्सी ला रखी गई । धर्माचार्य वहां बैठकर आगे देखने लगे और यात्री भी आसपास इकट्ठे हो गये और टापू की तरफ ताकने लगे । आंख जिनकी तेज थी, उन्हें जल्दी ही टापू के किनारे पेड़-पहाड़ियां दीख आईं । वहीं एक मिट्टी की झोंपड़ी भी दीखी । आखिर एक आदमी को खुद वह फकीर भी दिखाई दिये । कप्तान ने दूरबीन निकाली और उसमें से देखा। देखकर दूरबीन धर्माचार्य के हाथ में दी। बोला—"सचमुच तीन आदमी किनारे के पास खड़े तो हैं। वहां, वह जरा चट्टान के बाईं तरफ।"

धर्माचार्य ने दूरबीन लेकर ठीक-ठीक उसे लगाकर देखा कि हैं तो तीन आदमी। एक लम्बा है, दूसरा औसत कद का, और एक नाटा, छोटा और झुका हुआ है। तीनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े किनारे खड़े हैं।

कप्तान ने धर्माचार्य से कहा कि जहाज इससे आगे नहीं जा सकता। अगर श्रीमान किनारे जाना चाहते हैं तो नाव पर जा सकते हैं। हम यहीं लंगर डाले रहेंगे।

लंगर डाल दिया गया। पाल ढीले हो गए और जहाज झटके के साथ रुक गया। फिर नाव नीचे उतारी गई और खेनेवाले मल्लाह पतवार लेकर उसपर तैयार हो बैठे। तब धर्माचार्य भी उमरकर वहां अपने आसन पर आ बैठे। मल्लाहों ने खेना शुरू किया और नाव किनारे की तरफ बढ़ चली। कुछ दूर से उन्हें तीनों आदमी साफ दिखाई दे आये। जो सबसे लम्बा था, कमर से चटाई लपेटे था। उससे छोटा फटा-टूटा देहाती कुर्त्ता पहने था और नाटा जिसकी उम्र बहुत थी और कमर झुकी थी, सनातन कफनी में था। तीनों हाथ-में-हाथ रक्खे खड़े थे।

मल्लाहों ने किनारे नाव लगाई और धर्माचार्य के उतरने तक नाव को थाम रक्खा।

तीनों बुड्ढों ने आचार्य को झुककर नमस्कार किया। धर्माचार्य ने आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद पाकर वे और भी नीचे झुक आये।

तब धर्माचार्य उन्हें कहने लगे—"मैंने सुना है कि आप सज्जन पुरुष अपनी आत्मा के उद्धार के हेतु यहां रहते हैं और भगवान से स्व-पर कल्याण की प्रार्थना करते हैं। मैं भगवान का एक तुच्छ दास हूं। उनकी कृपा और आदेश से जगत के प्राणियों को सन्मार्ग बताने का काम करता हूं। मेरी इच्छा हुई कि आप भगवान के सेवक हैं, सो आपके पास आकर जो बने, आपकी सहायता करूं और जो जानता हूं, बताऊं।"

वे तीनों वृद्ध इसपर मुस्करा कर एक-दूसरे को देखने लगे और चुप रहे।

धर्माचार्य ने कहा—"मुझे बताइये कि आप लोग अपनी आत्मा की रक्षा के निमित्त क्या करते हैं? और इस द्वीप पर परमात्मा की सेवा-साधना किस प्रकार करते हैं?"

इस प्रश्न पर सूरा फकीर मंद भाव से अपने सबसे वृद्ध साथी को देख उठा। इसपर वह पुरातन पुरुष मुस्कराया और बोला—"ईश्वर की सेवा तो हमको मालूम भी नहीं है। ईश्वर के दूत, हम तो सब अपने को पाल लेते हैं और अपनी सेवा कर लेते हैं।"

"लेकिन ईश्वर की प्रार्थना आप किस प्रकार करते हैं?"

"प्रार्थना! हम तो इस तरह कहते हैं, 'तीन तुम, तीन हम। हमपर दया रखना मालिक'!"

यह कहने के साथ तीनों ने प्रकाश की तरफ आंख उठाई और एक आवाज से दुहराया—"तीन तुम, तीन हम। हमपर दया रखना मालिक।"

धर्माचार्य मुस्कराये। बोले—"मालूम होता है आपने त्रिमूर्त्त और त्रिगुणात्मक की कोई बात सुनी है। लेकिन आपकी प्रार्थना सही नहीं है। आप संत पुरुषों ने मेरा प्रेम जीत लिया है। आप ईश्वर की प्रसन्नता चाहते हैं। किन्तु ईश्वर की सेवा का मार्ग आपको ज्ञात नहीं है। प्रार्थनाकी वह विधि नहीं है। देखिए, सुनिए, मैं आपको बताता हूं। मैं कोई अपनी विधि नहीं बतला रहा हूं। शास्त्रों में सब प्राणियों के मंगल के लिए प्रार्थना की जो विधि विहित है, वही मैं आपको सिखाना चाहता हूं।"

कहकर आचार्य ने धर्म का तत्त्व उन फकीरों को समझाना शुरू किया कि कैसे परम पुरुष एक है, वही द्विधा होता है। फिर किस प्रकार प्रकृति, पुरुष

और आदि बीज-पुरुष, यह विचित्र रूप परमात्मा का संपूर्ण स्वरूप कहाता है।

ईश्वर ने पृथ्वी पर अवतार धारण किया कि धर्म की रक्षा हो। उन अवतारों की वाणी से हमें प्राप्त हुआ है कि ईश्वर की कैसे प्रार्थना करनी चाहिए। सुनिए, मेरे साथ-ही-साथ बोलिए—

"हे परम पिता !"

"हे परम पिता !'—पहले वृद्ध ने दोहराया।

"हे परम पिता !"—दूसरे ने कहा।

फिर तीसरे ने कहा—"हे परम पिता !"

"—जिनका कि आकाश में वास है।"

"—जिनका कि आकाश में वास है।"—पहले साधु ने दोहराया।

लेकिन दूसरा फकीर कहते-कहते भूल गया और तीसरे से उन शब्दों का उच्चारण ही ठीक नहीं बन पड़ा। उनके मुंह पर बाल बहुत घने थे, इससे आवाज साफ नहीं निकलती थी। सबसे वृद्ध वह पुरातन संत भी दांत न होने की वजह से शब्दों को पूरा-पूरा और सही नहीं बोल पाते थे।

धर्माचार्य ने प्रार्थना फिर दोहराई और फिर फकीरों ने उसे तिहराया। आचार्य वहां एक पत्थर पर बैठे थे, सामने तीनों बूढ़े जोगी खड़े थे। वे आचार्य के मुंह की हरकत को देख-देखकर उन्हीं की तरह प्रार्थना के शब्दों का ठीक-ठीक उच्चारण करने की कोशिश करते थे। धर्माचार्य ने दिनभर प्रयत्न किया। एक-एक शब्द को बीस-बीस, और कोई सौ-सौ बार दोहराया। पीछे पीछे वे साधु बोलते थे। बार-बार वे लड़खड़ाते भूलते, और गलत कहे चलते। लेकिन हर बार धर्माचार्य उन्हें सुधार देते थे और फिर नई बार शुरू करते थे। आचार्य ने परिश्रम से जी नहीं मोड़ा। आखिर उस ईश-प्रार्थना को अब जोगी आचार्य के बिना भी पूरी-की-पूरी बोल सकते थे। सबसे पहले प्रार्थना उस मंझले जोगी ने सीखी। उन्हें याद हुई कि फिर आचार्य ने उन्हींको बार-बार दोहराने को कहा। सो आखिर बाकी दोनों को भी वह कंठ होती गई। [illegible] सीख गये, तब आचार्य ने शांति पाई।

अब अंधियारा हो चला था और चांद ऊपर दीखने लगा था। अब धर्माचार्य ने अपने जहाज पर लौट चलने की सोची। उस समय उन [illegible]

उनके सामने धरती तक झुककर दंडवत् किया। धर्माचार्य ने बड़े प्रेम से उन्हें ऊपर उठाया और सबको गले लगाया। कहा कि आप लोग इसी तरह प्रार्थना किया कीजिए। अंत में वह नाव पर सवार होकर अपने जहाज को लौट चले। नाव में बैठे थे और मल्लाह नाव को जहाज की तरफ खे रहे थे, तब भी उन्हें फकीरों की आवाज सुन पड़ती रही। वे आचार्य की सिखाई प्रार्थना जोर-जोर से दुहरा रहे थे। नाव जहाज से आकर लगी। उस समय उनकी आवाज तो नहीं सुन पड़ती थी; पर चांद की चांदनी में वे ज्यों-के-त्यों खड़े हुए वहां अब भी दिखलाई देते थे। सबसे छोटे बीच में थे, मंझले बायें और लम्बे कद के जोगी दायें थे। धर्माचार्य के पहुंचने पर जहाज का लंगर उठा दिया गया। पाल खुल गये और जहाज उद्यत हो गया। बादबानों में हवा भरनी थी कि जहाज चल पड़ा। धर्माचार्य पीछे बैठकर जहा से आये थे, उस द्वीप के तट को देखते रहे। कुछ देर तक तो वे तीनों साधु निगाह में रहे। कुछेक देर बाद वे ओझल हो गये। द्वीप का किनारा फिर भी कुछ काल दीखता रहा। फिर शनैः-शनैः वह मिट गया। अब बस समंदर की लहराती चांदी की सतह चांद की चांदनी में चमकती दीखती थी।

यात्री लोग जहाज पर सो गये थे। चारों ओर शांति थी। पर आचार्य की सोने की इच्छा नहीं। वह अपनी जगह अकेले बैठे समंदर में उसी तरफ देख रहे थे जहां पर वह टापू था, पर जो दीख नहीं रहा था। उन्हें उन जोगियों की याद आती थी—"कैसे सज्जन संत प्राणी थे और ईश-प्रार्थना को सीखकर कैसे कृतार्थ मालूम होते थे।" उन्होंने प्रभु को धन्यवाद दिया कि प्रभु ने बड़ी कृपा की कि ऐसे सज्जन पुरुषों की सहायता का अवसर मुझे दिया और मुझे उन लोगों को वैदिक प्रार्थना सिखाने का सौभाग्य मिला।

आचार्य इस तरह सोचते हुए एकटक समंदर की सतह पर निगाह डाले उस टापू की दिशा में मुंह करके बैठे थे। चांदनी चमक रही थी। लहरें यहां-वहां किल्लोलें लेकर कभी धीमी आवाज से खिलखिल हँस पड़ती थीं। ऐसे ही समय अकस्मात् क्या देखते हैं कि चांद की किरणों से समंदर के पानी पर जो चमकीली राह-सी बन आई हैं, उसपर कोई सफेद झकझकाती वस्तु बढ़ती चली आ रही है। क्या है? समंदरी कोई जंतु है, या कि किसी किश्ती के

छोर में लगी धातु ही ऐसी झलक रही है ? अचरज से आचार्य की आंखें उसपर पड़ गईं।

उन्होंने सोचा कि जरूर यह कोई नाव हमारे पीछे आ रही है। लेकिन यह तो बड़ी तेजी से बढ़ी आ रही है। मिनट भर पहले वह जाने कितनी दूर थी, अब कितनी पास आ गई है। नहीं, नाव नहीं हो सकती। पाल तो कहीं दीखते ही नहीं हैं। जो हो, वस्तु वह कोई हमारे पीछे आ रही है और हमें पकड़ना चाह रही है।

लेकिन चीन्ह न पड़ता था कि क्या है। नाव नहीं, पक्षी नहीं, समंदरी कोई जंतु नहीं। आदमी ?—लेकिन आदमी इतना बड़ा कहां होता है। फिर वहां समंदर के बीच आदमी कहां से आ जाता ? धर्माचार्य उठे और बड़े मांझी से बोले—"देखो तो भाई, वह क्या है ?"

धर्माचार्य को मानो दीखा कि वे तो तीनों ही साधु मालूम होते हैं और पानी पर दौड़ते चले आ रहे हैं। दाढ़ी उनकी चमक रही है और खुद चांदनी की भांति उज्ज्वल दीखते हैं।

पर देखकर भी, जैसे आंखों का भरोसा न हो, आचार्य ने दुहराया—"क्या है, क्या चीज है वह, मांझी ?"

लेकिन साधु तो ऐसी तेजी से बढ़े आ रहे थे कि जहाज मानो चल ही न रहा हो, उनके आगे बिलकुल थिर पड़ गया हो।

मांझी तो उन जोगियों को उस भांति पानी पर चला आता देखकर दहशत के मारे सब भूल गया और पतवार से हाथ छोड़ बैठा। बोला—

"बाबा रे, वे जोगी तो हमारे पीछे ऐसे भागे आ रहे हैं कि मानो पांव तले उनके सूखी धरती ही हो।"

माँझी की आवाज सुनकर और यात्री भी जाग उठे और सब वहीं घिर आये। देखा तो तीनों साधु हाथ-में-हाथ डाले चले आ रहे हैं, और उनमें आगे के दो जहाज को ठहरने को कह रहे हैं। अचंभा देखो कि बिना पैर चलाये पानी की सतह पर वह तो चलते चले ही आ रहे हैं। जहाज ठहर भी न पाया था कि साधु आ पहुंचे। सिर उठाकर तीनों मानो एक स्वर से बोले—"हे उपकारक, ईश्वर के सेवक, हम लोगों को तुम्हारी सिखाई

प्रार्थना याद नहीं रही है। जबतक दोहराते रहे, वह याद रही। जरा रुके कि एक शब्द ध्यान से उतर गया। फिर तो सारी कड़ी ध्यान में से बिखरकर गिरती जा रही है। अब उसका कुछ भी ओर-छोर हमें याद में पकड़ नहीं आता। हे गुरुवर, हमें प्रार्थना फिर सिखाने की कृपा कीजिये।"

आचार्य ने सुनकर मन-ही-मन में राम-नाम का स्मरण किया और कहा—"हे संत पुरुषों, आपकी अपनी प्रार्थना ही ईश्वर को पहुंच जायगी। मैं आपको सिखाने योग्य नहीं हूं। मेरी विनय है कि मुझ पापी के लिए भी आप प्रार्थना कीजिएगा।"

कहकर आचार्य ने उन वृद्ध जनों के आगे धरती तक झुककर नमस्कार किया। वे जोगी फिर लौटकर समंदर पार कर गये और जहां वे आंख से ओझल हुए, सवेरा फूटने तक वहां प्रकाश जगमगाता रहा।

: ११ :

आम बराबर गेहूं

एक बार एक नदी की अमराई में कुछ बच्चे खेल रहे थे कि उन्होंने एक चीज पाई। देखने में वह गेहूं के दाने जैसी मालूम होती थी। अधबीच में उसके एक लकीर बनी थी जैसे दो दल जुड़े हों। लेकिन दाना वह इतना बड़ा था जैसे देशी आम।

एक मुसाफिर ने बच्चों के हाथ में उसे देखा तो दो-एक पैसा देकर उसे ले लिया। वह मुसाफिर फिर उसे ले गया और राजधानी के नगर में वहां राजा के हाथ अजायबात के नाम पर उसे बेचकर दौलत बनाई।

राजा ने अपने दरबार के नवरत्न पंडित बुलाये। कहा कि यह चीज क्या है सो बतावें। पंडितों ने बहुत सोचा, बहुत विचारा; पर उन्हें उस चीज का कुछ अता-पता नहीं मिला। आखिर एक दिन वह दाना खिड़की पर रक्खा था कि मुर्गी उड़कर आई और उसमें चोंच मारने लगी। इस तरह उसमें छेद हो गया। तब पंडितों ने देखा कि अरे, यह तो गेहूं का ही दाना है। इसपर पंडितों ने राजा से जाकर कहा—"महाराज, यह दाना अन्नराज गेहूं का है।"

यह सुनकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पंडितों से कहा कि

कहां और कब ऐसा नाज का दाना पैदा हुआ, इसका पता आप लगाकर दें। पंडित लोग फिर सोच में पड़ गये। उन्होंने अपनी पोथियां टटोलीं और शास्त्र छाने। लेकिन इस बाबत कोई जानकारी हाथ नहीं आई। आखिर राजा के पास आकर बोले—

"हम कुछ नहीं बता सकते, महाराज। इस बारे में हमारी पोथियों में कोई उल्लेख नहीं मिला। इसके लिए तो किसानों से पूछना होगा, महाराज! शायद कोई उनमें अपने पुरखाओं से जानता हो कि कहां और कब गेहूँ का दाना इतना बड़ा उगा करता था।"

सो राजा ने हुक्म दिया कि बड़ी-बड़ी उमर के किसान लोग उनके सामने लाये जावें। आखिर ऐसा एक आदमी आया जिससे पता चलने की आस बंधी। वह राजा के साम्हने हुआ। बुड्ढा था और कमर उसकी झुक गई थी। दांत थे नहीं। चेहरा मुलतानी मिट्टी-सा पीला था। दो बैसाखियों के सहारे ज्यों-त्यों लड़खड़ाता महाराज की उपस्थिति में वह लाया गया।

राजा ने यह दाना उसे दिखाया। लेकिन बुड्ढे की आंख मुश्किल से देखने लायक थीं। उसने उसे हाथ में लेकर टटोलकर देखा।

राजा ने पूछा—"बता सकते हो कि ऐसा दाना कहां और कब उगा? क्या तुमने ऐसे बड़े दानों का नाज कभी खरीदा है, या कभी अपने खेत में बोया या उगाया है?"

वह बुड्ढा कान का कुछ ऐसा निपट बहरा था कि राजा की बात मुश्किल से सुन सका और काफी देर में वह उसकी समझ में आई। आखिर उसने जवाब दिया—"नहीं, ऐसा नाज न मैंने बोया है, न कभी काटा है, न कभी खरीदा है। जब नाज बेचा-खरीदा करते थे तब भी दाना जैसा आज है उतना ही छोटा होता था। लेकिन मेरे बाप से आप पूछकर देखें। उन्होंने शायद सुना होगा कि ऐसा दाना कहां उगता था।"

इसपर राजा ने बाप को लाने का हुक्म दिया। उसकी खोज-खबर हुई और आखिर महाराज के सामने उसे लाया गया। वह एक बैसाखी से चलता हुआ आया। राजा ने उसे दाना दिखाया। उस किसान ने दाने को गौर-से देखा। वह अपनी आंखों से अब भी भली प्रकार देख सकता था।

राजा ने पूछा—"अब बतला सकते हो, चौधरी कि यह कहां से पैदा होता है ? क्या इस तरह का नाज कभी तुमने खरीदा-बेचा या अपने खेत में बोया-उगाया है ?"

वह आदमी थोड़ा ऊंचा तो सुनता था, लेकिन अपने लड़के जैसा उसका बदहाल न था।

उसने कहा—"नहीं, मैंने ऐसे दाने का नाज अपनें खेत में न बोया, न काटा। और बेचने-खरीदने की जो बात आपने कही मैंने नाज कभी खरीदा नहीं और न बेचा। क्योंकि हमारे जमाने में सिक्के का चलन ही नहीं था। सब अपना नाज उगा लेते थे और कमी होती या और जरूरत होती तो आपस में बांट-बदल लेते थे। मुझे मालूम नहीं कि यह नाज कहां की उपज है। हमारे जमाने का दाना आज के दाने से तो बेशक काफी बड़ा होता था और भारी होता था, लेकिन इस जैसा नाज का दाना मैंने आज तक नहीं देखा ; हां, मैंने अपने बाप को कहते सुना है कि उनके जमाने में गेहूं बहुत बड़ा होता था। और एक दाना बहुत चून देता था। आप उनसे पूछें।"

सो राजा ने इन बाप के बाप को भी बुला भेजा। खोज करने पर वह भी मिल गये और राजा के सामने लाये गये। वह बिना किसी लठिया के सहारे सीधे चलते हुए वहां आ गये। निगाह उनकी निर्दोष थी। कान ठीक सुनते थे और बोलते भी वह साफ और स्पष्ट थे।

राजा ने उन्हें दाना दिखाया। उन वृद्ध पितामह ने उसे देखा और हाथ में लेकर परखा। फिर बोले—"आज कहीं मुद्दत बाद ऐसा गेहूं देखने को हमें मिला है।" यह कहकर उन्होंने कतरकर जरा जीभ पर लिया।

बोले—"हां, यह वही किस्म है।"

राजा ने कहा—"पितामह, बतलाइए कि कब और कहां ऐसा गेहूं उगा करता था ? क्या आपने ऐसा अन्न कभी खुद मोल लिया है या अपने खेत में लगाया है ?"

उन वृद्ध पुरुष ने उत्तर दिया—

"राजन्, मेरे जमाने में ऐसा अन्न सब कहीं हुआ करता था। मेरी जवानी

ऐसे नाज पर ही पली है। औरों को भी ऐसा ही नाज मैंने खिलाया है। ठीक इसी तरह का दाना हमारे खेत की बालों में पड़ा करता था। उसी-को सब बोते, काटते और गाहते थे।"

राजा ने पूछा—"पितामह, यह बतलाइए कि यह दाना आप कहीं से मोल लाये थे या अपने आप उगा था ?"

वृद्ध पुरुष सुनकर मुस्कराये। बोले—"हमारे जमाने में अन्न बेचने जैसे पाप की कोई बात भी कभी नहीं सोच सकता था और सिक्के को हम जानते भी न थे। हरेक के पास अपना काफी रहता था।"

राजा ने कहा—"तो आपके वे खेत कहां थे और ऐसा नाज आप जाकर उगाते थे ?"

पितामह ने उत्तर दिया—"हमारे खेत क्या ? ईश्वर की यही धरती तब थी। जहां हल जोता और मेहनत की कि वहीं हमारा खेत हुआ। जमीन छूटी बिछी थी। मालिक-मिल्कियत की बात न थी। जमीन ऐसी कोई चीज नहीं थी कि मेरी-तेरी होती। हमारे जमाने में एक हाथ की मेहनत ही ऐसी चीज थी जिसमें लोग अपना हक मानते थे, नहीं तो कोई नहीं।"

राजा ने कहा—"दो सवालों का और जवाब दीजिए, पितामह ! पहला सवाल यह कि धरती पहले ऐसा दाना कैसे देती थी और अब देना क्यों बंद हो गया ? दूसरा यह कि आपका पोता तो बैसाखियों से चलकर यहां आया, बेटा एक लठिया के सहारे पहुंचा और आप बिना किसी सहारे के चलते आ गये। आपकी आंखों की रोशनी भी उजली है, दांत मजबूत हैं और बानी साफ और मधुर है, यह कैसे हुआ ?"

उन पुरातन पुरुष ने उत्तर दिया—

"ऐसा इसलिए हुआ कि आदमियों ने आज अपनी मेहनत के भरोसे रहना छोड़ दिया है और दूसरों की मेहनत का आसरा थाम कर रहते हैं। पुराने जमाने में लोग ईश्वर के नियम पालते थे और वैसे रहते थे। जो उनका था, वही उनका था। दूसरे की मेहनत और उसके फल पर उन्हें लोभ नहीं होता था।"

: १२ :

काम, मौत और बीमारी

भारत के आदिम लोगों में एक कथा प्रचलित है—

कहते हैं कि भगवान ने पहले-पहल आदमी तो ऐसा बनाया था कि उसे काम-धाम की जरूरत नहीं थी। न रहने को मकान चाहिए था, न पहनने को कपड़े। तन यों ही पलता था और सबकी सौ बरस की उमर होती थी। और रोग-शोक का किसीको पता न था।

कुछ काल बाद भगवान ने अपनी सृष्टि की ओर मुंह फेरकर देखा कि उसका क्या हाल है। देखते क्या हैं कोई अपने जीवन से खुश नहीं है और वहां कलह मची हुई है। सबको अपनी-अपनी लगी है और हालत ऐसी बना डाली है कि जीवन आनंद के बदले क्लेश का मूल हो रहा है।

ईश्वर ने सोचा कि यह बात इसलिए हुई कि सब अलग-अलग अपने-अपने लिए रहते हैं।

इससे हालत को बदलने के लिए ईश्वर ने एक काम किया। ऐसा बंदोबस्त कर दिया कि काम बिना जीवन संभव ही न रहे। सर्दी के दुःख से बचने के लिए रहने को जगह बनानी पड़े—चाहे खोदकर गुफा बनाओ, चाहे चिनकर मकान खड़े करो। और भूख मिटाने के लिए फल या अनाज बोना, उगाना और काटना पड़े।

ईश्वर ने सोचा कि काम से उनमें संघ पैदा होगा और वे सम्मिलित बनेंगे। उन्हें औजार बनाने पड़ेंगे। यहां से वहां तैयार माल ले जाना होगा। मकान बनायेंगे। खेत जोतें और नाज बोयेंगे। कात-बुनकर कपड़ा बनायेंगे और इनमें कोई काम एक अकेले हो न सकेगा।

तब उन्हें समझ आ जायगी कि जितने एक मन से साथ होकर वे काम करेंगे उतनी ही बढ़वारी होगी और जीवन फले-फूलेगा। यह बात उनमें एका ले आयगी और सबकी ऐसे बरकत होगी।

कुछ काल बीता और भगवान ने फिर सृष्टि की ओर ध्यान दिया कि अब क्या हाल है। अब लोग पहले से चैन से तो हैं न।

लेकिन देखने में आया कि हालत पहले से खराब है । काम तो साथ करते हैं (क्योंकि और कुछ वश ही नहीं हैं) पर सब साथ नहीं होते। उनमें दल-वर्ग बन गये हैं। वे अलग-अलग वर्ग एक-दूसरे के काम के लिए छीना-झपटी करते हैं और एक-दूसरे की राह में रोक बनते हैं। इस खींच-तान में समय और शक्ति बरबाद जाती है। सो सबकी हालत बिगड़ी है और दिन-दिन बिगड़ती जाती है।

भगवान ने सोचा कि यह भी ठीक नहीं। अब ऐसा करें कि आदमी को अपनी मौत का कुछ पता न रहे। उसके बिना जाने किसी घड़ी वह आ जाय। आयु उसकी निश्चित न रहे। ऐसे आदमी आप संभल जायगा।

सो इसी प्रकार की व्यवस्था भगवान ने कर दी। उन्होंने सोचा कि मौत का ठीक ठिकाना आदमी को नहीं रहेगा तो एक-दूसरे से छीना-झपटी भी वह नहीं करेंगे। उन्हें खयाल होगा कि जाने कै घड़ी की जिंदगी है, सो ऐसे जिन्दगी के थोड़े से क्षणों को चलो, क्यों नाहक हम बिगाड़ें।

लेकिन बात उल्टी हुई। भगवान जब फिर अपनी सृष्टि को देखने आये तो क्या देखते हैं कि वहां तो जीवन पहले से, बल्कि उससे भी ज्यादा खराब है।

जो बलवान थे, उन्होंने यह देखकर कि आदमी तो चाहे जब मर सकता हैं, कमजोरों को मौत दिखाकर बस कर लिया है। कुछ को मार दिया, औरों को उसने डर से ही डरा दिया। होते-होते यह होने लगा कि वे ताकतवर लोग और उनकी संतान काम से जी चुराने लगी। उन्हें समय काटना ही सवाल हो गया और अपना आलस बहलाने के नाना उपाय वे करने लगे। और जो कमजोर थे, उन्हे इतना काम करना पड़ने लगा कि दम मारने की फुर्सत न मिलती। ऐसे दोनों तरह के लोग एक-दूसरे से खार खाते थे और बचते और डरते थे। दोनों दुखी थे और आदमी का जीवन पहले से गया-बीता और दुभर होता जाता था।

यह देखकर ईश्वर ने सुधार की एक तदबीर की। सोचा कि यह उपाय पक्का होगा। बहुत सोच समझकर भगवान ने आदमी के बीच तरह-तरह की बीमारियां भेज दीं। सोचा कि हरेक के सिरपर जब बीमारियां खेलती रहा

करेंगी तो जो अच्छे होंगे, वे बीमार पर और दुर्बल पर दया करेंगे और सहाय करेंगे, क्योंकि जाने वे खुद बीमारी में कब न फँस जायं। वे औरों पर दया करेंगे तभी अपने लिए दया की आस उन्हें हो सकेगी।

यह इन्तजाम करके भगवान निश्चित हुए। लेकिन फिर जो अपनी उस सृष्टि को देखने वह आये, जिसे अपनी करुणा में उन्होंने बीमारियों का दान दिया था, तो देखते हैं कि आदमी की हालत बद से बदतर है। उसकी भेजी बीमारियों से वह मिलना तो क्या, उल्टे आपस में और भी फटने-बँटने लगे हैं। ताकतवर लोग अपनी बीमारी में कमजोरों से और भी मेहनत कराने और अपनी सेवा लेने लगे हैं लेकिन खुद जब वे सेवक बीमार पड़ते हैं तो उन्हें पूछने भी नहीं आते हैं। और जिन्हें इस तरह खूब काम में जोता जाता और बीमारी में सेवा ली जाती है, वे खिदमत करते-करते थकान से ऐसे चूर हो जाते हैं कि बीमारी में अपनी या अपनों की कोई मदद नहीं कर सकते, और बस भाग-भरोसे हो रहते हैं। तिसपर धनी आदमियों ने इन गरीब लोगों के लिए खैराती अस्पताल वगैरह खड़े कर दिये हैं कि जिससे अपनी मौज में विघ्न न पड़े और गरीब दूर-ही-दूर रहें। वहां अस्पताल में गरीब बेचारे अपने सगे-स्नेहियों की सेवा से दूर हो जाते हैं कि जिससे थोड़ा ढाढ़स उन्हें पहुंच सकता था। फिर वहां ऐसे किराये के आदमियों और नर्सों के पल्ले वे पड़ते हैं कि जो बिना किसी दया-ममता के, बल्कि कभी तो झींक और तिरस्कार के साथ, दवा उनके गले उतार दिया करते हैं। तिसपर कुछ बीमारियों को छूत की मान लिया जाता है, और कहीं वह लग न जाय, इस डर से बीमारों से बचा जाता है और जो बीमार के पास रहते हैं, उनतक से दूर रहा जाता है।

यह देखकर भगवान ने मन में कहा कि अगर ऐसे भी इन लोगों को यह समझ नहीं आता है कि इनका सुख किसमें है तो फिर उन्हें दुःख ही मिलने दो। दुःख भोगकर ही वे समझेंगे। यह सोच भगवान ने उन्हें उनपर छोड़ दिया।

इस तरह आदमी को आजाद हुए मुद्दत बीत गई कि अब कहीं कुछ उनमें से समझे हैं कि कैसे वे प्रसन्न रह सकते हैं और रहना चाहिए। काम कुछ के लिए हौआ हो और दूसरों के लिए नित का कोल्हू, यह ठीक नहीं है।

बल्कि काम से तो सब मिल-जुलकर आपस में हेल-मेल और खुशी के साथ रहना सीखने की सुगमता होनी चाहिए। सिर पर जब मौत अड़ी खड़ी है और किसी पल भी वह आ सकती है तो वैसी हालत में आदमी के लिए समझदारी का काम यही हो सकता है कि वह अपनी आयु के क्षण, छिन-पल और वर्ष प्रीति, सेवा और भक्ति में बिताये। अब कहीं कुछ समझने लगे हैं कि बीमारी एक-से-एक को हटाने को नहीं है, बल्कि एक-दूसरे को प्रेम के और सेवा के सूत्र में पास लाने के लिए मिली है।

: १३ :

तीन सवाल

एक राजा था। एक बार उसने सोचा कि तीन बातें मालूम हो जायं, तो कभी कोई मन की साध अधूरी न रहे और सब काम पूरे हो जाया करें। एक तो यह कि कोई काम कब शुरू किया जाय। दूसरी कि कौन ठीक आदमी है जिनकी सुनी जाय और किनकी अनसुनी छोड़ दी जाय। तीसरी यह कि जरूरी काम कौन-सा है।

यह विचार आने पर उसने अपने सारे राज्य में ऐलान कर दिया कि जो कोई आकर ये तीन सवाल बतायेगा, उसे खूब इनाम मिलेगा। एक, हर काम का ठीक समय क्या है। दो, कि सबसे जरूरी आदमी कौन है और तीन, कि सबसे महत्त्व का काम कैसे जाना जा सकता है।

सो बड़े-बड़े विद्वान दूर-दूर से राजा के पास आये। सबने जवाब दिये। पर सबके उत्तर अलग-अलग थे।

पहले सवाल के जवाब में किन्हींने तो कहा कि हर एक काम वक्त के लिए बरस, महीने, दिन का पहले से एक गोशवारा तैयार रखना चाहिए। उसमें सब काम का समय नियत कर देना चाहिए। बस फिर एकदम उसीके अनुसार करना चाहिए। उनकी राय थी कि सिर्फ इसी तरह हर काम अपने ठीक वक्त से हो सकता है, नहीं तो नहीं। दूसरों का कहना था कि पहले से हरेक काम का समय बांध लेना ही मुमकिन नहीं है। असल में चाहिए यह कि बिना इधर-उधर की खामखा बातों में उलझे आदमी अपने आस-पास

का खयाल रक्खे। और जो जरूरी उपयोगी हो, वही करता चले। कुछ औरों ने बताया कि महाराज, आस-पास का कितना भी ध्यान रक्खो, लेकिन वास्तव में एक आदमी ठीक-ठीक हर काम का सही वक्त नहीं तय कर सकता। इसके लिए पंडितों की एक सभा होनी चाहिए जो इसमें महाराज की सहायता किया करे और प्रत्येक काम का उचित समय निर्धारित कर दिया करे।

लेकिन इसपर और बोले कि वाह, कुछ बातें ऐसी नहीं होतीं कि सभा में आयें तब कहीं जाकर फैसला हो। उनपर तो तभी-के-तभी निर्णय देना होता है कि क्या करें, क्या नहीं। लें, कि छोड़ें? लेकिन यह तय करने के लिए पहले कुछ पता होना जरूरी है कि किसका क्या फल होनेवाला है। और आगे की बात बस ज्योतिषी तंत्र-मंत्र जाननेवाले जानते हैं। सो हरेक काम का ठीक मुहूर्त्त जानने को पूछ कर चलना चाहिए।

दूसरे सवाल के भी जवाब उसी तरह सबके अलग-अलग थे। कुछ बोले कि राजा के लिए सबसे जरूरी लोग हैं राजदरबारी। किसीने कहा कि पुरोहित। औरों ने कहा वैद्य। कुछ और बोले कि नहीं, राज में सबसे जरूरी सिपाही होते हैं।

और तीसरे सवाल के जवाब में कि सबसे जरूरी काम कैसे जाना जाता है, कुछ ने तो जवाब दिया कि दुनिया में सबसे जरूरी वस्तु है विज्ञान।

औरों ने कहा कि जगत में रण-चातुरी सबसे बढ़कर बात है। कुछ अन्य बोले कि धर्म की पूजा से आगे तो कुछ भी नहीं है, वह श्रेष्ठ है।

जवाब सब अलग-अलग थे। सो राजा किन्हींसे राजी नहीं हुआ। और किसीको इनाम नहीं दिया। पर सवालों के ठीक जवाब पाने की इच्छा उसके मन में थी ही। सो एक जोगी से जाकर पूछने की उसने मन में ही ठहराई! उस जोगी के ज्ञान की दूर-दूर शोहरत थी।

वह जोगी एक बन में रहता था। कभी बाहर नहीं आता था। और देहात के सीधे-सादे लोगों के अलावा किन्हीं और से नहीं मिलता था। सो राजा ने अपना सादा वेष कर लिया और जोगी की कुटिया आने से पहले ही घोड़े से उतर पांव-पांव हो लिया। साथ के रक्षक सिपाहियों को वहीं छोड़ दिया और कुल एक—अकेला होकर चला।

राजा पास पहुंचा तो देखता है कि जोगी कुटिया के आगे धरती खोद रहे हैं। राजा को देखकर जोगी ने स्वागत-वचन कहे और फिर उसी तरह अपने खोदने में लगे रहे। जोगी की काया निर्बल थी और वह कृश थे। धरती में एक फावड़ा मारते कि उनकी सांस जोर-जोर से चलने लगती थी।

राजा ने पास जाकर कहा—"हे ज्ञानी जोगी, मैं आपके पास तीन सवाल पूछने आया हूं। पहला, ठीक काम का ठीक वक्त मैं कैसे जान सकता हूं। दूसरा कि कौन लोग मेरे लिए सबसे जरूरी हैं और इसलिए किनका औरों से मुझे विशेष खयाल रखना चाहिए। और तीसरा कौन काम सबसे महत्त्व का है जिधर मुझे पहले ध्यान देना चाहिए।"

जोगी ने राजा की बात सुनी, पर जवाब नहीं दिया। हथेली को थूक से गीलाकर फावड़ा ले आपने फिर खोदना शुरू कर दिया।

राजा ने कहा—"आप थक गये हैं, लाइये, मुझे फावड़ा दीजिये। कुछ देर मैं ही आपकी जगह काम कर दूं।"

"अच्छा—"

कहकर फावड़ा जोगी ने राजा को दे दिया और खुद अलग जमीन पर बैठ सुस्ताने लगा।

दो क्यारी खोद चुकने पर राजा रुके और उन्होंने अपने सवालों को दुहराया। जोगी ने फिर कोई जवाब नहीं दिया। पर खड़े हो गये और हाथ बढ़ाकर बोले—

"लाओ, अब तुम आराम करो। मैं खोद लेता हूं।"

पर राजा ने फावड़ा उन्हें नहीं दिया और आप ही खोदने लगा। एक घंटा बीता, फिर दूसरा बीता। ऐसे पेड़ों के पीछे सूरज छिपने लगा। आखिर राजा ने फावड़ा धरती में लगा छोड़, कहा—"हे ज्ञानी पुरुष, मैं अपने प्रश्नों के उत्तर के लिए आपके पास आया था। अगर आप मुझे कोई जवाब नहीं दे सकते तो वैसा कहिए, मैं घर चला जाऊंगा।"

जोगी ने कहा—देखो, वह कोई भागा आ रहा है। जाने कौन है।"

राजा ने मुड़कर देखा तो एक दाढ़ीवाला आदमी वन से भागा आ रहा था। उसने दोनों हाथों से पेट को अपने दबा रक्खा था और वहां से लहू

बह रहा था। राजा के पास पहुंचना था कि वह धीमी आवाज से कराहता हुआ गिर गया और बेहोश हो गया। राजा ने और जोगी ने उस आदमी के कपड़े खोले। पेट में उसके एक बड़ा घाव था। जैसे बन पड़ा राजा ने उस घाव को धोया और जोगी का अंगोछा ले अपना रूमाल फाड़ उसकी पट्टी-वट्टी बांधी। लेकिन खून रुकता नहीं था। राजा ने खून से तर-बतर पट्टी को फिर खोला और धोया और फिर पट्टी बांधी। ऐसे आखिर खून बहना बन्द हुआ तो आदमी होश में आया और उसने पीने को कुछ मांगा। राजा ने ताजा पानी लाकर उसे पिलाया। इतने में सूरज छिप गया था और सर्दी होने लगी थी। सो जोगी की मदद से राजा उस घायल आदमी को कुटिया के अन्दर ले गया और वहां बिछौने पर लिटा दिया। बिछौने पर पहुंचकर आदमी ने आंखें मींच लीं और उसे कुछ चैन मालूम हुआ। लेकिन राजा भी अब थक गया या। कुछ तो वह इतना चला था और कुछ काम की थकान थी। सो वह वहीं देहलीज के पास चौखट का तकिया लगा गुड़ी-मुड़ी लेट गया, लेटते ही सो गया और ऐसी नींद गाढ़ी आई कि गरमियों की वह छोटी रात जरा में कब निकल गई. पता नहीं चला। सबेरे पलक मींजता जो वह उठा तो कुछ देर तो उसे याद न आई कि कहां हूं और यह आदमी कौन है। वह अजनबी दाढ़ीवाला आदमी बिछौने पर पड़ा चमकीली आँखों से गौर बांधकर उसी की तरफ देख रहा था।

जब देखा कि राजा जग गया है और उसीकी तरफ देख रहा है तो दाढ़ीवाले आदमी ने धीमी आवाज में कहा—"जी, मुझे माफ कीजिये।"

राजा बोला—"भाई, मैं तो तुम्हें जानता नहीं हूं। और माफ मैं किस बात के लिए तुम्हें कर सकता हूं।"

घायल बोला—"आप मुझे नहींजानते हैं। लेकिन मैं आपको जानता हूं। मैं वही आपका दुश्मन हूं जिसने आपसे बदला लेने की कसम खाई थी। आपने मेरे भाई को फांसी दी थी और जायदाद छीन ली थी। मुझे मालूम था कि आप यहां जोगी के पास अकेले आये हैं। मन में ठहराया था कि लोटते वक्त मैं आपका तमाम काम कर दूंगा। लेकिन दिन पूरा हो गया और आप लौटे नहीं। सो मैं अपने छिपने की जगह से देखने के

लिए बाहर आया। बाहर आने पर आपके संतरी लोग मिले। उन्होंने मुझे पहचान लिया और घायल कर दिया। ज्यों-त्यों उनसे बच मैं भाग तो आया; लेकिन आप मेरे घाव पर पट्टी न बांधते तो मैं मर ही चुका था। सो देखो, मैंने तो आपको मारने की ठानी और आपने मेरी जान बचाई। अब मैं जीता रहा और आपने चाहा तो जन्म भर गुलाम की तरह आपकी ताबेदारी करूंगा और अपने बेटे को भी यही ताकीद कर जाऊंगा। आप मुझे माफ कर दें, यह विनती है।"

राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसे सहज दुश्मन से सुलह ही नहीं हो गई, बल्कि दुश्मन की जगह यह आदमी दोस्त हो गया। सो राजा ने उसे माफ ही नहीं किया, बल्कि कहा कि मैं अभी तुम्हारी तीमारदारी में अपने आदमी और राज-वैद्य भेज देता हूं। और जायदाद भी सब लौटाने का वचन राजा ने भरा।

घायल आदमी से रुखसत लेकर राजा जोगी को देखने बाहर आया। जाने के पहले एक बार फिर वह जोगी से अपने सवालों का जवाब पाने के लिए निवेदन करना चाहता था। जोगी बाहर धरती पर घुटनों के बल बैठ कल की खुदी क्यारियों में बीज बो रहे थे।

राजा पास आकर बोला—"हे ज्ञानी पुरुष, अंतिम बार मैं फिर आपसे अपने प्रश्नों के उत्तर के लिए प्रार्थना करता हूं।'

अपनी दुबली टांगों पर उसी तरह सिकुड़े धरती पर बैठे जोगी ने अपने सामने खड़े राजा की तरफ देखकर कहा—"जवाब तो तुमको मिल गया है, भाई।"

"मिल गया है?" राजा ने पूछा, "कैसे? आपका क्या मतलब है?"

जोगी बोले—"देखते नहीं हो, अगर कल मेरी दुर्बलता पर तुम दया नहीं करते, और मेरी जगह इन क्यारियों को नहीं खोदने लगते, बल्कि वापस राह लौट जाते, तो वह आदमी तुमपर हमला कर बैठता कि नहीं? और फिर यहां न ठहरने के लिए तुम पछतावा करते। सो सबसे जरूरी वक्त तुम्हारे लिए था जब तुम क्यारियां खोद रहे थे। और तब सबसे जरूरी आदमी तुम्हारे लिए था मैं। और फिर मेरी भलाई करना तुम्हें उस वक्त

सबसे जरूरी काम था। इसके बाद वह आदमी जब भागा-भागा हमारे पास आकर गिरा तो सबसे महत्त्व की घड़ी थी, जब तुम उसकी परिचर्या में लगे। क्योंकि अगर तुम घाव न बांधते तो मन में वह तुम्हारा वैर साथ लिये-लिये ही मरता। इसलिए उस समय वह तुम्हारे लिए सबसे जरूरी आदमी था और जो उसके अर्थ किया, वही तुम्हें सबसे महत्त्व का काम था। इससे याद रक्खो कि एक ही घड़ी है जो महत्त्व की है और वह हाल की घड़ी है। वही सबसे महत्त्व की है, क्योंकि वही घड़ी है जो हम जीते हैं और हमारे हाथ में होती है। और सबसे जरूरी और महत्त्व का आदमी वह है कि जिसके साथ इस घड़ी हम हों। क्योंकि कौन जानता है कि आगे किसी और दूसरे से मिलना हमारी किस्मत में बदा भी हो कि नहीं। और सबसे महत्त्व का काम है उस आदमी की उस वक्त की जो सेवा हो कर देना। क्योंकि वही एक काम है जिसको आदमी के हाथ देकर उसे यहां भेजा गया है।

: १४ :

हमसे सयाने बालक

रूस देश की बात है। ईस्टर के शुरू के दिन थे। बरफ यों गल चला था, पर आंगन कहीं-कहीं अब भी चकत्ते थे। और गल-गलकर बरफ का पानी गांव की गलियों में होकर बहता था।

एक गली में आमने-सामने के घरों से दो लड़कियां निकलीं। गली में था पानी। पानी वह पहले खेतों में चलकर आता था, इससे मैला था। बाहर गली के चौड़े में एक जगह खाली तलैया-सी बन गई थी। दोनों लड़कियों में एक तो बहुत छोटी थी, एक जरा बड़ी थी। उनकी माओं ने दोनों को नये फ्राक पहनाये थे। नन्हीं का फ्राक नीला था और बड़ी का पीली छींट का। और दोनों के सिर पर लाल रूमाल थे। अभी गिरजे से लौटी थीं कि आमने-सामने मिल गईं। पहले दोनों ने एक-दूसरे को अपनी फ्राक दिखाई और खेलने लगीं। जल्दी ही उनका मन हो उठा कि चलें, पानी में उछालें मारें। सो छोटी लड़की जूतों और फ्राक समेत पानी में बढ़ जाना चाहती थी कि बड़ी ने रोक लिया।

"ऐसे मत जाओ, निनी।" वह बोली, "तुम्हारी मां नाराज होंगी। मैं अपने जूते-मोजे उतार लेती हूं। तुम भी अपने उतार लो।"

दोनों ने ऐसा ही किया और अपने-अपने फ्राक का पल्ला ऊपर संभाल पानी में एक-दूसरे की ओर चलना शुरू कियां। पानी निनी के टखनों तक आ गया और वह बोली, "यहां तो गहरा है, जीजी, मुझे डर लगता है।"

जीजी का नाम था मिशा। बोली—"चली आओ, डरो मत। इससे और ज्यादा गहरा नहीं होगा।"

जब दोनों पास-पास हुईं तो मिशा बोली—

"खबरदार निनी, पानी न उछालो। जरा देखकर चलो।"

वह कह पाई ही होगी कि निनी का पांव एक गड्ढे में जाकर पड़ा और पानी उछलकर मिशा की फ्राक पर आया। फ्राक पर छींटें-छींटें हो गईं और ऐसे ही मिशा की आंख और नाक पर छींटे हो गये। मिशा ने अपनी फ्राक के धब्बे जो देखे तो वह नाराज हो उठी और निनी को मारने दौड़ी। निनी घबरा गई और मुसीबत देख वह पानी से निकल घर भागने को हुई। लेकिन ठीक तभी मिशा की मां उधर आ निकलीं। अपनी लड़की की फ्राक और उसकी आस्तीनें छींटे-छींटे गंदी हुई देख बोलीं—

"शैतान कहीं की, गन्दी लड़की, यह क्या कर रही है।"

मिशा बोली—"मैं नहीं निनी ने यह खराब किया है।"

सो मिशा की मां ने निनी को पकड़कर कनपटी पर एक चपत रख दिया। निनी हो-हल्ला करके रोने लगी। ऐसी कि सारी गली में आवाज पहुंच गई। सो उसकी मां निकल बाहर आ गई।

"तुम क्यों मेरी निनी को मार रही हो जी ?" कहकर वह फिर अपनी पड़ोसिन को खूब खरी-खोटी कहने लगीं। बात-पर-बात बढ़ी और उन दोनों में खासा झगड़ा हो गया। और लोग भी निकल आये। एक भीड़ ही गली में इकट्ठी हो गई। हर कोई चिल्लाता था, सुनता कोई किसी की नहीं था। वे झगड़ा किये ही गईं। यहां तक कि धक्कम-धक्का की नौबत आ गई। मामला मार-पीट तक आ लगा था कि मिशा की बूढ़ी दादी बढ़कर उनमें आई और समझाने-बुझाने की कोशिश करने लगी।

"अरी, क्या कर रही हो, भली मानसो ? अरी, सोचो तो कुछ। भला कुछ ठीक है और आज त्योहार-परब के दिन ! यह मंगल का दिन है, कि फजीते का ?"

पर बुढ़िया की बात वहां कौन सुनता था ? जमघट के धक्का-धक्के में वह गिरते-गिरते बची । वह तो निनी और मिशा ने ही मदद न की होती तो बुढ़िया के बस का कुछ न था । वह भला क्या भीड़ को शांत कर पाती ! पर उधर औरतें आपस की गाली-गलौज में लगी थीं कि इधर मिशा ने कीचड़ के छींटे-छींटे पोंछकर फाक साफ कर ली थी और फिर पानी की तलैया पर पहुंच गई थी । पहुंचकर क्या किया कि एक पत्थर लिया और तलैया के पास की मिट्टी को खरोंच-खरोंच कर हटाने लगी । जिससे रास्ता बन जाय और पानी गली में बहने लगे । यह देख निनी भी झट आकर उसकी कारगुजारी में हाथ बटाने लगी । लकड़ी की एक छिपटी ली और उससे मिट्टी खोदने लगी । सो ठीक जब स्त्रियां हाथा-पाई ही किया चाहती थीं, कि पानी उन नन्हीं लड़कियों के बनाये रास्ते से निकल गली की तरफ बढ़ा । वह उधर बह कर चला, जहां बुढ़िया खड़ी उन्हें समझा रही थी । पानी के साथ-साथ एक इधर तो दूसरी उधर दोनों लड़कियां भी चली आ रही थीं ।

"अरी, पकड़ इसे निनी, पकड़ ।" मिशा ने यह कहा तो, पर निनी को हंसने से फुर्सत नहीं थी । पानी में बही जाती हुई लकड़ी की छिपटी में वह बड़ी मगन थी । पानी की धार में आगे-आगे छिपटी को तैरते देखती, खूब मगन, वे मुन्नियां पौटी-दौड़ी उन लोगों के झुण्ड में ही आ पहुंचीं । उस समय दौड़ी बुढ़िया इन्हें देख, भीड़ से बोली—

"अरी, तुम लोगों को अपने पर शर्म नहीं आती । इन छोकरियों के लिए लड़ते जा रहे हो और इन्हें देखो कि कैसी ये सब-कुछ भूल चुकी हैं । वे तो मिली-जुली खुश-खुश खेल रही हैं । और तुम ! खुदा के बन्दो, तुमसे तो कहीं वे ही समझदार हैं ।"

सब लोगों ने उन नन्हीं लड़कियों को देखा और शर्मिन्दा हुए । फिर खुदपर ही हंसते हुए सब अपने-अपने घर चले गये ।

सो कहा ही है—"जबतक बदलोगे नहीं, और बच्चों जैसे ही नहीं हो जाओगे, किसी तरह रामकृपा और स्वर्गलोक न पा सकोगे।"

: १५ :

बदी छले, नेकी फले

पुराने जमाने की बात है कि एक आदमी रहा करता था। वह नेक और दयालु था। धन-माल सब तरह का उसके पास खूब था और बहुत-से गुलाम थे। गुलाम लोगों को भी अपने इस नेक मालिक पर अभिमान था।

वे कहते थे, "इस धरती पर तो हमारे मालिक जैसे कोई दूसरे होंगे नहीं। हमें अच्छा खाने-पहनने को देते हैं और काम भी हमारे बस जितना ही हमें देते हैं। मन में कीना कोई नहीं रखते। न कभी किसीको सख्त लफ्ज निकालते हैं। और मालिकों की तरह के वह नहीं हैं, जो गुलामों से ऐसे बरतते हैं जैसे जानवर। जो कसूर-बेकसूर उन्हें पीटते रहते हैं और कभी कोई मीठा बैन मुंह से नहीं निकालते। हमारे मालिक हित चाहते हैं, हमारी भलाई में ही रहते हैं और सदा मीठी बानी बोलते हैं। हमें तो सब सुख है। और इससे बढ़कर इस हालत की जिंदगी में हमें और चाहना क्या हो सकती है?"

इस तरह के वचनों से नौकर लोग मालिक की बड़ाई किया करते थे। पर पाताल-लोकवासी शैतान को इस पर बड़ी खीझ होती थी कि देखो, ये नौकर-मालिक दोनों कैसे आपस में हेल-मेल से रहते हैं। सो नौकरों में से उसने आलिब नाम के एक नौकर को फुसलाया। सो एक दिन जब सब-के-सब जमा थे और मालिक की बड़ाई की बातें कर रहे थे, उस समय आलिब ऊंची आवाज में बोला—

"मालिक की नेकी की इतनी बड़ाई क्यों करते हो, जी? हमीं बेवकूफ हैं, नहीं तो और क्या। देखो, सुनो। अगर पाताल-लोकवासी का सबलोग कहा करो तो वह हमपर भी कृपा करने को कहते हैं। अब तो हम अपने मालिक की खिदमत मे रहते हैं और सब कामों में उसकी मरजी निहारा करते हैं। मन में उनके कुछ आया नहीं कि झट दौड़कर हम उसे पूरा कर देते हैं।

सो वह हमारी तरफ नेक न होंगे तो क्या होंगे । बात तो तब देखी जाय कि हम उनका कहा न करें और नुकसान करके रख दें । तब देखना है कि वह क्या करते हैं । उस समय औरों की तरह गाली का बदला गाली से न दें, तब बात है । देख लेना कि जैसे बेरहम और मालिक होते हैं वैसे ही बेरहम हमारे-तुम्हारे मालिक भी निकलेंगे।"

पर और नौकरों ने आलिब की बात नहीं मानी। बोले कि नहीं जी, यह झूटी बात है । सो मतभेद पड़ा और बहस होने लगी । आखिर उनमें एक शर्त ठहरी । आलिब ने कहा कि अच्छी बात है, मैं उनसे गुस्सा लाकर दिखला दूंगा, नाकाम रहूं तो मेरी पोशाक तुम्हारी । और जो जीत गया तो तुम सबको अपनी पोशाक मेरे हवाले करनी होगी । यह भी ठहरा कि जीतने पर सब फिर उसकी हिमायत करेंगे और उसका कुछ बिगड़ने नहीं देंगे । सजा मिलेगी तो बचा लेंगे । जो कहीं पांव में बेड़ी डालकर हवालात में डाल दिया गया तो खोलकर रिहा कर देंगे । शर्त पक्की हो गई और आलिब ने अगले ही दिन मालिक में अविवेक ला दिखाने का वायदा किया ।

आलिब के जिम्मे चराई का काम था । भेड़ें उसके सिपुर्द थीं । उनके रेवड़ में कुछ बड़ी ही कीमती जात की भेड़ें भी थीं । मालिक उन्हें बहुत चाहते थे । उन भेड़ों पर उन्हें नाज था ।

अगले दिन सवेरे के वक्त मालिक के साथ कुछ मेहमान भेड़ों के बाड़े में आये । असल में मालिक उन्हें अपनी बेशकीमती ऊन देनेवाली भेड़ें बतानें को साथ लाये थे । उनके आने पर आलिब ने साथियों की तरफ आंख मटकाकर इशारा किया कि अब देखो, क्या होता है । देखना, मालिक झल्लाते हैं कि नहीं ?

नौकर-चाकर लोग बाड़े के इधर-उधर घिरकर खड़े थे । कोई बाड़े के द्वार की जाली में से देख रहा था, कोई ऊपर से ही उझककर । और पाताललोक से शैतान महाराज भी आकर ऊपर पेड़ पर चढ़कर बैठ गये थे कि देखें, हमारा सेवक अपना काम कैसा करता है ।

मालिक बाड़े के अन्दर चलते हुए आये । मेहमानों को मुलायम बालों वाले बचकाने मेमने दिखाते जाते थे । एक उनमें सबसे ही आला किस्म का

था, उसे खास तौर से दिखाना चाहते थे।

बोले कि यों तो ये भेड़ें भी कम कीमती नहीं हैं, लेकिन एक तो बेश-कीमती ही है। उसके सींग पास-पास हैं और ऐसे पेचदार और पैने कि बड़े खूबसूरत लगते हैं। जानवर क्या है, मेरी आंख का तो रुकन है।

बाड़े में अजनबी सूरत को देखकर भेड़ें और उनके बच्चे इधर-उधर छूट-छूटकर भागते थे। सो मेहमान गौर जमाकर उस बेशकीमती जानवर को नहीं देख पाते थे। वह कहीं एक जगह खड़ा होता कि आलिब अन-जान बना नागहानी रेवड़ को चल-बिचल कर देता था। सो फिर भेड़ें आपस में रल जातीं और किसी खास पर निगाह रखना मुश्किल हो जाता था। ऐसे मेहमान लोग ठीक-ठीक नजर में ही नहीं ला सके कि आला किस्म का जानवर उनमें है कौन-सा। आखिर मालिक भी इससे परेशान आ गये। बोले, "भैया आलिब, मेहरबानी करके उस मेमने को पकड़कर तो जरा सामने लाओ। हां, वही पेचदार सींग का गौहर। देखो, होशियारी से पकड़ना और छन दो-एक को उसे हाथ में थाम भी रखना।"

मालिक का कहना मुंह से निकलकर पूरा नहीं हुआ कि आलिब शेर की तरह उनमें घुसा और जोर से जाकर गरदन पर उस मुलायम मेमने को धर दबाया। उसकी खाल को एक हाथ से जोर से मुट्ठी में कसकर दूसरे हाथ से पिछली बाईं टांग से पकड़कर धरती से अधर में उठाकर लटका लिया और मालिक की आंखों के आगे ला किया। ऐसी झोंक और झटके के साथ यह किया कि पतली टहनी की तरह उस बेचारे की टांग मोच खा गई। आलिब ने इस तरह टांग तोड़ ही दी और मेमना धरती पर फड़फड़ाता गिरा। बाईं टांग तकलीफ के मारे मुड़कर लटक गई थी कि आलिब ने दाईं टांग से पकड़ लटकाया। मेहमान, आस-पास घिरे नौकर-चाकर उस समय दर्द से और सहानुभूति के मारे जैसे चीख ही पड़े। मगर ऊपर पेड़ पर चढ़कर बैठा हुआ शैतान अपने सेवक आलिब की चतुराई पर प्रसन्न हुआ। मालिक गुस्से के मारे ऐसे काले पड़ गये जैसे बिजली भरा बादल। भवें उनकी जुड़ आईं। पर वह सिर लटकाकर रह गये और एक शब्द भी नहीं बोले। मेहमान भी और नौकर-चाकर भी चुप्पी बांधे रह गये थे। सब

शांत थे कि अब जाने क्या होगा, कि कुछ देर गुम-सुम रहकर मालिक ने सिर झटका, जैसे कोई बोझ ऊपर से अलग किया हो। फिर सिर को सीधा कर आंखें अपनी आसमान की ओर उठाईं। कुछ देर आकाश में मुंह किये वह खड़े रहे कि इतने में चेहरे की सलवट विलय हो गई और वहां नीचे आलिब की तरफ देखकर मुस्कराहट के साथ बोले—

"ओ आलिब, तुम्हारे मालिक का तुम्हें हुक्म था कि मुझे गुस्सा दिलाओ। पर मेरे भगवान तुम्हारे मालिक से जबर्दस्त हैं। मैं तुमपर गुस्सा नहीं करूंगा, कि उल्टे तुम्हारे मालिक को गुस्सा करना हो जावे। तुम डरते हो कि मैं तुम्हें सजा दूंगा। तुम्हारे मन में मुझसे छूटने की मर्जी है तो अपने मेहमानों के सामने मैं तुम्हें आजाद करता हूं। जहां चाहे जाओ। और पोशाक और जो पास हो सब साथ ले जा सकते हो।"

इसके बाद मालिक मेहमानों के साथ घर लौट आयें। लेकिन शैतान दांत पीसता हुआ पेड़ से धरती पर आ गिरा और गिरकर पाताल में समा गया।

: १६ :

मूरखराज

(१)

एक समय किसी देश में एक किसान रहता था। खासी खाती-पीती हालत थी और तीन उसके बेटे थे। बलजीतसिंह, धनवीरसिंह और प्यारासिंह। बलजीतसिंह फौजी निकला, धनवीर कुशल कारबारी बना, पर प्यारासिंह मूरख था। लोग उसे मूरखराज कहते थे। एक लड़की भी थी, पीतमकौर। वह गूंगी और बहरी थी सो वह बिन ब्याही ही रही। बलजीत तो राजा की तरफ से फौज में लड़ाई करने गया, धनवीर शहर जाकर एक सौदागर के साथ व्यापार में लग गया और मूरखराज लड़की के साथ घर ही रहा। वहा धरती के काम में जुटकर रहता और कुनबे का गुजारा चलाता था। इसमें मेहनत उसे इतनी पड़ती थी कि कमर झुक जाती।

बलजीत ओहदे-पर-ओहदा पाता गया। सो एक अपना इलाका उसने खड़ा कर लिया और एक सरदार की बेटी से ब्याह किया। अच्छी उसे

तनख्वाह मिलती थी, ऊपर से भत्ता। और पास का इलाका भी कम नहीं था, फिर भी खर्च के वक्त हाथ तंग ही पाता था। असल में पति जो लाता, श्रीमती सब उड़ा देती थीं। इससे हाथ में पैसा कभी नहीं बचता था।

सो बलजीत एक बार अपने इलाके की जमीन में तहसील करने गया, पर वहां कारिंदा बोला कि अजी, आमदनी हो कहां से और पैसा कैसे जमा हो ? पास हमारे न हल-बैल हैं, न औजार हैं। गाड़ी नहीं, तांगा नहीं। पहले सामान हो, तब तो आमदनी हो।

इसपर बलजीत अपने पिता के पास गया। बोलो—"पिता जी, तुम्हारे पास जमीन है, जायदाद है और माल है। लेकिन मुझे कुछ हिस्सा नहीं मिला। ऐसा करो कि सब तीन हिस्सों में बांट दो और मेरा हिस्सा मुझे दे दो। मैं फिर उससे अपने इलाके को बढ़ा भी सकूंगा।

बूढ़े पिता ने कहा—"तुमने घर में कुछ लाकर रक्खा है जो तीसरा हिस्सा तुम्हें दे दूं ? और बेचारे मूरखराज और पीतमकौर के हित में यह अन्याय होगा।"

बलजीत बोला, "मूरख तो मूरख है, और पीतमकौर गूंगी-बहरी है। और उमर भी काफी हो गई है। इलाके-जायदाद का वे भला करेंगे भी क्या ?"

बूढ़े ने कहा—"खैर, मूरख से इस बाबत पूछ तो लें।"

मूरख आया। पिता के पूछने पर बोला—"पिता जी, जो ये चाहें, इनको दे दीजिए।"

सो बलजीत बाप के माल में से अपना तिहाई हिस्सा ले वहां से चल दिया। उसके बाद फिर वह राजा की फौज में लड़ाई के लिए जा पहुंचा।"

उधर धनवीर ने भी खासा धन पैदा किया और एक बड़े व्यापारी की लड़की से शादी की पर तबियत और पाने को भी होती थी। सो वह भी बूढ़े बाप के पास आया और बोला—"मेरा भी हिस्सा मुझे दे दो।"

लेकिन धनवीर को भी हिस्सा देने की मर्जी बूढ़े बाप की नहीं थी। बोले—"तुम क्या घर में कुछ ले आये हो जो मांगते हो ? घर में अब जो है मूरख की कमाई है। सो उसपर और बेचारी लड़की पर अन्याय मैं किस भांति करूं ?"

धनवीर बोला—"मूरख को क्या जरूरत है। वह ठहरा मूरख। शादी

उसकी हो ही नहीं सकती। कौन उसे अपनी बेटी देने बैठा है ? और न गूंगी पीतम के काम का कुछ है।"

यह कहकर धनवीर मूरखराज से बोला कि सुन मूरख, आधा गल्ला मेरे हवाले कर दो। तुम्हारे हल-औजारों में से मुझे कुछ नहीं चाहिए। और डंगरों में से कुछ नहीं चाहिए। लेकिन वह जो बादामी रंग की घोड़ी है, बस वह मैं ले लूंगा। वह तुम्हारे तो किसी खास काम की है भी नहीं।"

मूरख हँसा, बोला—"जो चाहो, भाई ले लो। और कुछ मुझे चाहिएगा तो मैं मेहनत कर ही लूंगा।"

सो धनवीर को भी अपना हिस्सा मिल गया। नाज-माल ढोकर वह अपने शहर चलता बना और बादामी घोड़ी भी ले गया। बस एक जोड़ी बैल और हल लेकर अपने मां-बाप और बहन का भरण-पोषण करने और गुजर-बसर चलाने के लिए मूरखराज घर रह गया।

(२)

लेकिन पाताल में रहता था एक शैतान। उसको बड़ी झुंझलाहट हुई कि देखो, तीनों भाइयों में बंटवारे का झगड़ा भी कोई नहीं हुआ। सब काम अमन-सुलह से हो गया। सो उसने अपने तीन चरों को बुलाया।

बोला—"देखो जी, ये हैं तीन भाई। बलजीत फौजी, धनवीर, व्यापारी और प्यारा मूरख। उन तीनों में कलह होनी चाहिए। उनमें कलह नहीं हुई और तीनों हेल-मेल से रहते हैं। असल में खराबी सब उस मूरख की है। उसी ने मेरा काम बिगाड़ रक्खा है। देखो, तुम तीनों जाओ और एक-एक करके उन तीनों भाइयों को कब्जे में लो। ऐसी तदबीर करो कि तीनों आपस में नोच-खसोट करने लगें और जान के ग्राहक हो जायं। बोलो, कर सकोगे ?"

तीनों बोले, "जी, कर लेंगे ?"

"भला, कैसे करोगे ?"

वे बोले—"पहले तो हम उनका धन-माल बरबाद कर देंगे। जब पास उनके खाने को न रहेगा तो तीनों को इकट्ठे एक जगह कर देंगे बस फिर आपस में वे ऐसे लड़ेंगे कि आप देखिएगा। यह पक्की बात है।"

"वाह, खूब ठीक, तुम लोग काम काम समझते हो और होशियार हो। अब जाओ और लौटना तब जब वे एक-दूसरे की जान के गाहक हो चलें। नहीं तो तुम जानते हो तुम्हारी जीती खाल मैं खिचवा लूंगा।"

वे तीनों चर वहां से चले और एक गढ़े में आकर सलाह करने लगे कि काम कैसे शुरू करें। खूब सोचा और खूब बहस की। असल में सब अपने लिए हलका और दूसरे को भारी काम चाहते थे। आखिर पक्का हुआ कि परची डालकर तय कर लिया जाय कि किसके जिम्मे कौन भाई आता है यह कि अगर एक का काम पहले निबट जाय तो वह आकर दूसरे की मदद में लगे। सो चरों ने परचियां डालीं और दिन नियत किया कि उस रोज सब जने फिर इसी गढ़े में आकर जमा हों। तब देखा जायगा कि किसका काम पूरा हुआ किसको मदद की जरूरत है।

आखिर वह दिन आया और निश्चय के मुताबिक तीनों चर गढ़े में आकर जमा हुए। हरेक फिर अपनी बीती सुनाने लगा। पहला, जिसने बलजीत फौजी का जिम्मा लिया था, बोला—"भाई, मेरा तो काम खूब चल रहा है। कल ही बलजीत अपने बाप के घर पहुंच जायगा।"

औरों ने पूछा—"यह तुमने किया कैसे ?"

बोला—"पहले तो बलजीत के अंदर मैंने हिम्मत भरी। हिम्मत के साथ-साथ घमंड। आखिर इतना बूता उसमें हो आया कि अपने राजा से बोला कि आपको मैं सारी दुनिया फतह करके दे सकता हूं। राजा ने इसपर उसे सिपहसालार बना दिया। कहा—'अच्छा, हिन्दुस्तान का मोरचा लो और जाकर वहां के राजा को शिकस्त दो।' सो दोनों की फौजें मोरचे पर मिलीं। पर इधर मैंने क्या किया कि बलजीत की छावनी की तमाम बारूद नम कर दी और हिन्दुस्तानी फौज के लिए रात-ही-रात में फूंस के इतने सिपाही बना दिये कि गिनती के बाहर।

"सो सबेरे बलजीत की फौज ने उन फूसी सिपाहियों को अपना घेरा डाले दखा तो वह घबरा गई। बलजीत ने गोली चलाने का हुक्म दिया। लेकिन तोप और बंदूक चल कहां से सकती थीं। सो बलजीत के सिपाही मारे डर के भेड़ों की तरह भाग निकले। भागने में उन्हें पकड़-पकड़कर हिन्दुस्तान

के राजा ने बहुतों को जम के घाट उतार दिया। बलजीत की बड़ी ख्वारी हुई। सो उसका सब इलाका छिन गया और कल फांसी चढ़ा देने की बात है। बस अब मुझे एक दिन का काम बाकी रह गया है। जाकर उसे बस जेल से छुड़ा देना है कि भागकर वह अपने घर जा पहुंचे। तुममें से जिसे मदद की जरूरत हो, कल मैं मदद को पहुंच सकता हूं।

उसके बाद दूसरा चर जिसने धनवीर को हाथ में लिया था, अपनी बीती सुनाने लगा। बोला—"मुझे तो भाई, किसी की मदद की जरूरत है नहीं। मेरा भी काम खासी कामयाबी से बढ़ रहा है। धनवीर को काबू में लाने में एक हफ्ता भी नहीं लगता। पहले तो खूब आराम दे मैंने उसे फुला कर मोटा कर दिया। फिर तो उसका लोभ इतना बढ़ गया कि जो दीखे उसीको रुपये से खरीद लेने की तबियत होने लगी। अब दुनिया भर का माल खरीदकर उसने भर लिया है। रुपया सारा उसमें गला जा रहा है, पर खरीद अब भी जारी है। अभी कर्ज का रुपया वह लगाने लगा है। कर्जा उसके गले में पत्थर की तरह बंध गया है। ऐसा वह उसमें उलझता जा रहा है कि छुटकारा हो नहीं सकता। हफ्ते भर में रुपया चुकती का दिन आने वाला है! उससे पहले ही जो माल उसने जमा किया है सो सब मैं सत्यानाश करके रक्खे देता हूं। कर्ज वह फिर चुका नहीं सकेगा और लाचार बाप के घर भागा आयेगा।"

इनके बाद वे दोनों प्यारे मूरखवाले चर से उसको कहानी पूछने लगे। बोले—"क्यों दोस्त, अब तुम बताओ, तुम्हारा क्या हाल है?'

वह बोला—"भाई, मेरा मामला तो ठीक रास्ते पर नहीं आ रहा है। बात कुछ बन ही नहीं रही है। पहले तो मैंने उसके दूध के कटोरे में कुछ मिला दिया कि पेट में उसके पीर हो आये। उसके बाद जाकर पीट-पीटकर खेत की धरती को ऐसा कर दिया कि पत्थर। जोतो तो वह जुते ही नहीं। मैंने सोचा था कि वह अब इसे क्या जोतेगा। पर मूरख जो अजब ठहरा। देखता क्या हूं कि वह तो हल लिये चला आ रहा है। आकर जमीन को गोड़ना उसने शुरू कर दिया। पेट की पीर से कराह-कराह पड़ता था, पर बंदा हल नहीं छोड़ता था। मैंने फिर क्या किया कि हल तोड़कर रख दिया। पर वह मूरख गया और घर जाकर दूसरा हल निकाल लाया और लगा फिर धरती को

गोड़ने। मैं फिर धरती के अन्दर घुस गया और हल की पैंड़ को पकड़ लिया। पर पकड़े रहता कैसे? हल पर अपना सारा बोझ देकर वह चलाने लगा। पैंड़ की धार पैनी थी और मेरा हाथ भी जख्मी हो गया। सो उसने सारा खेत जोत डाला है, बस जरा किनारी बची रह गई है। भाई, आकर मेरी मदद करो। क्योंकि उस पर काबू नहीं चला तो हमारी सारी मेहनत अकारथ जायगी। वह मूरख बाज न आया और ऐसे ही धरती के साथ कामयाब होता चला आया तो उसके भाइयों को भूख की नौबत न आयेगी और सबके पेट के लायक यह अकेला ही पैदा कर लेगा।"

बलजीत वाले चर ने कहा—"अच्छी बात है। मैं कल तुम्हारी मदद को आये जाता हूं।"

इसके बाद तीनों चर अपने-अपने काम पर चले गये।

(३)

प्यारे ने खेती की सारी धरती गोड़ डाली थी। कुल एक नन्हीं किनार बची रह गई थी। उसीको पूरा करने वह आ जुटा। पेट पिरा रहा था, पर खेत का काम तो होना ही चाहिए। सो जोता बैल, घुमाया हल और गुड़ाई शुरू कर दी। एक लीक उसने पूरी कर दी। दूसरे पर लौट रहा था तो हल फिसटता-सा मालूम हुआ, जैसे अन्दर किसी जड़ से अटक गया हो। पर असल में धरती में दुबक कर बैठा था वह चर। उसने ही हल की पैंड़ पर टांगें अपनी कसकर लिपटा ली थीं और उसे चलने से रोक रहा था।

प्यारे ने सोचा कि यह क्या अजब बात है। कल तो यहां कोई जड़-वड़ थी नहीं। फिर भी यह जड़ यहां आई तो कहां से आई।

सो झुककर गहरे हाथ देकर धरती के अन्दर उसने टटोला। अन्दर कुछ गीली-गीली और चिकनी चीज उसे छुई। प्यारे ने उस चीज को पकड़कर बाहर खींच लिया। जड़ की तरह की कोई काली वस्तु थी और कुलबुला रही थी। असल में वह उस चर की ही काया थी।

देखकर प्यारे बोला—"छिः, क्या गंध है।" कहकर हाथ ऊपर उठाया कि उस चीज को हल से दे मारे।

पर यह देखकर वह चर चीख पड़ा। बोला—"मुझे मत मारो। जो

बताओ, मैं वही तुम्हारे लिए करूंगा।"

"तुम क्या कर सकते हो?"

"जो कहो, वही।"

प्यारे ने सिर खुजलाया, बोला—"मेरे पेट में दर्द है। उसे अच्छा कर सकते हो?"

"जरूर कर सकता हूं।"

"तो करो अच्छा।"

सुनकर वह चर वहीं अन्दर धरती में घुस गया। वहां पंजों से खरोंचे-खरोंच, आसपास टटोल, आखिर एक जड़ी खींचकर बाहर लाया। जड़ में से उसकी, तीन शाख निकल रही थीं, लाकर प्यारे के हाथ में दे दी।

बोला—"यह देखिए, इन में जो कोई एक खायेगा, उसके सब रोग दूर हो जायंगे।"

प्यारे ने जड़ी को लिया। तीनों को अलग-अलग किया और एक उनमें से उसने खा ली। सो पेट का दर्द उसका खाते ही अच्छा हो गया।

इसके बाद चर ने कहा—"मुझे अब छोड़ दीजिये। मैं अब धरती में होकर सीधा पाताल चला जाऊंगा और फिर नहीं लौटूंगा।"

प्यारे ने कहा, "अच्छी बात है, जाओ। और भगवान तुम्हारा भला करे।"

भगवान का नाम प्यारे के मुंह निकलना था कि जैसे जल में कंकड़ गिरकर गायब हो जाय वैसे ही वह चर धरती में गिरकर लोप हो गया। वहां निशानी में बस एक सूराख रह गया।

प्यारे ने बाकी बची दोनों जड़ी को टोपी में खोंस लिया और अपने हल में लग गया। खेत की बची किनार उसने पूरी कर दी। फिर हल उलटाकर अपने घर लौट चला, बैलों को खोलकर बांध दिया और घर के अन्दर आया। वहां देखता है कि बड़ा भाई बलजीत और उसकी बीबी जीमने थाली पर बैठे हैं। बलजीत का इलाका-जायदाद सब जब्त हो गया था और जैसे-तैसे वह जेलखाने से निकल भागकर यहां बाप के घर दिन गुजारने आया था।

प्यारे को देखकर बलजीत ने कहा—"प्यारे, हम तुम लोगों के यहां रहने आये हैं। दूसरा बन्दोबस्त हो, तबतक मैं और मेरी बीबी तुम्हारे ऊपर हैं।

खयाल रखना।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है। खुशी के साथ यहां रहिये।"

पर हाथ-मुंह धोकर प्यारे जो आकर खाने साथ बैठने लगा तो बल-जीत की श्रीमती को अच्छा नहीं लगा। प्यारे के कपड़ों से उसे बास आती मालूम हुई। अपने पति से बोली—"ऐसे गँवार देहाती के साथ बैठकर मुझसे नहीं खाया जाता।"

सो बलजीत ने कहा—"प्यारे, तुम्हारी भाभी कहती है कि तुमसे बास आती है। सो तुम बाहर जाकर खा सकते हो।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है। यों भी रात मुझे बैलों की सानी-पानी को बाहर रहना था।"

सो रोटी ली और दोहर कंधे पर डाल बाहर ढोरों के सानी-पानी के काम में वह लग गया।

(४)

अपना काम निबटाकर बचन मुताबिक उस रात बलजीत का चर मूरख वाले अपने साथी की तलाश में आया। वह मूरख-प्यारे को बस में लाने में साथी की मदद करने आया था। पर प्यारे के खेत पर आकर उसने बहुतेरी खोज-ढूंढ़ की। पर साथी तो मिला नहीं, मिला वह धरती का सूराख।

सोचा—"जरूर कोई मेरे साथी पर विपत पड़ी है। सो मुझे उसकी जगह भरनी चाहिए। खेत तो खैर उसने पूरा खोद दिया है। सो चलकर चराई की जगह उस मूरख की खबर लेता हूँ।"

सो जाकर शैतान के बच्चे ने मूरख की जमीन को पानी-ही-पानी से भर दिया जिससे घास सब कीच से लथपथ हो गई।

मूरख सबेरे के वक्त बाहर चला। हँसिया उसने पैना लिया कि जाकर घास काटनी है। कटाई उसने शुरू की। पर दो-एक हाथ मारना था कि क्या देखता है कि हँसिया मुड़-मुड़ जाता है और घास कटती नहीं है। कहीं और धार पैनाने की जरूरत नहीं आ गई? कुछ देर तो प्यारे कोशिश करता रहा। फिर बोला—"ऐसे नहीं, घर चलकर कुछ लाऊँ कि हँसिया सीधा हो जाय। चलो शाम की रोटी भी लिये आता हूँ। देखा

जायगा जो होगा। हफ्ता भर चाहे क्यों न लगे। मुझे भी घास काटकर ही छोड़नी है।"

चर ने यह सुना तो सोचा—"यह मूरख तो लोहे का चना मालूम होता है। ऐसे यह बस में नहीं आयगा। कोई दूसरी तरकीब चलनी चाहिए।"

प्यारे लौटा। हंसिया सीधा किया और पैनाया और फिर घास काटने पर आ भिड़ा। पर चर इसबार धरती में घुसकर क्या करता कि हँसिये को बार-बार बेंटे से पकड़कर ऐसे घुमाता कि नोक उसकी धरती में आकर लगती। सो प्यारे को काम में बड़ी कठिनाई पड़ी। पर वह भी लगा ही रहा और दल-दल की जरा-सी जगह को छोड़ आखिर सब घास उसने काट ही डाली। तब चर आकर उस दलदल की धरती में बैठ गया। बोला—"चाहे मेरे पंजे कट जायं, घास मैं उसे नहीं काटने दूंगा।"

मूरख अन्त में उस दलदली जमीन पर पहुँचा। घास वहां ऐसी घनी तो नहीं थी, फिर भी हंसिया के बस न आती दीखती थी। प्यारे को गुस्सा चढ़ आया और हँसिया को पूरे जोर से घुमाकर मारने लगा। वह चर तव हार रहा। हंसिया का साथ पकड़े रहना उसे दूभर होता था। आखिर देखा कि यह बात भी ठीक नहीं बनी। सो एक झाड़ी में वह घुस बैठा। होते-होते प्यारे उधर भी बढ़ आया। झाड़ी को हाथ से पकड़ हँसिया जो उसने चलाया तो चर की आधी पूंछ कटकर अलग हो गई। खैर, घास की कटाई खतमकर उसने बहन को बताया कि इसकी दबिया कर डालो। फिर खुद जई के खेत पर पहुंचा। हंसिया साथ ले गया था। बेपूंछ का चर वहां पहले जा पहुँचा था। उसने जई की वालों को ऐसा उलझा दिया था कि हंसिया उनकी कटाई के लिए बेकाम पड़ गया। तो मूरख घर गया और दांतेदार दरांत ले आया। उससे जई उसने काट ली।

फिर बोला—"अब चलो, कल मकई शुरू करेंगे।"

पूंछकटे चर ने यह सुना और मन में यह कहने लगा कि खैर, यहां काबू में नहीं आता तो क्या। चलकर मकई में देखेंगे। सबेरे तक की ही तो बात है।

सबेरे जल्दी ही वह चर खेत पर पहुंच गया। वहां पर देखता क्या है कि मकई तो सब कटी बिछी है। प्यारे ने रात-ही-रात में सब काट डाली थी।

सोचा था कि ऐसे दाने कम बिखरेंगे और सोफते में काम हो जायगा। यह देख चर को बड़ा गुस्सा हुआ।

"देखो न कि कम्बख्त ने मुझे लहू लुहान कर दिया है और थका मारा है। लड़ाई न हुई, यह तो आफत हो गई। क्या मूरख से पाला पड़ा है कि रात को भी नहीं सोता। पार पाना उससे मुश्किल हो रहा है। खैर, मैं भी उसके पूलों में घुसा जाता हूँ और सब अन्दर से सड़ा दूंगा।"

सो वह चर जई के पूलों में दाखिल हो गया और सड़ांद फैलाना शुरू किया। पहले तो वहां गरमी पहुँचाई। पर इससे खुद को भी उसे ताप मिला और सरदी में गरमी पाकर वह चैन में सो गया।

प्यारे गाड़ी लेकर बहन के साथ जई ढोने आ पहुँचा। पूलों के ढेरों पर आ एक-एक कर उन पूलों को उसने गाड़ी में फेंकना शुरू किया। ऐसे दो-एक फेंके होंगे कि जेली लेकर उसने ढेर को सहलाहा। यह करना था कि जेली की नोक जाकर ऐन चर के बदनपर पड़ा और चर उसकी नोक में छिद गया। जेली को उठाया तो क्या देखता है कि उसकी नोक पर पूंछकटा कोई जंतु-सा लिपटा हुआ है, कुलबुला रहा है और छूटने की कोशिश कर रहा है।

"क्यों रे, गंदगी के कीड़े, तू फिर यहाँ?"

चर बोला—"जी नहीं, मैं दूसरा हूँ। पहला मेरा साथी था और मैं तब तुम्हारे भाई बलजीत पर लगा हुआ था।"

प्यारे बोला—"खैर जो भी हो, तुम्हारी भी वही गति होगी।"

कहकर गाड़ी के पहिये की हाल से वह उसे दे मारने ही वाला था कि चर बोला—"मुझे छोड़ दीजिये। मैं फिर आपको नहीं सताऊँगा। बल्कि जो मुझे कहेंगे, वहा कर दूंगा।"

"तुम क्या कर सकते हो?"

"चाहे जितने मैं आपको सिपाही बना दे सकता हूँ।"

"और सिपाही वे करेंगे क्या?"

"जो चाहे काम आप उनसे लें। जो कहेंगे, वही कर सकेंगे।"

"गा-बजा भी सकेंगे?"

"हाँ।"

"अच्छी बात है। तो बना दो मुझे कुछ सिपाही।"

चर बोला—"यह देखिए, ऐसे जई का एक पूला ले लीजिए। उसे धरती पर जमा दीजिए और यह मंतर पढ़िये—

पूले-ले, सुन और मान,
मेरी तुझको यही जुबान।
जहाँ-जहाँ हो तेरी सींक
वहीं हो उठे एक जवान।"

प्यारे ने पूला लिया, धरती पर जमाया और चर का बताया मंतर पढ़ा। पूला देखते-देखते बिनस गया और उसकी एक-एक बाल की जगह वर्दी से लैस सिपाही खड़ा दिखाई दिया। एक के पास ढोल था, दूसरे के पास तुरही—ऐसे पूरे बैण्ड का सरअंजाम था।

देखकर प्यारे खुश हुआ और खूब हँसा। बोला—"यह तो बढ़िया बात रही। देखकर लड़कियाँ कैसी खुश होंगी!"

चर बोला—"अब मुझे जाने दीजिए।"

प्यारे ने कहा—"नहीं जी, सिपाही मैं खाली पुआल के बनाऊँगा। कोई मैं भला उनके लिए नाजवाली बाल खराब करनेवाला थोड़े ही हूँ। सो बताओ कि सिपाही फिर पहले पूले की हालत में कैसे आ सकते हैं? सोचो, मुझे उनमें से नाज निकालना है कि नहीं!"

चर बोला—"तो यह मंतर पढ़िए—

"सुनता है तू ओरे जवान,
मेरी है बस एक जुबान।
सींक-सींक था जैसा पहले,
वैसा ही तू हो जा मान॥

प्यारे का यह मंतर कहना था कि सिपाही अन्तर्धान हो गये और जैसा-का-तैसा वहाँ पूला हो आया।

चर फिर हाथ जोड़कर कहने लगा कि अब मुझे जाने दीजिए।

सुनकर जेली की नोक से उसे छुड़ाया और कहा कि अच्छी बात है,

जाओ भगवान तुम्हारा भला करे।

भगवान का नाम मुंह से निकलना था कि कंकड़ पानी में गिरे, वैसे वह धरती पर छूटकर गायब हो गया। और वहां निशानी में एक सूराख रह गया।

प्यारे लौटकर घर पहुंचा कि यहां देखा कि उसका मंझला भाई धनवीर आया हुआ है। साथ बीबी भी है और दोनों जने खाने पर बैठे हैं।

धनवीर अपना देना चुकता नहीं कर सकता था। सो साहूकारों से बचकर यहां भाग आया था और आकर बाप के घर में शरण ली थी। प्यारे को देखकर धनवीर ने कहा—"सुनो भाई मूरख, दूसरा काम लगे तबतक मैं और मेरी बीबी यहीं हैं और हमको कोई कष्ट न हो, यह तुम्हारा काम है।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है, आप चाहें, तबतक यहां रहिये।"

प्यारे दोहर रख, मुंह धो, आकर खाने पर बैठने लगा।

पर धनवीर की बीबी बोली—"मैं उस गंवार के साथ खाना नहीं खा सकती। सारे बदन में तो उसके पसीने की बू आ रही है।"

इसपर धनवीर बोला—"प्यारे, तुम्हारे बदन से गंध आती है। जाओ बाहर जाकर खा लो।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है। मुझे तो वैसे भी इस वक्त बाहर जाना था।" कहकर रोटी ले मूरख ओसारे में बाहर चला आया।

(५)

धनवीर का चर भी खाली हो गया था। सो ठहरे मुताबिक मूरख को बस में लाने में अपने साथियों की मदद करने वह भी उस रात आ पहुंचा। पर खेत में घूम-फिरकर बहुतेरा देखा, वहां कोई नहीं था। मिला तो वहां सूराख मिला। वह फिर चरी की धरती में आया। वहां दलदली धरती में देखें तो उसके साथी की पूंछ कटी पड़ी है। और जईवाले खेत में दूसरा एक सूराख और भी उसे मिला।

सोचा कि मेरे साथियों पर कोई विपत पड़ी दीखती है। सो उनका काम अब मुझे संभालना चाहिए और उस मूरखराज को काबू में लाना चाहिए।

यह सोच वह चर मूरख प्यारे की तलाश में गया। प्यारे ने नाज खलिहान में रख दिया था और अब जंगल के पेड़ गिरा रहा था। बात यह थी

कि दोनोंभाई बोले—"यहां तो घर में जगह कम है और गिचपिच मालूम होती है। इससे जाओ प्यारे, पेड़ गिराकर कुछ जगह साफ कर डालो और वहां हमारे लिए नये मकान बनवाकर खड़े करो।"

चर दौड़ा जंगल में पहुंचा। वहां दरख्तों की टहनियों से लुककर प्यारे के काम में अड़चन डालने लगा। प्यारे ने उस दरख्त को जड़ से काट लिया था। और ऐसे था कि वह कुल साफ धरती पर आ जाय। पर देखता क्या है कि दरख्त गिरा तो नहीं, बल्कि दूसरे पेड़ की शाखों से उलझ कर रह गया।

प्यारे ने इसपर बल्ली की मदद से उसे जड़ से कुछ सरकाया। तब कहीं पेड़ धरती पर आकर गिरा। और पेड़ों के गिराने में भी ऐसे ही बीती। बहुतेरा करता, पर दरख्त सीधा साफ धरता पर न गिरता। तीसरा पेड़ काटा और वही बात हुई।

उम्मीद थी कि छोटे-मोटे पचास पेड़ तो आज काट ही गिराऊंगा। पर दस-एक भी नहीं हुए कि साँझ हो चली और वह थककर चूर हो गया। सरदी के मारे बदन से निकली पसीने की भाप जंगल में धुएं के मानिन्द फैली दीखती थी। पर उस बन्दे ने भी काम नहीं छोड़ा, चिपटा ही रहा। एक और दरख्त उसने काट लिया। लेकिन अब कमर इतनी दुखने लगी कि खड़े रहना मुश्किल था। आखिर कुल्हाड़ी पेड़ में लगी छोड़ धरती पर बैठ कर वह दम लेने लगा।

चर ने देखा कि प्यारे काम से हार बैठा है। इस पर वह बड़ा खुश हुआ। सोचा, आखिर अब आकर थका तो। अब आगे भला क्या काम उठायेगा। सो चलो, मुझे भी सुस्ताने का मौका मिल गया।

यह सोच चर पेड़ की शाख पर फलकर आराम से सो गया। चैन की सांस ली। पर थोड़ी देर में प्यारे तो उठ खड़ा हुआ और कुल्हाड़ी खींच सिर के ऊपर से घुमा कर परली तरफ जोर से जो मारी कि एकदम पेड़ ढहता हुआ आ गिरा। चर को यह आस न थी। उसे संभलने का समय नहीं मिल पाया और पेड़ गिरा तो उसके पंजे उसमें फंसे रह गये। प्यारे एक-एककर पेड़ की टहनियां काटने लगा। इतने में देखता क्या है कि दरख्त से चिपटे यह हजरत जीते-जागते वहां लटके हुए हैं। प्यारे को अचंभा

हुआ। बोला—"क्यों-जी, फिर तुम यहां आ पहुंचे ?"

चर बोला—"जी, मैं वह नहीं, दूसरा हूं। अबतक तुम्हारे भाई धनवीर के साथ था।"

"जो हो। चलो, तुम्हें अपने कर्मों का फल मिला।"

यह कहकर कुल्हाड़ी घुमा मूठ उसकी उसके सिर पर दे मारनेवाला ही था कि वह चर दया के लिए गिड़गिड़ाने लगा।

बोला—"मुझे मारो नहीं, जो कहोगे, मैं वही तुम्हारे लिए करूंगा।"

"तुम क्या कर सकते हो ?"

"मैं अशर्फी बना सकता हूं। जितनी कहो उतनी।"

"अच्छी बात है, बनाकर दिखाओ।"

वह चर अशर्फी बनाने की तरकीब बताने लगा। बोला—"उस बड़ के कुछ पत्ते हाथ में ले लीजिए और फिर मसलिये। धरती पर गिरकर बस अशर्फियां-ही-अशर्फियां बन जायंगी।"

प्यारे ने कुछ पत्ते लिए और हाथों से मला। देखता क्या है कि हाथों से अशर्फियों की धार-की-धार गिर रही है।

बोला—"यह तो खूब बात है। चलो, बाल-बच्चों के मन-बहलाव का यह तो अच्छा सामान हो गया।"

चर बोला—"अब मुझे जाने दीजिये।"

प्यारे ने उसको पेड़ से छुड़ा दिया। बोला—"अच्छी बात है, जाओ भगवान तुम्हारा भला करे।"

और भगवान का नाम आना था कि पानी में पत्थर की तरह वह चर धरती में गिरकर अन्तर्धान हो गया। बस एक सूराख रह गया।

(६)

सो दोनों भाइयों के लिए हवेलियां खड़ी हो गईं और वे अलग-अलग मकान में रहने लगे। प्यारे ने खेत का कटाई-लुनाई निबटाकर तैयारी की और एक त्यौहार के रोज भाइयों को अपने घर खाने का निमंत्रण दिया। पर भाई दोनों उसके घर आने को राजी नहीं हुए।

बोले—"बड़ी आई कहीं की दावत ! जो इन गवारों को खाने का

सलीका भी हो ! सो भला हमीं उसमें जाने को रह गये हैं !"

भाई लोग नहीं आये तो प्यारे ने गांव के और स्त्री-पुरुषों को जिमाया-जुठाया। बड़ी हंसी-खुशी रही। दावत के बाद बाहर के चौक में प्यारे आया। वहां स्त्रियां मगन होकर गरबा नाच रही थीं। प्यारे आकर उनसे बोला कि वाह-वाह, एक नाच, भाई, हमारे नाम का हो जाय। उसके बाद मैं ऐसी चीज तुम्हें बांटूं, कि पहले जिन्दगी में तुमने देखी भी न हो।

स्त्रियां और भी हंसी और खुश-खुश प्यारे की तारीफ में गाना गाती नाचने लगीं। उसके बाद बोलीं—"लाओ देखें, तुम्हारी वह क्या चीज है?"

प्यारे ने कहा—"अभी लो।"

कहकर उसने नाज भरी एक डलिया ली और चला जंगल की तरफ। स्त्रियां हँसने लगीं। बोलीं—"है असल मूरख।" उसके बाद फिर अपने इधर-उधर की चर्चा करने लगीं।

इतने में देखती क्या हैं कि प्यारे डलिया लिये जंगल की तरफ से भागा चला आ रहा है। डालिया किसी चीज से भरी हुई मालूम होती है।

आकर बोला—"बोलो, दूं तुम्हें ?"

"हां-हां, दो न !"

प्यारे ने एक मुट्ठी अशर्फियां लीं और बीच में बखेर दीं। बस अनुमान कर लीजिये कि कैसी भगदड़ वहां मची होगी। सब जनी उन्हें बीनने और छीनने-झपटने लगीं। आस-पास के लोग भी टूट पड़े। एक बिचारी बुढ़िया की तो जान जाते-जाते बची।

प्यारे बहुत हँसा। बोला—"अरे, मूरखो ! बुढ़िया बेचारी को क्यों कुचले डाल रहे हो। जरा सबर कर लो, मैं और बखेरता हूं।"

कहकर उसने एक पर्स सोना और बिखरा दिया। तब तो और भी लोग आ जुटे और प्यारे ने जितनी थीं, सब मुहरें वहीं फेंक बखेरीं। उसके बाद लोग फिर और मांगने लगे।

पर प्यारे बोला—"अब तो मेरे पास और रही नहीं। फिर किसी वक्त और सही। आओ, नाचें-कूदें। और अजी, तुम लोग रुक क्यों गईं ? गाना

गाना अपना जारी रक्खो न ?"

स्त्रियां पहले की भांति गाने लगीं।

बोला—"नहीं जी, ये तो तुम्हारे गीत कुछ बढ़िया नहीं हैं।"

स्त्रियां बोलीं—"खूब ! बढ़िया गीत भला हम और कहां से लायें ?"

बोला—"देखो, मैं बताता हूं।"

कहकर प्यारे खलिहान की तरफ बढ़ा। एक पूला लिया, नाज के दाने उसके अलग किये और फिर सकेर कर उसे धरती पर जमा कर रख दिया।

बोला—अब देखो—

'पूले-पूले सुन और मान
मेरी तुझको यही जुबान।
जहां-जहां हो तेरी सींक
वहीं हो उठे एक जवान।'

उसका यह कहना था कि पूला विलीन हो गया और हर एक सींक की जगह एक सिपाही लैस खड़ा हो गया। ढोल-ताशे बजने लगे और तुरही बोलने लगी। प्यारे ने सिपाहियों को हुक्म दिया कि हां, ऐसे ही गा-बजा कर सबको खुश करो। इसके बाद आगे-आगे वह और पीछे-पीछे बैण्ड-पार्टी, ऐसे गली-गली जुलूस घूमा। लोगों को बड़ा विनोद मालूम हुआ। खूब गाते-बजाते थे। अन्त में प्यारे ने कहा, "अब कोई साथ मत आना।" कहकर सिपाहियों को अलग एक तरफ ले गया और फिर सब-को सींक बना कर पूले में बांध अपनी जगह डाल दिया।

ऐसे सब हंसी-खुशी दिन बीता। उसके बाद रात हुई और प्यारे घर जाकर तबेले में धरती पर अपना कम्बल डाल चैन से सो गया।

(७)

अगले दिन फौजी बलजीत के कान में इस बात की खबर पड़ी। सो वह भाई के पास आया। बोला—"प्यारे, यह बताओ कि वह सिपाही तुमने कैसे बनाये थे और फिर उन्हें वहां ले जाकर क्या किया ?"

प्यारे ने पूछा—"उससे तुम्हें भला मतलब क्या है ?"

"मतलब क्या है ? क्यों ? सिपाही हों तो कोई कुछ भी कर सकता

है। उनसे राज का राज जो जीता जा सकता है।"

प्यारे अचरज में बोला—"अच्छा, सचमुच? पहले से तुमने क्यों नहीं बताया? लो, जितने कहो उतने सिपाही बनाकर मैं तुम्हें दिये देता हूं। बहन और मैंने दोनों ने मिलकर कितना ही भूसा छोडा है। सो सिपाहियों की क्या कमी?"

प्यारे अपने भाई को खलिहान के पास ले गया। बोला—"देखा, मैं सिपाही बना तो देता हूं; लेकिन सबको अपने साथ ही तुम ले जाना। जो कहीं उन्हें घर से खिलाना पड़ गया तब तो एक दिन में वे गांव-का-गांव खा जायेंगे।"

बलजीत ने कहा—"हां, सिपाही सब मैं साथ ले जाऊंगा।"

इसपर प्यारे सिपाही बनाने लगा। एक पूला धरती पर जमा के रक्खा—कि फौज का दस्ता तैयार हो गया। दूसरा रक्खा, तो दूसरी टुकड़ी तैयार। सो इतने सिपाही बना दिये कि वह मैदान तो कुल उनसे भर गया।

फिर पूछा—"क्यों भाई, इतने काफी होंगे?"

बलजीत की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। बोला—"हां, इतने बहुत होंगे। मैं तुम्हारा एहसान मानता हूं, प्यारे।"

प्यारे बोला—"एहसान क्या। और चाहिए तो आ जाना, मैं बना दूंगा। इस मौसम में अपने यहां भूसे की कोई कमी तो है नहीं।"

फौजी बलजीत ने फौरन उनसब टुकड़ियों का कमान संभाला, उन्हें जमा किया, तरतीब दी और सबको साथ ले जंग का मोर्चा लेने चल दिया।

जंगी बलजीत का जाना था कि वैश्य धनवीर आ पहुंचा। उसे भी कल की बात की खबर लगी थी। सो जाकर भाई से बोला—"भाई बताओ, सोने की मोहरें तुमने कहां और कैसे पाईं। मेरे पास जरा शुरू करने को भी कुछ धन हो जाता तो उससे मैं तमाम दुनिया का पैसा खींचकर दिखा देता।"

प्यारे अचरज में भरकर बोला—"अरे, सचमुच ही तुमने पहले से मुझे क्यों नहीं बताया? लो, जितनी कहो, उतनी अशर्फियां मैं तुम्हें बनाये देता हूं।"

धनवीर बड़ा खुश हुआ बोला—"शुरू में तो मुझे तीन टोकरी भर

अशर्फियां बस हो जायंगी ।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है। चलो, मेरे साथ जंगल की तरफ चलो। या बेहतर हो घोड़ा साथ ले लो और गाड़ी। क्योंकि यह सब बोझ तुमसे उठेगा कैसे ?"

सो दोनों जंगल में आये। यहां प्यारे ने बड़ के पत्ते हाथ में लिये और मलकर सोने की धार धरती पर छोड़ दी। सो देखते-देखते अशर्फियों का अंबार लग गया।

पूछा—"क्यों भाई, इतनी काफी होंगी ?"

धनवीर का मन बांसों उछल रहा था। बोला—"हां, हाल तो इतनी काफी होंगी। तुम्हारा एहसान मानता हूं, प्यारे।"

"यह कोई बात नहीं", प्यारे बोला, "और जरूरत हो तो आ जाना। मैं और बना दूंगा। बड़ के पेड़ में अभी अनगिनत पत्ते बाकी हैं।"

व्यापारी धनवीर ने वह सारा गाड़ीभर धन बटोरा, भरा और व्यापार करने चल दिया।

ऐसे दोनों भाई चले गये। बलजीत युद्ध जीतने गया, धनवीर लेन-देन से धन बढ़ाने। सो जंगी बलजीत ने तो एक राज्य जीत लिया और धनवीर ने व्यापार में बहुत धन कमा लिया।

फिर दोनों भाई मिले तो अपनी-अपनी कहानी सुनाने लगे। बलजीत ने बताया कि कैसे मुझे सिपाही मिले और धनवीर ने अपनी अशर्फियां मिलने की बात बताई।

बलजीत अपने भाई से बोला—"धनवीर, राज्य तो मैंने जीत लिया है और ठाठ-बाट से रहता हूं। पर सिपाहियों को रखने के लिए काफी पैसा मेरे पास नहीं है।"

इसपर व्यापारी धनवीर ने कहा—"धन तो मेरे पास अकूत है। पर मुश्किल यह है कि उसकी रखवाली के लिए सिपाही नहीं हैं।"

जंगी बलजीत ने कहा—"एक काम करें—प्यारे के पास चलें। मैं तो कहूंगा कि तुम्हारे धन की रखवाली के लिए तुम्हें वह कुछ सिपाही बनाकर दे दे। और तुम कहना कि मेरे सिपाहियों के गुजारे के लिए धन की जरूरत है,

सो मुझे मोहर बना दे।"

आपस में यह ठहराकर दोनों प्यारे के पास आये।

बलजीत बोला—"भाई प्यारे, मेरे पास सिपाही काफी नहीं हैं। सो दो-एक टुकड़ी मुझे उनकी और चाहिए। बना दो।"

प्यारे ने सिर हिला दिया। बोला—

"नहीं, अब मैं और सिपाही नहीं बनाकर दूंगा।"

"लेकिन तुमने वचन दिया था कि बना देंगे।"

"हां, दिया था। लेकिन अब और नहीं बनाऊंगा।"

"बड़े मूरख हो। क्यों नहीं बनाओगे?"

"तुम्हारे सिपाहियों ने एक आदमी की जान ले ली, मैंने सुना है। उस दिन सड़क के किनारे का खेत मैं जोत रहा था, तभी एक औरत गाड़ी में बैठी जा रही थी। मैंने कहा, 'क्या बात है, कोई मर गया है?' बोली कि मेरे पति को लड़ाई में बलजीत के सिपाहियों ने मार डाला है। मैं तो समझता था, सिपाही अपना गाना-बजाना किया करेंगे और लोगों का मन बहलायेंगे पर उन्होंने तो आदमी की हत्या कर डाली है! अब मैं और सिपाही बनाकर नहीं दूंगा।"

फिर उस अपनी बात से प्यारे डिगा नहीं और सिपाही नहीं बनाये।

धनी धनवीर ने भी प्यारे को कुछ और सोना बना देने को कहा। लेकिन उसपर प्यारे ने सिर हिला दिया। कहा—

"नहीं, मैं अब सोना भी नहीं बनाऊंगा।"

"और जो तुमने वायदा किया था?"

"किया था, लेकिन अब मैं नहीं बनाता।"

"भला क्यों, मूरख?"

"क्योंकि तुम्हारी सोने की मुहरों ने हमारे हरिया की बेटी की दुधार गाय हर ली है।"

"सो कैसे?"

"कैसे क्या, हर ही जो ली है। उसके पास एक गाय थी। बाल-बच्चे उसका दूध पिया करते थे। पर उस दिन हरीचन्द की बेवती हमारे घर दूध

मांगने आई। मैंने कहा—"क्यों, तुम्हारी गाय क्या हुई?" बोली—"महाजन धनवीर का कारिन्दा आया था। उसने सोने के तीन सिक्के अम्मा को दिये, सो अम्मा ने गाय उसे दे दी। अब कहां घर में दूध रक्खा है?" मैं तो समझता था कि सोने की मुहरें लेकर तुम अपना और लोगों का जी-बहलाव करोगे। पर उनसे तो तुम बच्चों का दूध छीनने लगे हो। नहीं, मैं और मुहर तुम्हें बनाकर नहीं दूंगा।"

और इसपर प्यारे अचल होकर अड़ गया और मोहरें बनाकर नहीं ही दीं। सो दोनों भाई अपने मुंह लौटकर चले गये। आते-जाते आपस में सलाह-मशिवरा करने लगे कि कैसे अपनी मुश्किल हल करनी चाहिए।

बलजीत ने कहा—"सुनो, मैं बताता हूं। एक काम करो। तुम तो सिपाहियों के लिए मुझे धन दो और मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दिये देता हूं। बस, फिर धन की रक्षा के लिए काफी सिपाही भी तुम्हारे पास हो जायंगे।"

धनवीर इसमें राजी हो गया।

सो दोनों भाइयों ने आपस में बंटवारा कर लिया। इस तरह वे दोनों ही राजा बन गये। दोनों के पास रियासत हो गई और किसीके पास धन की कमी नहीं रही।

(८)

प्यारे अपने देहात के घर ही रहा। गूंगी बहन के साथ खेत में काम करता और माता-पिता को पालता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि उनके पालतू कुत्ते को कहीं से खाज लग गई। वह ऐसा क्षीण होने लगा कि जीने की आस ही नहीं रही। बिलकुल मराऊ हो आया। प्यारे को उसपर दया आई। बहन से कुछ रोटी मांग टोपी में रख कुत्ते को डालने वह बाहर आया। टोपी फटी थी, सो टुकड़ा जो कुत्ते को फेंका तो उसके साथ उस जड़ी की एक जड़ भी आ गिरी। कुत्ते ने रोटी खाई और साथ वह जड़ भी खा गया। खाना था कि वह तो एकदम चंगा हो गया। सब रोग जाता रहा और वह उछल-कूद मचाने लगा। कभी भौंकता और दुम हिलाता और किलोलें करता। यानी बिलकुल पहले की भांति चुस्त-तन्दुरुस्त हो गया।

मां-बाप को यह देख बड़ा अचम्भा हुआ। पूछने लगे—"कुत्ते का रोग तुमने कैसे छिन में हर लिया ?"

प्यारे बोला—"मेरे पास एक जड़ी की दो जड़ थीं। उनमें से एक कोई खा ले तो सब रोग मिट जायं। तो उनमें से एक इस कुत्ते ने खा ली है।" उसी समय की बात है कि राजा की बेटी बीमार पड़ी। राजा ने गांव-शहर सर्वत्र ऐलान कर दिया कि जो बेटी को आराम कर देगा, उसे खूब इनाम मिलेगा। और वह कुंवारा हुआ तो राजा की बेटी भी उसे ब्याह दी जायगी। दूसरे गांवों की तरह प्यारे के गांव में भी यह ऐलान हुआ।

मां-बाप ने यह खबर सुनकर प्यारे को बुलाया। बोले—"तुमने राजा की डोंडी की बात सुन तो ली है न ? तुम कहते थे कि कि जड़ी है जिससे सब रोग कट जाते हैं। सो जाओ और उससे राजकुमारी को आराम कर देना। बस जन्म जीते को फिर चैन हो जायगा।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है।"

कहकर वह चलने को उद्यत हुआ। हाथ-मुंह धोया, कपड़े पहने, पर द्वार से बाहर होना था कि वहां एक भिखारिन मिली। उसका हाथ गल रहा था और वह लूली हुई जा रही थी। बोली—"अजी मैंने सुना है कि तुम रोगों को आराम कर देते हो। बड़ी दया हो कि मेरी इस बांह को आराम कर दो। मुझसे इसके मारे कुछ भी करते-धरते नहीं बनता है।"

"अच्छी बात है।"

कहकर बाकी बची जड़ी उसने निकाली और भिखारिन को दे दी। कहा—"लो, इसे खा लो।"

जड़ी को मुंह के नीचे उतारना था कि भिखारिन अच्छी-भली हो गई। अब वह पहले की भांति चल-फिर सकती थी और सब काम के लायक थी।

इतने में अन्दर से प्यारे के मां-बाप भी राजा के यहां साथ चलने के लिए आये। उन्होंने सुना कि जड़ी तो इस मूरख ने गंवा डाली है, अब राजा की बेटी को काहे से आराम होगा ? सुनकर दोनों प्यारे को खूब झिड़कने लगे। बोले—"एक भिखारिन पर दया करते हो ? भला राजा की बेटी का तुम्हें खयाल नहीं है ?"

पर राजा की बेटी के लिए भी प्यारे के मन में दुःख था। सो बैल गाड़ी में जोत, पुआल से उसकी बैठक मुलायम बना, उस पर सवार हो, प्यारे आगे बढ़ लिया।

मां-बाप बोले—"अरे, मूरख अब कहां जा रहा है ?"

प्यारे बोला—'क्यों राजा की बेटी का औगुन हरने जा रहा हूं ?"

"बड़ा जा रहा है ! अरे, तेरे पास अब जड़ी कहां रह गई है, बेवकूफ ?"

बोला—"कोई बात नहीं। देखा जायगा।"

कहकर वह गाड़ी हांके चला। चलता-चलता राजा के महल आया। पर महल की देहली पर उसका पांव रखना था कि राज-कन्या को एकदम आराम हो गया।

राजा उस पर बड़ा खुश और विस्मित हुआ। प्यारे का आदर-सत्कार किया और कीमती कपड़े दिये।

बोला—"अब तुम ही मेरे जमाई हो।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है।

और राजकुमारी का मूरख के साथ विवाह हो गया। उसके थोड़े अरसे के बाद राजा का देहांत हो गया और मूरख ही राजा बना।

इस तरह अब तीनों भाई राजा हो गये।

(६)

तीनों अपने-अपने राज्य में राज करने लगे। जेठा बलजीत खूब कामयाब हुआ। उसने अपने राज्य का विस्तार बढ़ा लिया। जादू के सिपाही सो थे ही, अलावा भी उसने भर्ती किये। सारे राज्य में दस घर पीछे एक सिपाही देने का हुक्म था। उसका अच्छा कद हो और बदन में हट्टा-कट्टा भी। ऐसे जवानों की बहुत-बड़ी फौज उसने खड़ी की और सबको कवायद सिखाई। कोई विरोध में चूं भी करता तो झट बलजीत अपनी फौज भेज देता। सो उसका मनचाहा हो जाता था। इस तरह आस-पास के सब राजा उसका डर मानते थे। इस तरह बलजीत की खूब आराम और वैभव में गुजर होती थी। जिसपर नजर पड़ती, और जो भी चाहता, वही उसका था। क्योंकि वह सिपाही थे और वह मनचाही चीज

जीत कर उसको ला सकते थे ।

धनवीर वैश्य भी अपने आनन्द से रहता था। प्यारेसिंह से जो रकम पाई थी, उसमें से उसने रत्ती भी नहीं खोया था, बल्कि उस दौलत को खूब बढ़ा-चढ़ा लिया था । अपने राज्य में अमन और आईन का उसने दौर डाल दिया था। पैसा खजाने में जमा रखता था, ऊपर से लोगों से कर उगाहता था ! चुंगी-कर एक उसने जारी किया था और सड़क पर चलने या गाड़ी ले जाने का भी टैक्स डाला था । कपड़ा-लत्ता और सामान रसद इस तरह की चीजों पर भी टैक्स था । जो वह चाहता, उसे सुलभ था । पैसे की खातिर लोग सब उसे ला देते थे और खुद गुलामी को राजी थे । क्योंकि हर किसी को पैसे की चाह थी ।

उधर उस मूरख प्यारे की भी हालत बुरी नहीं थी । ससुर के क्रिया-कर्म के अनंतर उसने क्या किया कि राज की सब पोशाक ली और बीबी से कहा कि इसे बक्सों में बंद करके रख दो । खुद वही अपने गाढ़े का कुर्त्ता तन पर ले लिया और काम पर चल पड़ा । बोला—"खाली तो मेरा जी नहीं लगता है । देखो, बदन पर चर्बी भी जमती जा रही है । भूख नहीं लगती और नींद भी खोई मालूम होती है ।"

सो वह मां-बाप को और अपनी गूंगी बहन को भी पास ही ले आया और पहले की तरह खेत पर काम करने लगा ।

लोग बोले—"लेकिन आप तो राजा हैं ।"

प्यारे बोला—"हां, पर राजा भी तो खाने को चाहता है न ?"

एक दिन राजा का मंत्री आया । बोला—"तनख्वाह देने के लिए खजाने में पैसा नहीं है ।"

प्यारे—"अच्छी बात है । तो मत तनख्वाह दो ।"

"ऐसे कोई नौकरी नहीं करेगा ।"

"अच्छी बात है । मत नौकरी करने दो । ऐसे उन्हें काम का और भी वक्त निकल आयगा । चलो, सब खाद ढोयें । कितना तो घूरा जगह-जगह पड़ा है । यह सब खाद है कि नहीं ।"

और लोग राजा के पास अपने मुकदमे लेकर आये । एक बोला—"अजी,

इसने मेरा धन चुराया है।"

प्यारे ने कहा—"अच्छी बात है। चुराने से तो मालूम होता है कि उसके पास कुछ था नहीं।"

सो इस तरह सब लोग जानते गये कि प्यारे सिंह राजा मूरख है।

बीबी उसकी बोली—"लोग कहते हैं, तुम मूरख हो!"

प्यारे ने कहा—"ठीक तो कहते हैं।"

पति की बात सुनकर वह सोच में रह गई। पर असल में वह भी मूरख ही थी। मन में बोली कि पति के खिलाफ मैं भला कैसे जा सकती हूं। सुई जहां जाय, धागे को भी तो वहीं से जाना है न। यह कहकर उसने भी अपनी राजसी पोशाक उतारकर बक्स में बंद कर दी और अपनी गूंगी ननद से काम सीखने चली। सीखकर होशियार हो गई और अपने पति को खूब सहाय देने लगी।

इसका नतीजा यह हुआ कि चतुर-सयाने जितने जन थे, सब प्यारे का राज छोड़कर चले गये। बस मूरख-मूरख रह गये।

किसीके पास कोई पैसा-सिक्का नहीं था। सब रहते थे और काम करते थे। भरपेट खाते और दूसरों को खिलाकर खुश रहते थे।

(१०)

और उधर पाताल-लोक में शैतान बाबा इंतजार में थे कि अब कुछ खबर मिले, अब मिले। तीनों भाइयों की बरबादी को तीन चर गये थे। पर गये मुद्दत हुई, खबर उनकी कोई नहीं आई। सो पता लगाने वह बाबा खुद-बखुद नर-लोक आये। यहां बहुत खोज-छान की। पर वे तीन चर तो कहीं मिले नहीं। मिले तो उनकी जगह तीन सूराख मिले।

सोचा कि मालूम होता है कि वे तीनों नाकाम रहे और विपत के शिकार हुए। सो चलो, अब मैं उन तीनों को खुद ही भुगतता हूं।

यह मन में धार वह उन तीनों की तलाश में चला। पर अपनी पहली जगह तो कोई उनमें से था नहीं और देखता क्या है कि तीनों अपनी अलग-अलग राजधानी में राज्य करते हैं। इससे उस शैतान बाबा को बड़ी खीझ हुई। बोला—"खैर, अब मैं उनपर अपना हाथ आजमा कर देखता हूं।"

सो पहले तो वह राजा बलजीत के यहां गया। पर ऐसे नहीं गया। भेष बदल कर गया। एक फौजी सरदार का बाना उसने बनाया और घोड़ागाड़ी पर सवार महल पर पहुंचा। वहां जाकर बोला—"हे राजा बलजीत, सुना है कि तुम बड़े बहादुर, बड़े पराक्रमी हो। मैंने भी कई युद्ध देखे हैं। जंगी मैदान का मुझे अनुभव है और मैं तुम्हारी सेवा में काम आना चाहता हूं।"

राजा बलजीत ने उससे पूछताछ की और सवाल किये। देखा कि आदमी होशियार है। सो उसे नौकरी में रख लिया और सिपहसालार बना दिया।

इन नये सेनापति ने राजा बलजीत को बताया कि कैसे एक मजबूत सेना तैयार करनी चाहिए, ऐसी कि कोई न हरा सके। इनके लिए तो हमें भरती बढ़ानी चाहिए। राज्य में बहुत-से लोग बेकाम हैं। जवानों को तो फौज में आना लाजिमी बना देना चाहिए। इस तरह फौज की ताकत अबसे पंचगुनी हो जायगी। फिर तोप और बंदूक भी नये बनाने और मंगाने चाहिए। ऐसी बंदूक मैं ईजाद करूंगा कि एक बार में सौ छर्रे छोड़ेगी। और तोप ऐसी कि क्या आदमी और क्या घोड़ा या सवार और क्या दीवार जो सामने पड़े, सब उसकी मार से भस्म हो जायं। जिसके ध्वंस के आगे कुछ नहीं ठहर सकेगा।

राजा बलजीत ने सेनापति की बात पर गौर किया। हुक्म हो गया कि अच्छा, जवान लोगों को सबको फौज में भर्ती होना लाजिमी है और कारखाने बनवाये, जहां नई तरह की बन्दूक और तोपें बड़ी तादाद में तैयार हो सकें। यह होते ही पड़ोस के राजा से लड़ाई ठान दी गई। आमने-सामने दोनों फौजों को मिलना था कि बलजीत ने सिपाहियों को हुक्म दिया कि जवानों, कस कर छर्रे छोड़ो और तोपों का जौहर दिखाओ। बस क्या था। एक धावे में दुश्मन की आधी फौज खेत रही। कुछ कटकटा गये, बहुत ध्वंस हो गये और बाकी भाग निकले। दुश्मन राजा ऐसा भयभीत हुआ कि हथियार डाल दिये और सारा राज्य अपना सौंप दिया। राजा बलजीत अपनी विजय पर खुश हुआ।

बोला—"अच्छा, अब हिन्दुस्तान की सल्तनत की बारी आनी चाहिए।"

लेकिन हिन्दुस्तान के राजा ने राजा बलजीत के बारे में पहले से सब हाल-चाल ले रक्खा था। उसने भी वहां की ईजादों की नकल कर ली थी और अपनी नई ईजादें भी की थीं। इस तरह खूब तैयारी उसने कर रक्खी थी। सारे जवान मर्द ही नहीं, बल्कि बिन-ब्याही औरतों को भी सेना में भर्ती किया था और फौज उसकी बलजीत से भी बढ़ी-चढ़ी बन गई थी। हूबहू बलजीत की-सी तोप और बन्दूक उसने ढलवा ली थीं। बल्कि हवा में उड़ कर ऊपर से आग के बंम फेंकने का भी तरीका ईजाद कर लिया था।

बलजीत हिन्दुस्तान की सीमा पर चढ़ाई करने आया। खयाल था कि पहले राजा की तरह इसे भी हाथों-हाथ गिराऊंगा। पर पहली धार अब भोथरी हो गई थी। हिंदुस्तान के राजा ने बलजीत की फौज को पास न फटकने दिया। पहले ही हवा के रास्ते अपनी जनाना पल्टन को भेज दिया कि बलजीत की फौज पर जा आग के बम बरसाओ। जनाना पल्टन ने वहां जाकर ऐसी आग की वर्षा की कि पतंगों की तरह बलजीत की फौज के लोग भुनने लगे। यह देख फौज भाग निकली और राजा बलजीत अकेला ही रह गया। सो हिन्दुस्तान के बादशाह ने बलजीत का इलाका भी हथिया लिया और बलजीत ने जैसे-तैसे भागकर जान बचाई।

इस तरह सबसे जेठे को निबटाकर शैतान अब राजा धनवीर के पास पहुंचा। इस बार व्यापारी का उसने भेष बनाया और धनवीर की राजधानी में जाकर डेरा डाला। वहां अपनी फर्म खोल दी और लगा पैसा जुटाने। हर चीज ऊंचे दाम उसने खरीदनी शुरू की। सो ज्यादा कीमत पाने के लिए दौड़-दौड़ सब लोग उसके पास पहुंचने लगे। बदले में लोगों के पास इतना सिक्का फैल गया कि सबके सब अपना पूरा टैक्स वक्त पर अदा कर देते थे और पहला बकाया भी सब चुका दिया था। राजा धनवीर इसपर खूब खुश हुआ। सोचा कि यह नया व्यापारी तो अच्छा आया है। अब तो और भी धन मेरे पास जुड़ जायगा और जिंदगी और ऐश से कटेगी।

सो धनवीर राजा ने नई तामीर के नक्शे बनाये और एक नया महल खड़ा करने का हुक्म दिया। ऐलान कर दिया कि लोग लकड़ी और पत्थर लाकर दें और मजदूरी के लिए भी लोगों की जरूरत है। दर हर जिन्सकी

ऊंची मिलेगी। धनवीर राजा का खयाल था कि लोग पहले की तरह झुंड-के-झुंड आयंगे। पर अचरज से देखता क्या है कि पत्थर और लकड़ी सिर ले-लेकर सब लोग उस व्यापारी के पास पहुंच रहे हैं और मजदूर भी उधर ही जाते हैं। राजा ने दर और भी ऊंची चढ़ा दी। लेकिन व्यापारी ने उससे भी सवाई कर दी। धनवीर के पास बहुत धन था, लेकिन व्यापारी के पास उससे भी अकूत था। सो हर जगह व्यापारी ऊंचे दाम चढ़ा ले जाता था और बाजी उसके हाथ रहती थी।

नतीजा यह कि राजा के महल पर सन्नाटा रहने लगा। नये महल की शुरूआत भी नहीं हो सकी।

धनवीर के मन में एक नया बाग तैयार करने की आई। सो बारिश बीतते उसने लोगों को बुलाया कि आयें और बाग तैयार करें। पर कोई न फटका। सब लोग उस व्यापारी का एक तालाब खोदकर तैयार करने में लगे थे। जाड़ों के दिन आये, और धनवीर को कुछ पर और मुलायम पशमीनों की जरूरत हुई। आदमी खरीदने बाजार भेजे, लेकिन वे खाली हाथ लौट आये। बोले कि बाजार में तो ये चीजें मिलती ही नहीं हैं। सब-की-सब व्यापारी ने ले ली हैं। बड़ी-चढ़ी कीमत दे उसने बढ़िया पश-मीने खुद खरीद लिये हैं और पहनने की जगह उन्हें बिछाने के काम लाता है।

धनवीर ने कुछ उम्दा घोड़े खरीदने चाहे। भेजा खरीदारों को। लेकिन उन्होंने आकर खबर दी कि अच्छे-अच्छे जानवर तो सब व्यापारी ने खरीद लिये हैं और पानी ढो-ढोकर उसका तालाब भरने के काम वे आ रहे हैं।

इस तरह राजा का सब कारोबार रुकने लगा। कोई उसके लिए काम करने को राजी न होता था, क्योंकि सब व्यापारी के काम में लगे थे। बस सब लोग राजा के आगे वक्त पर अपना टैक्स चुकाने चले जाते थे। क्योंकि व्यापारी की कृपा से सिक्के की उनके पास कमी न थी। बाकी कोई राजा को नहीं पूछता था।

सो राजा के पास इतना धन जमा हो गया कि समझ न आता था, कहां उन सबको भर के रक्खा जाय। जिंदगी ऐसे दूभर होने लगी। नये मन-सूबे बनाने तो उसके छूट ही गये। अब तो गुजारा चल जाता तो बहुत

था। लेकिन गुजारे तक की मुसीबत होने लगी। हर चीज की उसके पास कमती हो आई। एक-एक कर रसोइये, कोचवान, नौकर उसे छोड़ व्यापारी की खिदमत में जाने लगे। ऐसे उसे खाने के भी लाले पड़ आये। बाजार से खरीदने को भेजता तो वहां कुछ मिलता ही नहीं। सब व्यापारी ने खरीद लिया था और लोग बस आकर राजा का टैक्स चुका जाते थे, अधिक उन्हें राजा से मतलब नहीं था।

आखिर राजा धनवीर को इसपर बड़ी झुंझलाहट हुई। उसने व्यापारी को देश निकाला दे दिया। पर व्यापारी वहां से गया तो देश की हद के पार ही एक जगह जाकर जम बैठा। यहां भी उसने पहले की तरकीब की। पैसे की खींच थोड़ी नहीं होती। सो राजा के बजाय सब लोग व्यापारी के पास जा-जाकर अपने माल के ऊँचे दाम उठाने लगे।

राजा धनवीर की हालत यों खराब-पर-खराब होती गई। दिन-के-दिन हो जाते, और खाने को नसीब न होता। अफवाह यहां तक उड़ी कि व्यापारी का कहना है कि ठहरो, अभी मैं खुद राजा को ही जो खरीदे लेता हूँ। धनवीर सुनकर बड़ा हैरान था। उसे कुछ समझ न पड़ता था कि क्या किया जाय।

इसी वक्त बलजीत उसके पास आया। बोला—"हिन्दुस्तान के राजा ने मुझे हरा दिया है। सो मेरी कुछ सहायता करो।"

लेकिन यहां धनवीर ही गले तक अपनी मुसीबतों में डूबा था। बोला—"यहां मुझे ही जो दो दिन से खाने को नहीं मिला है, भाई! तुम अपनी कहते हो!"

(११)

इस तरह दोनों भाइयों को ठिकाने लगा अब शैतान मूरखराज की तरफ मुड़ा। उसने फौजी जनरल का वेश बनाया और आकर मूरख को समझाया कि राजा के पास एक फौज जरूर रहनी चाहिए।

बोला—"फौज बिना राजा की भला शोभा क्या है। बस मुझे आप हुक्म दे दीजिए और मैं आपके राज्य की प्रजा में से ही सिपाही निकाल लूंगा और फौज खड़ी हो जायगी।"

मूरख प्यारे ने उसकी बात सुनी । बोला – "अच्छी बात है । बनाओ फौज और उन्हें अच्छे-अच्छे गाने सिखाओ । गाती-बजाती फौज जरूर बड़ी भली मालूम होगी ।"

सो राजाज्ञा पाकर वह शैतान प्यारे के तमाम राज में फौज की भरती करता घूमने लगा। कहने लगा कि सिपाही बनोगे तो मौज रहेगी । रोज शराब मिला करेगी और उम्दा लाल पोशाक मिलेगी और भत्ता और…

लोग सुनकर हँसते थे। कहते कि शराब तो घर चाहे जितनी हम खींच सकते हैं । और पोशाक की जो बात है तो हमारी बहन-बीवी जैसी कहो रंग-बिरंगी पोशाक हमें तैयार कर सकती है । और……

सो कोई भरती न होता था ।

इसपर शैतान आया और प्यारे राजा से बोला—"आपकी प्रजा तो बड़ी मूरख है । अपने मन से कोई भरती नहीं होता है । सुनिए, उन्हें भरती करना होगा ।"

प्यारे बोला—"अच्छी बात है । करो कोशिश ।"

सो उस बूढ़े ने जाहिर ऐलान कर दिया कि सबको भरती होना होगा । जो इंकार करेगा, राजा के यहां से उसे मौत की सजा दी जायगी । लोग सुनकर फौजी जनरल के पास आये और बोले—"तुम कहते हो कि भरती नहीं होंगे तो राजा से हमें मौत की सजा मिलेगी । लेकिन भरती होंगे तो क्या होगा, यह भी तो बताओ । हमने सुना है कि सिपाही भरती होकर लड़ाई में मारे जाते हैं ?"

"हाँ, ऐसा कभी होता तो है ।"

यह सुना तो लोग और हठ पकड़ गये । बोले—"तब तो हम नहीं भरती होंगे। हर हालत में मरना ठहरा ही तो बाहर से घर मरना अच्छा है ।"

"तुम मूरख हो, जाहिल बेवकूफ हो ।" शैतान बोला, "अरे, सिपाही तो मरे या नहीं भी मरे । लेकिन भरती नहीं होगे तो फिर राजा के हाथ तुम्हारी मौत पक्की है ।"

सुनकर लोग झमेले में पड़ गये । मूरखराज के पास पूछताछ करने पहुँचे । बोले—"एक जनरल साहब आये हैं । कहते हैं कि सब फौज में

भरती होओ। सिपाही बनकर तुम मर भी सकते हो और अब बच भी सकते हो। लेकिन भरती को राजी नहीं हुए तो प्यारे राजा तुम्हें जरूर सजा देकर मार देंगे। क्यों जी, यह सच है ?"

प्यारे हँसा। बोला—"मैं अकेला तुम सबको कैसे मार दूंगा ? मूरख न होता तो मैं तुम्हें समझा सकता था। पर सच यह है कि मेरी खुद की भी समझ में यह मामला नहीं आता है।

लोग बोले—"तो हम भरती नहीं होंगे।"

प्यारे ने कहा—"अच्छी तो बात है। मत होओ।"

सो लोग जनरल के पास गये और भरती होने से इंकार कर दिया।

शैतान ने देखा कि यहां तो उसकी दाल गलती नहीं। सो उसने फतेहिस्तान के शाह के पास जाकर साठगांठ शुरू की।

शहर के पास पहुंचकर बोला—"सुनिए शाह साहब, चलकर राजा प्यारेसिंह के इलाके पर आप हमला क्यों नहीं करते हैं। धन तो बेशक उस राज्य में नहीं है। लेकिन जमीन खूब है और चौपाये हैं, और गल्ला है और सब किस्म के कच्चे माल की इफरात है।"

सो फतेहिस्तान के शाह ने लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी। बड़ी फौज इकट्ठी की। बारूद और तोप और बंदूक जमा की और दुश्मन के राज पर चढ़ाई बोल दी। फौज कूच करती हुई हद लांघ उस राज के अंदर दाखिल हो गई।

प्रजा के लोग अपने प्यारे राजा के पास आये। बोले—"फतेहिस्तान के शाह ने हमपर चढ़ाई कर दी है।"

प्यारे बोला—"अच्छी तो बात है। उन्हें आने दो।"

हद के अंदर आकर फतेहिस्तान के नवाब ने पलटन की सफरमैना टुकड़ी आगे भेजी कि देखो दुश्मन की फौज कहां छावनी डाले हुए है। पर इधर-उधर देखा-छाना, दुश्मन की फौज का कोई पता-निशान न दीखता था। शाह इंतजार में रहे कि अब कहीं से फौज का सुराग मिले, अब मिले। पर फौज के नाम एक आदमी नजर नहीं आया कि जिससे लड़ा जाय। इसपर फतेहिस्तान के राजा ने हुक्म दिया कि जाओ, बढ़कर गांवों पर कब्जा कर

लो। सिपाही चलते हुए एक गांव पर पहुंचे। गांव के मर्द औरत सब मिलकर अचरज से सिपाहियों को देखने लगे। सिपाहियों ने उनका गल्ला और चौपाये झपट कर काबू करने शुरू किये। पर उन लोगों ने कोई बाधा नहीं दी। बल्कि खुद सब बताकर आसानी कर दी। फिर सिपाही दूसरे गांव गये। वहां भी यही हुआ। इसी तरह दिनभर वे बढ़ते गये। फिर अगले दिन भी सब जगह वही बात हुई। लोग सब माल यों ही ले-लेने देते थे, कोई विरोध नहीं करता था। बल्कि सिपाहियों से लोग कहते थे कि बड़ी खुशी की बात है, आओ न, हमारे साथ तुम भी रहो-सहो।

लोग कहते, "भाई, तुम्हारे यहां मुश्किल है और धरती पर खाने को नाज काफी नहीं है तो अच्छी बात है, सब आकर यहां हमारे साथ क्यों नहीं रहने लगते हो ?"

सिपाही बढ़ते गये। पर फौज कोई न मिली कि लड़ाई हो। अमन से रहते लोग मिले जो अपने खुद खाते थे और आव-भगत के साथ औरों को खिलाने को तैयार थे। सिपाहियों का उन्होंने कोई मुकाबला नहीं किया। बल्कि स्वागत-सत्कार किया और अपने साथ आकर रहने का न्यौता दिया। सो सिपाहियों का जी इस लूट-मार के काम में लगा नहीं। वे उकता गये। अपने शाह के पास आकर बोले—"यहां हम नहीं लड़ेंगे, कहीं और का हुक्म दीजिए। लड़ाई तो ठीक है, पर यह भी कोई लड़ाई है। यह तो दूध में छुरी भोंकने के समान है। यहां अब बिल्कुल नहीं लड़ सकते हैं।"

शाह सुनकर बड़े झल्लाये। बोले—"जाओ, सारा राज्य तहस-नहस कर डालो। गांव लूट लो, मकान जला दो और नाज भी फूंक डालो। चौपाये मार कर खत्म कर दो। अगर हुक्म मेरा न माना तो एक-एक को फांसी दे दूंगा।"

सिपाही मारे डर के नवाब के हुक्म के मुताबिक करने लगे। मकानों में आग लगाई और गल्ला फूंका और गायों के गले काटने लगे। पर उस राजा की मूरख प्रजा ने अब भी मुकाबला नहीं किया। बस, वे आंसू गिराते थे। क्या बुड्ढे-बुजुर्ग, क्या बूढ़ी स्त्रियां और क्या जवान—आंसू गिराने से ज्यादा कोई कुछ नहीं करते थे।

बोले—"भले लोगों, हमें क्यों सताते हो ? नाज ईश्वर की नियामत है और चौपाये कुदरत को बहाल करते हैं। इन्हें नाहक बरबाद करते हो ? जरूरत हो तो अपने लिए ही तुम उन्हें क्यों नहीं ले जाते ?"

आखिर सिपाहियों का मन इस अत्याचार को और नहीं सहार सका। आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। सो फौज इस तरह तितर-बितर हो गई और भाग गई।

(१२)

शैतान की यह युक्ति भी काम न आई। सिपाहियों को लेकर प्यारे का कुछ नहीं बिगाड़ा जा सका। सो उसने दूसरी राह पकड़ी। इस बार एक भले सौदागर के वेश में प्यारेसिंह के राज में पहुंचा और वहां घर बसाकर बैठ गया। सोचा कि ताकत के जोर से नहीं तो धनवीर की तरह पैसे के ज़ोर से तो वह काबू में आ ही जायगा।

जाकर राजा से बोला—"मैं आपकी भलाई करने आया हूं। देखिए, एक नफे की और उपकार की बात मैं कहता हूं। असल में आपको समझदारी सीखनी चाहिए। मेरा इरादा है कि आपके राज में एक बड़ा फर्म खोलूं और व्यापार का संगठन करूं ?"

प्यारे राजा बोला—"अच्छी तो बात है। मरजी हो तो आइए; क्यों नहीं, आइए और हम लोगों के साथ रहिए।"

अगले दिन वह भला व्यापारी चौक में पहुंचा। सोने की मौहरों का थैला पास में रख लिया और लिखते-जाने को एक कागज खरीदा। वहां बीच चौक खड़े होकर बोला—"ए लोगो, सुनो ! तुम पशुओं की भांति हो। मैं तुम्हें सिखाना चाहता हूं कि कैसे रहना चाहिए ! इल्म और अदब मैं तुम्हें बताऊंगा। देखो, इस नक्शे के मुताबिक मेरे लिए एक मकान तैयार किया जाना है। मैं बताता जाऊंगा, वैसे काम करते जाना। काम के बदले सोने की मोहरें तुम्हें मिलेंगी।"

यह कहकर बोरे में भरी मोहरें उसने लोगों को दिखाईं।

उस राज्य की प्रजा के मूरख लोग बड़े अचरज में पड़े। उनके यहां धातु के सिक्के का चलन नहीं था। अपना माल अदल-बदल लेते थे और मेहनत

करके लेना-देना चुकाते थे। सोने की मोहरों को वे अचंभे से देखते रह गये। बोले—"चीज तो भाई, वह खूबसूरत दीखती है।"

सो अपना माल लाकर वह देने लगे या मेहनत करने को राजी हुए। एवज में कुछ मोहरें ले लेते थे। धनवीर के राज की तरह यहां भी शैतान बाबा ने हाथ अपना खोल दिया। आओ और लूटो। लोग आ-आकर अशर्फियां ले जाते, बदले में अपना सामान दे जाते, या कुछ मेहनत का काम कर देते।

यह देख वह बड़ा खुश हुआ। मन-मन में कहने लगा कि इस बार मामला ठीक चल रहा है। बस, धनवीर की तरह अब इस प्यारे को भी चंगुल में लिया। देखते जाओ। क्या दीन, क्या दुनिया, सोने के मोल कुल-का-कुल उसे खरीदे लिये लेता हूं।

पर वे लोग थे मूरख। सोने की मोहरें पाईं कि उन्होंने अपनी औरतों को दे दीं। औरतों ने गहने बनवा लिये। लड़कियां उसके जेवर गले में पहनतीं और भांति-भांति के आकार में बनाकर अपने जूड़ों में बांधती। होते-होते गली सड़क में बालक उन सोने के टुकड़ों से खेलने लगे। सबके पास ही ऐसे टुकड़े बहुतेरे हो चले थे। और अब किसी को उनकी जरूरत न रह गई थी। सो सबने उन्हें लेना बन्द कर दिया। लेकिन अभी उन नये महाजन की हवेली आधी भी नहीं बनी थी और सालभर के लायक भी माल-सामान उनके पास इकट्ठा नहीं हो पाया था। सो उन्होंने ऐलान किया कि अभी काम बहुत बाकी है और लोगों की जरूरत है। अभी बहुत-से गाय-बैल भी उसे चाहिए और गल्ला भी चाहिए। हर चीज और हर काम का नकद सोना दूंगा, और पहले से ज्यादा।

पर कोई बंदा काम करने न आया। न कोई कुछ बेचने लाया। हां, कभी हुआ तो कोई लड़का या कोई नन्हीं बच्ची हाथ में बेर-अमरूद ले उसके बदले में सोने की मोहर लेने वहां चली जाती तो चली भी जाती। और तो कोई पास फटकता नहीं था। सो उस महाजन को खाने के लाले पड़ने लगे। आखिर मारे भूख के वह भला आदमी गांव में घूमने निकला कि कहीं कुछ सिक्का देकर खाना मिल जाय। एक घर पर जाकर उसने मोहरें देनी चाहीं

ग्रौर कहा—"यह मोहर लो ग्रौर मुझे दो रोटी दे दो।"

लेकिन घर में से स्त्री बोली—"मोहर को मैं क्या करूंगी। यह तो वैसे ही मेरे घर में बहुतेरी पड़ी हैं।"

फिर दूसरे मकान पर जाकर उसने कोशिश की। कहा—"यह ग्रशर्फी लो ग्रौर मुझे एक रोटी दे दो।"

कि उस घर की मालकिन विधवा थी। बोली—"ग्रजी मुझे यह नहीं चाहिए। मेरे कोई बच्चा भी नहीं जो इनसे खेल सके। ग्रौर ऐसे तीन सिक्के तो मुंह देखने को मेरे पास पड़े हैं।"

फिर एक किसान के घर जाकर उसने ग्राजमाया। पर किसान को भी सिक्के की जरूरत नहीं थी। बोला—"यह सिक्का तो तुम्हारा मुझे चाहिए नहीं। पर राम के नाम पर जो मांगते हो तो ठहरो। मैं घर में कह देता हूं कि तुम्हें दो मुट्ठी चून दे दें।"

राम का नाम सुनना था कि मुंह बिचका शैतान वहां से भागा। राम के नाम पर कुछ लेना तो दूर की बात थी, वह नाम ही उसे ऐसा लगा जैसे बर्छी।

सो उसे खाने को कुछ भी नहीं मिला। मोहरें सभीके पास हो गई थीं। जहां-कहीं जाता, वहीं लोग कहते कि इन ठीकरों की एवज में तो देने को हमारे पास कुछ है नहीं। या तो कुछ ग्रौर लाग्रो नहीं तो ग्राग्रो ग्रौर मेहनत करो। या चाहो तो हां, राम के नाम पर हम तुम्हें जरूर दे सकते हैं।

पर शैतान के पास पैसे-रुपये के सिवा कुछ था नहीं। काम करे तो शैतान कैसा। ग्रौर राम के नाम पर जो लेने की बात···सो बाबा रे, वह तो उससे बन ही नहीं सकता था। सो उसको बड़ी खीझ हुई ग्रौर झुंझलाहट ग्राई।

बोला—"जब नकद पैसा देता हूं तो इससे ज्यादा तुम्हें ग्रौर क्या चाहिए। पैसे से तुम चाहे जो खरीद सकते हो ग्रौर चाहे जैसा काम निकाल सकते हो।"

पर मूरख लोगों ने उसकी बात को कान पर नहीं लिया। बोले—"जी नहीं, हमें पैसा नहीं चाहिए। हमें किसी का देना नहीं है ग्रौर कोई टैक्स नहीं है। सो भला हम इसका बनायेंगे क्या?"

आखिर शैतान भूखे पेट ही रात को पड़कर सो गया।

बात यह मूरख राजा प्यारे के पास पहुंची। लोग आये और पूछने लगे—"जी, बताओ हम क्या करें ? एक भला सौदागर आया है। वह खाना तो अच्छा-अच्छा चाहता है और आराम का सब सामान चाहता है और ठाठ के कपड़े, पर काम नहीं करना चाहता। न राम के नाम कुछ लेने के वह लायक है। बस हर किसीको हर चीज के बदले नकद सोने के सिक्के दिखाता है। पहले तो लोगों ने उनके चाव में उसे सब-कुछ दिया। सिक्के वे देखने में बड़े सुहावने लगते थे। पर हरेक के पास काफी सिक्के हो गये तो सबका जी भर गया। अब कोई उन्हें नहीं पूछता है। सो उस भले सौदागर आदमी का बताओ क्या किया जाय ? ऐसे तो जल्दी बेचारा भूखा मर जायगा।"

प्यारे ने पूरी बात सुनी। फिर बोला—"अच्छी बात है, उसके पेट पालने का बन्दोबस्त तो हमें करना ही चाहिए। ऐसा करो कि उसकी बारी बांध लो। गांव के चौपाये उसे चराने दे दिये जायं। और एक-एक दिन एक-एक घर से उसे खाने को मिल जाया करे। है न ठीक ?"

ऐसा ही हुआ। बेचारे को दूसरा कोई चारा न था। सो वह बारी-बारी एक-एक घर से रोटी पाकर पलने लगा।

होते-होते प्यारे के घर की भी एक बेर बारी आई।

शैतान घर के अन्दर खाना खाने के लिए पहुंचा तो रसोई में वह गूंगी पीतम बहन सब तैयारी कर रही थी।

पर वह चतुर थी और अनुभवी थी। जो काम-चोर होते और अपना काम निबटाने से पहले आकर खाने पर पहुंच जाते थे, उनको खूब पहचानती थी। धोखा उसकी आंखों को देना मुश्किल था। उसने असल में हाथों की पहचान कर रक्खी थी। जिनकी हथेली खुरदरी और सख्त होती, उन्हें वह परोसकर देती थी। औरों को अलग और पीछे बैठाया जाता था।

वह बूढ़ा शैतान आकर रसोई में थाली पर बैठ गया। पर गूंगी लड़की पकड़कर उसका हाथ देखने लगी। देखा तो उसकी हथेलियां मुलायम और चिकनी थीं। नाखून भा घिसे हुए नहीं थे। हाथों में खुरदरापन

बिलकुल नहीं था। इसपर वह गूंगी वहन गुस्से में बड़वड़ाने लगी और खींचकर उसे पटड़े से अलग कर दिया।

इसपर प्यारे राजा की स्त्री बोली—"इस बात पर आप नाराज न होना, मेरी ननदजी ऐसे आदमी को थाली-पटड़े पर नहीं बैठाती जिसके हाथ काम से खुरदरे न हों। थोड़ा सबर कीजिये। लोग जब खा चुकेंगे तो पीछे आपको मिलेगा।"

बूढ़े शैतान को इसपर बड़ी झुंझलाहट हुई कि राजा के घर में आकर उसका इस तरह अपमान किया गया। वह मूरखराज से बोला—"तुम्हारे राज्य में यह क्या बेवकूफी का कायदा है कि सबको हाथ से काम करना पड़े। तुममें अकल नहीं है। तभी तो ऐसा कानून बनाया है। क्या लोग हाथ से ही काम करते हैं ? अक्लमंद लोग किससे काम करते हैं, कुछ जानते हो ?"

प्यारे बोला—"हम लोग मूरख हैं। कैसे वह सब जानेंगे। हम तो अपना ज्यादातर काम हाथ से और जिस्म से करते हैं।"

"तभी तो तुम लोग मूरख हो। लेकिन मैं बताऊंगा कि दिमाग से कैसे काम किया जाता है, तब तुम्हें पता चलेगा कि हाथ से काम करने के बजाय सिर से काम करने से ज्यादा फायदा है।"

प्यारे अचरज में रह गया। बोला—"अगर ऐसी बात है तब तो ठीक ही है कि हमको मूरख कहा जाता है।"

पर बूढ़ा शैतान अपनी ही कहता रहा। बोला—"लेकिन एक बात है। दिमाग का काम आसान नहीं होता। मेरे हाथों पर दाग नहीं हैं सो तुम मुझे थाली पर नहीं बैठाते हो। लेकिन यह तुमको नहीं पता कि दिमाग का काम उससे सौ गुना कठिन होता है। कभी तो सिर उसमें फटने जैसा हो जाता है।"

प्यारे सुनकर जैसे सोच में पड़ गया। बोला—"तो बाबा, इतनी तकलीफ क्यों कोई अपने को दे ? सिर फटने को होता है तो क्या यह कुछ अच्छा लगता है ? इससे क्या यह बेहतर न होगा कि हाथ और बदन के सहारे मोटा ही काम कर लिया जावे, जिससे सिर सही रहे ?"

पर शैतान बोला, "यह सब हमें मूरख लोगों की खातिर करना होता है।

अगर अपने सिर पर हम जोर न दें तो तुम लोग हमेशा को मूरख रह जाओ। सिर से काम लेने की वजह से अब मैं तुम्हें कुछ सिखा तो सकता हूं।"

प्यारे अचंभे में भरकर बोला—"जरूर सिखाइए। जिससे हाथ दुःख आये तो जी-बहलाव के लिए अपने सिर भी कभी इस्तेमाल कर लिया करें।"

बूढ़े बाबा ने वचन दिया कि अच्छा सिखाऊंगा। सो प्यारे ने सारे राज्य में डौंडी करवा दी कि एक भलेमानस आये हैं। वह सबको सिर से काम करना सिखायेंगे। बतायेंगे कि कैसे हाथ से ज्यादा सिर से काम किया जा सकता है! सब लोगों को चाहिए कि आवें और सीखें।

प्यारे की राजधानी के नगर में एक ऊंचा मीनार था। काफी सीढ़ियां चढ़कर उसकी चोटी पर पहुंचना होता था। वहां एक लालटेन थी। प्यारे उन भलेमानस को वहीं चोटी पर ले गया कि सब लोग उनके दर्शन कर सकें।

वह बाबा उस उंची जगह पर जम कर बैठ गये और बोलने लगे। लोग सुनने के लिए नीचे आये। उनका खयाल था कि उपदेशक महोदय हाथों को बिना इस्तेमाल में लाये सचमुच सिर से काम करने का तरीका बतायेंगे। पर असल में जो उन्होंने बताया, वह तो यह था कि बिना काम किये कैसे रहा जा सकता है। लोगों को उनका व्याख्यान कुछ ठीक समझ नहीं आया। सो पहले तो एक-दूसरे के मुंह की ओर वे ताकते रह गये और विचार में पड़े रहे। आखिर अपने-अपने काम-धंधे पर चले गये।

उपदेशक बाबा मीनार पर पूरे-के-पूरे दिन जमे रहे। उसके बाद दूसरे दिन भी। व्याख्यान उनका बराबर चलता रहता था। पर इतनी देर वहां खड़े-खड़े उन्हें भूख लग आई थी। मूरख लोगों को मीनार पर जाकर उन्हें कुछ खाना देने की सूझ ही न होती थी। सोचते थे कि अगर हाथ के बजाय यह महोदय सिर से और भी बढ़कर काम कर सकते हैं तो उस सिर के जोर से अपने लिए खाने का इंतजाम तो आसानी से कर ही सकते होंगे।

सो तीसरा दिन हुआ और बाबा उसी जगह थे। बराबर उपदेश देते थे। लोग पास आते, थोड़े रुकते और सुनते और फिर अपनी राह चले जाते थे।

प्यारे ने लोगों से पूछा—"क्यों भाई, उन महाशय ने सिर से काम करना शुरू अभी किया है कि नहीं ?"

लोग बोले—'अभी तो नहीं किया दीखता। अभी तो मुंह से ही बोल रहे हैं।"

ऐसे मीनार की चोटी पर खड़े बोलते-बोलते उन्हें एक दिन और बीता। पर कमजोरी बहुत होती जाती थी। सो आखिर वह लड़खड़ाये और उनका सिर लालटेन के खंभे में जाकर लगा! नीचे खड़े एक आदमी ने यह देखा तो दौड़ा गया और जाकर प्यारे की रानी को खबर दी। रानी दौड़ी अपने राजा के पास गई। राजा खेत में काम कर रहा था। बोली—"अरे, चलो देखो तो। कहते हैं उन बाबा ने अब वहां सिर से काम करना शुरू कर दिया है।"

प्यारे को अचंभा हुआ। बोला—"सचमुच ?"

सो हल-बैल छोड़ मूरखराज मीनार के पास आया। इस वक्त तक वह बूढ़ा बाबा भूख से बेहाल हो गया था और लड़खड़ाकर गिरा जा रहा था। बार-बार खंभे से आकर सिर उसका टकराता था। प्यारे का वहां पहुंचना था कि शैतान ढेर होकर ढह पड़ा और धम-धम जीने की सीढ़ियों पर से गिरता-लुढ़कता आने लगा।

मूरखराज़ बोला—"भाई, इनका कहना सच था कि सिर के काम से कभी-कभी वह बिलकुल फटने जैसा हो जाता है। छाला-गूमड़ी तो भला ऐसे में चीज क्या है। अचरज नहीं सिर के ऐसे सख्त काम के बाद मरहम पट्टी की जरूरत हो आवे।"

लुढ़कती-पुढ़कती वह काया आई और नीचे की पैंड़ी पर धरती में धड़ाम से उसका सिर लगा। प्यारे पास पहुंचकर देखता ही था कि इन महोदय के सिर ने कितना कुछ कर्तब किया है, लेकिन तभी धरती फटी और उस काया का जीव वहीं जाने कहां पाताल में समा गया। बस एक सूराख वहां बाकी रह गया।

यह देख प्यारे ने अपना सिर खुजलाया। बोला—"छिः, यह तो वही नरक का गंध है। उसी योनि का कोई जीव मालूम होता है। पर राम-राम,

यह तो पहले सबका बाप ही रहा होगा।"

मूरखराज अपने राज्य में अब भी राज करता है और बहुत लोग उसके राज में जाकर बसने पहुंचते हैं। उसके दोनों भाई भी वहीं आ गये और वह उनका भी पालन करता है। जो भी परदेशी कोई पहुंचे सबको प्यारे राजा का कहना है कि आओ भाई, सब आओ। आओ, रहो। हमारे यहां किसी को कोई कमी नहीं।

बस राज में एक नियम है। यह कि जिसके हाथ काम से खुरदरे होंगे उसे तो मान की रोटी मिलेगी। बाकी को बचे-खुचे से ही मिल सकेगा।

●